श्री श्रमण भगवान् महावीर की पच्चीस-सौवीं
निर्वाण तिथि समारोह के उपलक्ष्य में

मे घ च र्या

लेखक
श्री हीरा मुनि 'हिमकर'

आशीर्वचन
उपाध्याय अमरमुनि

●

प्रेरक
श्री पुनीत मुनि
जैन-सिद्धान्त विशारद

सम्पादक
पं० शोभाचंद्रजी भारिल्ल

भूमिका
श्री देवेन्द्रमुनि, शास्त्री 'साहित्यरत्न'

सन्मति साहित्यरत्न माला का ११५वा रत्न

○ पुस्तक
मेघचर्या

○ सम्पादक
पं० शोभाचन्द्र भारिल्ल,

○ प्रेरक
श्री पुनीत मुनिजी

○ मूल्य
५) रुपया

○ लेखक
श्री हीरामुनि 'हिमकर'

○ भूमिका :
श्री देवेन्द्रमुनि 'साहित्यरत्न'

○ प्रकाशक
सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामण्डी,
आगरा-२

○ मुद्रक
रामनारायन मेड़तवाल
श्री विष्णु प्रिंटिंग प्रेस,
राजा की मण्डी, आगरा-२

प्रथम सस्करण
विक्रम सम्वत् २०२७, पौष पूर्णिमा

महास्थविर पूज्य गुरु महाराज श्री ताराचंद्र जी म०

अमर पूज्य गुरु ताराचद,
घर-घर मे करदे आनद।



जन्म वि० स० १९४०
आश्विन शुक्ला चतुर्दशी
वम्बोरा (मेवाड)

दीक्षा वि० स० १९५०
ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी,
समदडी (मारवाड)

स्वर्गवास स० २०१३
कार्तिक चतुर्दशी,
लाल भवन, जयपुर

समर्पण !

मेरे वर्तमान तेतीस वर्ष की
सयम-यात्रा मे
स्नेहपूर्वक सहयोग देनेवाले
आगमानुभवप्रदाता
ज्येष्ठ गुरु-भ्राता, राजस्थान केशरी,
प्रवर्त्तक श्री पुष्कर मुनिजी महाराज के
करकमलो मे
सादर समर्पण !

—हीरामुनि

आशीर्वचन

माधको की विभिन्न श्रेणियाँ है। कुछ माधक संसार के धरातल मे ऊपर उठते है, तो उठते ही चले जाते है, वापस नीचे नही लौटते। कुछ ऐसे भी है, जो ऊपर उठकर फिर वापस नीचे आ जाते है। पर वे नीचे ही नही गिरे रहते, पुन ऊपर उठते है, और अन्तत अपने लक्ष्य पर पहुंच जाते हैं। तीसरे साधक वे है जो एक बार ऊपर उठते तो है, किंतु सुख-दु ख आदि की चोट खाकर एक-न-एक दिन वापस नीचे आ गिरते हैं और फिर कभी उठने का नाम नही लेते।

मेघकुमार दूसरी कोटि का साधक है। अधिक सख्या ऐसे ही साधकों की होती है। अत मेघकुमार आदर्श हैं, उन सबके लिए, जो साधनापथ से कभी भटकने की स्थिति मे होत है, तो सभलकर पुन साधनापथ पर दृढता से अग्रसर हो जाते हैं।

मेघकुमार करुणा का देवता है। वह करुणा के द्वारा ही पशु-जीवन से मानव-जीवन मे आया है। वस्तुत करुणा ही मानवता है। करुणा की ज्योति जीवन मे कभी बुझने न पाए, इस सन्दर्भ मे मानव-मात्र के लिए मेघकुमार अक्षय अखण्ड प्रेरणास्रोत रहे हैं और रहेगे।

'ज्ञातृधर्म कथा सूत्र' मे मेघकुमार का जीवन आज भी उपलब्ध है। कितना महान् उदात्त गरिमामय जीवन ! मेघ वस्तुत वह मेघ है, जो अपनी अमृतोपम जीवन-धाराओ से मानव हृदय की सूखी, तपती, वीरान भावभूमि को सहसा आप्लावित कर देता है।

परमस्नेही श्री हीरामुनि जी ने मेघकुमार की उक्त प्राचीन चरित्रगाथा का अतीव भव्य आलेखन किया है। 'विशेषबोध' के रूप मे मेघकुमार के दिव्य व्यक्तित्व की अतल गहराई को जिस विशुद्ध भावप्रवणता एव सूक्ष्म चिन्तन-चेतना से उभारा है, तदर्थ शत-शत साधुवाद ! अपने मे यह एक बडे अभाव की चिरअपेक्षित सपूर्ति है !

मुनिश्री जी 'यथानाम तथा गुण' की लोकोक्ति को जिस शान के साथ चरितार्थ कर रहे हैं, वह समाज के सहृदय सज्जनो की आँखो मे है। भविष्य उनका शीघ्र ही यथार्थ मूल्याकन करेगा— इसी विश्वास के साथ

—उपाध्याय अमरमुनि

सम्पादकीय वक्तव्य

'नायधम्मकहाओ' जैन परम्परा के द्वादशागीश्रुत मे छठा अग गिना जाता है। इस अग मे कुछ नाय-ज्ञात-उदाहरण हैं और कुछ भ० महावीर द्वारा उपदिष्ट धर्मकथाएँ। अतएव इस अग का सार्थक नाम 'नायधम्मकहाओ' प्रचलित है।

मनुष्य जीवन का अन्तिम लक्ष्य क्या है? और किस उपाय के द्वारा उस लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है? लक्ष्य प्राप्ति के लिए की जाने वाली साधना के साधक को किस प्रकार का जीवन यापन करना होता है? उसे प्राप्त भौतिक ऐश्वर्य की चमक-दमक मे अपने आपको विस्मृत अथवा अनदेखा नही कर देना चाहिए। जिन वीर साधको ने साधना के कटकाकीर्ण लम्बे पथ पर चल कर लक्ष्य प्राप्ति की है, उनके अनुभवो पर अखण्ड आस्था रखकर, सशयाकुल मनोभाव का परित्याग करके साधना के मार्ग पर अग्रसर होते जाना चाहिए। इन्द्रियो पर नियत्रण रखना, उन्हे विषयो मे रति-अरति करने से रोकना, आहार-विहार आदि करते हुए भी अलिप्त रहना और निरन्तर जागृत रह कर स्वीकृत मार्ग पर आगे ही आगे बढते जाना, यह सब इस आगम का प्रतिपाद्य विषय है।

कथा-शैली मे होने के कारण यह आगम सर्व-साधारण के लिए सुबोध है और रोचक होने के कारण पाठक का मन उसमे तन्मय हो जाता है।

'नायधम्मकहाओ' पर संस्कृत भाषा मे कई टीका-टिप्पणियाँ हैं। गुजराती मे भी इसके कई सस्करण प्रकाशित हुए हैं, मगर हिन्दी मे इसका कोई सर्वागसुन्दर सस्करण उपलब्ध नही है। कुछ वर्ष पूर्व मैंने इसका अनुवाद किया था और धार्मिक परीक्षाबोर्ड पाथर्डी (अहमद नगर) ने उसे मुद्रित भी करवाया। किन्तु वह अब तक प्रकाश मे नही आ रहा है शायद इस कारण कि उसका मुद्रण अच्छा

नही हुआ। तथ्य यह है कि इस समय हिन्दी मे इस उपयोगी और महत्त्वपूर्ण आगम का एक भी सस्करण उपलब्ध नही है। जैन समाज का साहित्य के प्रति कितना उपेक्षाभाव है, इसका यह एक ज्वलत उदाहरण है।

प्रसन्नता है कि भावुकहृदय सन्त श्री हीरा मुनि जी 'हिमकर' का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ और उन्होने इसके प्रथम अध्ययन 'उक्खित्त पाए' का या मेघाध्ययन का विशेप वोध के साथ अनुवाद तैयार किया। मुनिश्री के आदेश को शिरोधार्य कर मैंने सहर्ष उसके सम्पादन का भार अपने ऊपर ले लिया।

जैनागमो की कथाएँ मनोविनोद मात्र के लिए नही है, वरन् उनके माध्यम से तत्त्व की शिक्षा दी गई है। कथाओ मे आये हुए प्रासगिक कथन और वर्णन भी वहुत अर्थपूर्ण है। उनसे तात्कालिक सस्कृति, इतिहास, समाजव्यवस्था, राजनीतिक स्थिति, धार्मिक परम्परा, लोक-मानस और विचारधारा आदि का भी पता लगता है। मगर साधारण स्तर के पाठक की वहा तक पहुँच नही हो पाती। वह तो तभी समझ पाता है जव इन गूढ वास्तविकताओ को उसके सामने उघाड कर रख दिया जाय। श्री हीरा मुनि जी ने ऐसे तथ्यो को उघाड कर रख देने का प्रयास किया है। इस प्रकार आगमो के अनुवाद की एक नूतन शैली का आपने सूत्रपात किया है, जो स्वागत के योग्य है, अनुकरणीय है। निश्चय ही मुनि जी वधाई के पात्र हैं।

आशा है प्रस्तुत आगम के अन्य अध्ययनो का भी वे इसी शैली से अनुवाद प्रस्तुत करेंगे, जिससे सभी श्रेणियो के पाठक लाभान्वित हो सके।

श्रमणी विद्यापीठ
घाटकोपर, वम्वई ८६

—शोभाचन्द्र भारिल्ल

यद्यपि तपश्चर्या के कारण उनकी शारीरिक शक्ति क्षीण हो गई थी, तथापि मनोवल उनका वृद्धिगत था। उन्होंने अपने शरोर की स्थिति को समझ लिया।

तप की पराकाष्ठा होने पर शारीरिक दुर्वलता की भी पराकाष्ठा हो गई। वात करने की तो वात ही दूर रही, वात करने के विचार-मात्र से थकावट होने लगी। मानो अन्तिम घडी सन्निकट आ रही है। फिर भी उनका आत्मवल, वीर्य, पुरुषकार, पराक्रम, श्रद्धा, धृति और सवेग अभी अच्छी स्थिति मे था।

वल, वीर्य आदि उक्त गुण आत्मा से सम्वद्ध हैं। आत्मा के साथ इन गुणो के रहते हुए भी देह के विना इनका उपयोग नही होता। श्रद्धा, धृति और सवेग जैसे गुण भी शारीरिक सहयोग होने पर ही काम मे आते है।

मेघ मुनि ने सारी परिस्थिति पर विचार करके ऐसो साधना करने का सकल्प किया, जो जीवन के अन्तिम क्षणो मे ही की जाती है और जिसे साधना का स्वर्ण-शिखर कहा जा सकता है।

'जाव य मे धम्मायरिए' इत्यादि विचार करने का आशय यह है कि-किसी के जीवन का भरोसा नही है। कौन पहले और कौन पीछे शरीर का त्याग कर चला जाएगा, कहा नही जा सकता। अतएव मेघ मुनि अपने परम गुरु भगवान् महावीर की मौजूदगी मे ही अपना कार्य साध लेना चाहते हैं। उन्होने सकल्प कर लिया कि रात्रि व्यतीत होते ही प्रभात मे मैं भगवान् की सेवा मे उपस्थित होकर अन्तिम साधना की अनुमति प्राप्त करूगा।

मेघ मुनि ने भगवान् को वन्दन-नमस्कार करके पुनः पाच महाव्रतो को स्वीकार करने का भी विचार किया।

प्रश्न हो सकता है कि वे लम्वे समय से महाव्रतो का पालन कर रहे थे। ऐसी स्थिति मे पुनः महाव्रत ग्रहण करने की आवश्यकता क्या ?

इसका उत्तर यह है कि पूर्व स्वीकृत व्रत अतिचार वाले थे। अत्यन्त सावधान रहने पर भी और यतनापूर्वक क्रियाएँ करने पर भी प्रमत्तदशा मे कोई न कोई दोष लग ही जाता है। वही दोष अतिचार कहलाते हैं।

मेघकुमार अब विशिष्ट शुद्धि करने जा रहे हैं। पूर्ण रूप से निरतिचार व्रतो की आराधना करना उनका लक्ष्य है। वे नये सिरे से जो महाव्रत ग्रहण करते हैं उनमे लेश मात्र भी दोष की सभावना नही रहेगी। सभवत पुन. व्रतारोहण का यही उद्देश्य है।

प्रभात होने पर वे भगवान् की सेवा मे उपस्थित होते है और सथारा ग्रहण करने की अनुज्ञा मागते है। भगवान् सारो स्थिति को भलीभाति जानते है। मेघ मुनि को उस चरम आराधना का पात्र समझते हैं। कह देते है—'अहासुह देवाणुप्पिया ! मा पडिबध करेह।' (४८)

मूलपाठ—तए ण से मेहे अणगारे समणेणं भगवया महावीरेण अब्भणुन्नाए समाणे हट्ठ० जाव हियए उट्ठाइ उट्ठेइ, उट्ठाइ उट्ठेत्ता समण भगवं महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिणं करेइ, करित्ता वदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता सयमेव पच महव्वयाइ आरुहेइ, आरुहित्ता गोयमाइ समणे निग्गथे निग्गंथीओ य खामेइ, खामेत्ता य तहारूवेहिं कडाईहिं थेरेहिं सद्धि विपुल पव्वयं सणिय सणिय दुरूहइ, दुरूहित्ता सयमेव मेहघणसन्निगास पुढविसिलापट्टय पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता दब्भसंथारग सथरइ, सथरित्ता दब्भसथारगं दुरूहइ, दुरूहित्ता पुरत्थाभिमुहे संपलियकनिसन्ने करयलपरिग्गहिय सिरसावत्तं मत्थए अजलि कट्टु एव वयासी—

'नमोऽत्थु णं अरिहताणं भगवंताणं जाव सपत्ताणं। नमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव सपाविउ-कामस्स मम धम्मायरियस्स। वदामि ण भगवत तत्थगयं इहगए, पासउ मे भगव तत्थगए इहगय ति कट्टु वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—

पुव्वि पि य ण मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए, मुसावाए अदिन्नादाणे मेहुणे परिग्गहे, कोहे माणे माया लोहे, पेज्जे दोसे, कलहे अब्भक्खाणे, पेसुन्ने परपरिवाए, अरइ-रई, मायामोसे मिच्छादसणसल्ले पच्चक्खाए।

इयाणि पि य ण अहं तस्सेव अतिए सव्वं पाणाइवाय पच्चक्खामि जाव मिच्छादसणसल्लं पच्चक्खामि। सव्व असण-पाण-खाइम-साइमं चउव्विहं पि आहार पच्चक्खामि जावज्जीवाए। ज पि य इम सरीर इट्ठं कतं पियं जाव विविहारोगायका परिसहोवसग्गा फुसतोत्ति कट्टु, एवं पि य ण चरमेहिं ऊसासनिस्सासेहिं वोसिरामि त्ति कट्टु संलेहणाझूसणाझूसिए भत्तपाणपडियाइक्खिए पाओवगए काल अणवकखमाणे विहरइ।

तए णं ते थेरा भगवतो मेहस्स अणगारस्स अगिलाए वेयावडियं करेन्ति।

तए ण से मेहे अणगारे भगवओ महावीरस्स तहारूवाण थेराण अतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अगाइ अहिज्जित्ता वहुपडिपुण्णाइ दुवालस वरिसाइ सामन्नपरियागं पाउणित्ता मासियाए सलेहणाए अप्पाण झोसेत्ता सट्ठि

भत्ताइं अणसणेण छेएत्ता आलोइयपडिक्कते उद्धियसल्ले समाहिपत्ते आणुपुव्वेण कालगए।

तए ण ते थेरा भगवतो मेहं अणगारं आणुपुव्वेण कालगय पासेन्ति, पासित्ता परिनिव्वाणवत्तियं काउस्सग्गं करेन्ति, करित्ता मेहस्स आयारभंडय गेण्हन्ति।

पच्चोरुहित्ता जेणामेव गुणसिलए चेइए,जेणामेव समणे भगव महावीरे तेणामेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता समणं भगव महावोरं वदति नमसति, वदित्ता नमंसित्ता एवं वयासो—

एव खलु देवाणुप्पियाणं अतेवासी मेहे अणगारे पगइ-भद्दए जाव विणीए। से णं देवाणुप्पिएहि अब्भणुन्नाए समाणे गोयमाइए समणे निग्गथे निग्गथीओ य खामेत्ता अम्हेहिं सद्धिं विउलं पव्वयं सणिय सणियं दुरूहइ, दुरूहित्ता सयमेव मेघघण-सण्णिगास पुढविसिलापट्टयं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता भत्तपाणपडियाइक्खिए अणुपुव्वेणं कालगए। एस ण देवाणुप्पिया! मेहस्स अणगारस्स आयारभडए। (४६)

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह मेघ अनगार श्रमण भगवान् महावीर की आज्ञा प्राप्त करके हृष्ट-तुष्ट हुए। उनके हृदय मे आनन्द हुआ। वह उत्थान करके उठे और उठकर श्रमण भगवान् महावीर को तीन वार दक्षिण दिशा से आरम्भ करके प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके स्वय ही पाच महाव्रतो का उच्चारण किया और गौतम आदि साधुओ को तथा साध्वियो को खमाया। खमा कर तथारूप (चारित्रवान्) और योगवहन आदि किए हुए स्थविर सन्तो के साथ विपुल नामक पर्वत पर धीरे-धीरे आरूढ हुए। आरूढ होकर स्वय ही

सघन मेघ के समान काले पृथ्वीशिलापट्टक की प्रतिलेखना की। प्रतिलेखना करके उच्चार-प्रस्रवण की—मल-मूत्र त्यागने की भूमि का प्रतिलेखन किया। प्रतिलेखन करके दर्भ का सथारा विछाया और उस पर आरूढ हो गए। पूर्व दिशा के सन्मुख पद्मासन से वैठ कर, दोनो हाथ जोडकर और उन्हे मस्तक से स्पर्श करके (अजलि करके) इस प्रकार वोले—

"अरिहन्त भगवन्तो को यावत् सिद्धि को प्राप्त सव भगवन्तो को नमस्कार हो। मेरे धर्माचार्य श्रमण भगवान् महावीर यावत् सिद्धगति प्राप्त करने के इच्छुक को नमस्कार हो। वहा (गुणशिलक चैत्य मे) स्थित भगवान् को यहा (विपुलाचल पर) स्थित मैं वन्दना करता हूँ। वहा स्थित भगवान् यहा स्थित मुझ को देखे।"

इस प्रकार कह-कर भगवान् को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

"पहले भी मैने श्रमण भगवान् महावीर के निकट सम्पूर्ण प्राणातिपात का त्याग किया है, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान (मिथ्या दोषारोपण करना), पैशुन्य (चुगली), परपरिवाद (परकीय दोषो का प्रकाशन), धर्मसवधी अरति, अधर्मविषयक रति, मायामृषा (वेप आदि वदल कर ठगना) और मिथ्यादर्शनशल्य, इन सव का प्रत्याख्यान किया है।"

अव भी मैं उन्ही भगवान् के निकट सम्पूर्ण प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता हूँ, यावत् मिथ्यादर्शनशल्य का प्रत्याख्यान करता हू। तथा सव प्रकार के अशन, पान, खादिम और स्वादिम—चारो प्रकार के आहार का आजीवन प्रत्याख्यान करता हूँ। और यह शरीर, जो इष्ट है, कान्त (मनोहर) है और प्रिय है, यावत् रोग, आतक (शूलादिक), वाईस परीषह और उपसर्ग न सतावें, इस प्रकार

से जिसकी रक्षा की जाती है, इस शरीर का भी मैं अन्तिम श्वासोच्छ्वास पर्यन्त परित्याग करता हूँ।"

इस प्रकार कह कर, सलेखना को अगीकार करके, भक्त-पान का त्याग करके, पादपोपगमन समाधिमरण अगीकार करके मृत्यु की भी कामना न करते हुए मेघ मुनि विचरने लगे।

तब वे स्थविर भगवन्त ग्लानिरहित होकर मेघ अनगार की वैयावृत्य करने लगे।

तत्पश्चात् वे मेघ अनगार श्रमण भगवान् महावीर के तथारूप स्थविरो के सन्निकट सामायिक से लेकर ग्यारह अगो का अध्ययन करके, बारह वर्प तक चारित्रपर्याय का पालन करके, एक मास की सलेखना के द्वारा आत्मा (अपने शरीर) को क्षीण करके, अनशन से साठ भक्त छेद कर अर्थात् तीस दिन उपवास करके, आलोचना-प्रतिक्रमण करके, माया मिथ्यात्व और निदान शल्यो को हटाकर और समाधि को प्राप्त होकर अनुक्रम से कालधर्म को प्राप्त हुए।

तत्पश्चात् मेघ अनगार के साथ गये हुए स्थविर भगवन्तो ने मेघ अनगार को क्रमश कालगत देखा। देखकर परिनिर्वाणनिमित्तक (मुनि के मृत देह को परठने के कारण से किया जाने वाला) कायोत्सर्ग किया। कायोत्सर्ग करके मेघ मुनि के उपकरण ग्रहण किए और विपुल पर्वत से धीरे-धीरे नीचे उतरे। उतर कर जहा गुणसिलक चैत्य था और जहा श्रमण भगवान् महावीर थे, वही पहु चे। पहु च कर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार बोले —

"आप देवानुप्रिय के अन्तेवासी (शिष्य) मेघ अनगार स्वभाव से भद्र यावत् विनीत थे। देवानुप्रिय (आप) से अनुमति लेकर गौतम आदि साधुओ और साध्वियो को खमाकर हमारे साथ विपुलाचल पर धीरे-धीरे आरूढ हुए। आरूढ होकर स्वय ही सघन मेघ के

समान कृष्णवर्ण पृथ्वीशिलापट्टक का प्रतिलेखन किया और अनुक्रम से कालधर्म को प्राप्त हुए। हे देवानुप्रिय ! ये हैं मेघ अनगार के आचार-सम्बन्धी उपकरण। (४९)

विशेषबोध—प्रभु की आज्ञा प्राप्त होने पर मेघ मुनि बहुत प्रसन्न हुए। उनके चित्त मे आनन्द उत्पन्न हुआ, क्योकि जीवन के अन्तिम क्षणो मे वे कराल काल से युद्ध मे विजय प्राप्त करना चाहते थे और अजर-अमर होने की अपनी साधना को चरम सीमा तक पहु चा देना चाहते थे। जीवन के अवशिष्ट बहुमूल्य समय का पूरा सदुपयोग कर लेना चाहते थे।

मेघकुमार उत्थान के बल खडे हुए और भगवान् को तीन प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया। प्रदक्षिणा देना सन्मान एव भक्ति के प्रदर्शन की प्राचीन भारतीय परम्परा है, जो आज भी मन्दिरो मे प्रचलित है। पर गुरु के समक्ष तीन वार हाथ घुमाकर ही प्रदक्षिणा मान ली जाती है। इस सम्वन्ध मे पहले कहा जा चुका है।

मेघ मुनि ने पुन महाव्रतो को धारण किया, समस्त सन्तो और सतियो से क्षमायाचना की और अनुभवी स्थविर मुनियो के साथ विपुलगिरि की ओर चले।

चलने-फिरने की वात दूर, वोलने की भी शक्ति नही रह गई थी। ऐसी दुर्वलता की स्थिति मे भी उनका आत्मवल जागृत था। उसी के सहारे वे ऊ चे पर्वत तक गये, स्वय उस पर चढे, स्वय पृथ्वीशिला पट्ट का प्रतिलेखन आदि किया। मुनिराज का यह साहस और आत्मनिर्भरता धन्य है!

पृथ्वीशिलापट्टक का मतलव है-पाषाणशिला। उस पर सथारा करने की उपयोगिता अहिंसा की दृष्टि से समझना चाहिए। शिला पर जीव-जन्तुओ के उपद्रव और उनकी विराधना की वैसी सभावना नही रहती जैसी अन्यत्र रहती है।

लम्वी तपश्चर्या होने पर मल-मूत्र स्वल्प मात्रा मे आता है।

उसका त्याग करने के लिए भी निर्दोष भूमि को देखना आवश्यक है। मुनि के आचार मे उच्चार-प्रस्रवणसमिति का विधान है, जो अहिंसा की परिपालना के लिए आवश्यक है।

प्राचीन काल मे दर्भ (डाभ) का सथारा किया जाता था। मेघ मुनि ने भी तदनुसार दर्भसस्तारक बिछाया और उसी पर वे आसीन हुए।

पूर्व और उत्तर दिशा की ओर मुख करके ही मागलिक कार्य किए जाते है। इस विषय मे पहले कहा जा चुका है।

मेघ मुनि डाभ के सस्तारक पर आसीन होकर एकाग्र चित्त से प्रभु की अभ्यर्थना करते हैं। वीतराग का स्मरण करते हैं। वे जिस कठिनतर साधना का उपक्रम करने जा रहे हैं, उसमे वीतराग भाव के सतत जागृत रहने की अनिवार्य आवश्यकता है। क्षण भर के लिए लेशमात्र भी रागभाव के उत्पन्न होने से समाधिमरण की साधना मलिन हो जाती है। अतएव वीतराग का स्मरण करके अपने वीतराग भाव को सुदृढ बनाना आवश्यक है।

भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हुए वे बोले —प्रभो! आप कहा और मैं कहा? आप गुणसिलक उद्यान मे हैं और मैं यहा पर्वत पर हूं। फिर भी आप केवल ज्ञान-दर्शन से सम्पन्न होने के कारण मुझे देखे।

यह कथन बडा भावपूर्ण है। भगवान् शरीर से चाहे जितनी दूर हो किन्तु भक्त उन्हे अपने हृदय मे ही विराजमान अनुभव करता है। कहा भी है—

दूरस्थोऽपि समीपस्थो हृदये यदि विद्यते।

जो हृदय मे विद्यमान है वह दूरस्थ होने पर भी समीप ही है।

मेघकुमार यह कहकर सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान् को अपनी साधना का साक्षी बना रहे हैं। भगवान् मुझे देख रहे है, यह भावना जागृत रहे तो भावना मे तनिक-सी भी त्रुटि नही की जा सकती।

मेघ मुनि फिर बोले—प्रभो ! मैं आपकी साक्षी से जीवन भर के लिए अठारह पापो का, जिनका पहले भी त्याग कर चुका हूँ, पुन: त्याग करता हूँ। इसके साथ ही चारो प्रकार के आहार का और यहा तक कि इस शरीर का भी त्याग करता हूँ।

इन तीनो का त्याग ससार मे सबसे बडा त्याग है। शरीर का त्याग अर्थात् शरीर से ममत्व का सम्बन्ध हटा लेना कोई साधारण बात नही है। और जब शारीरिक ममत्व का त्याग कर दिया जाता है तो आहारादि का त्याग स्वत सिद्ध हो जाता है। शरीर को ही आहार की अपेक्षा रहती है। जब शरीर ही अपना न रहा तो आहार किस लिए ?

इन तीनों का त्याग होने पर ससार के साथ सम्बन्ध पूरी तरह कट जाता है। देहत्याग के पश्चात् आत्मा अपने आप मे अकेला रह जाता है। फिर कोई वस्तु उपयोग मे नही आती। ऐसी स्थिति मे जीवित देह भी मुर्दे के समान पडा रहता है। उसका कोई उपयोग नही। उसकी ओर से साधक बिलकुल विमुख हो जाता है। यही पादपोपगमन सथारा कहलाता है।

पादप (वृक्ष) की शाखा टूट कर गिर पडे। वह जहां पडती है वही ज्यो की त्यो पड़ी रहती है। स्वत: हिलती डुलती नही है। इसी प्रकार साधक का शरीर जब निश्चेष्ट होकर पडा रहता है और साधक अपने आत्मभाव मे रमण करता रहता है तब वह पादपोप-गमन सथारा कहा जाता है।

साधक की विशेषता यह है कि सथारे की उस स्थिति में वेदना, भूख, प्यास आदि परीषह होने पर भी मन पर पूरी तरह अनुशासन रक्खे। किंचित् भी असर मन पर न होने दे।

मन सब पर असवार है, मन के मते अनेक।
जो मन पर असवार है, वह लाखो मे एक॥

उस स्थिति मे साधक जीवन की कामना नही करता और मृत्यु के भय को निकट नही फटकने देता।

ज्ञानी के ज्ञान का सार यही है कि वह ममत्वप्रेरित होकर लम्बे समय तक जीने की अभिलापा न करे, क्योंकि अभिलाषा करने से आयु की बृद्धि नही हो सकती। साथ ही मृत्यु से भयभीत भी न हो, क्योकि डरने से मृत्यु रुक नही सकती।

जव जीवन-मरण मे समभाव आ जाता है तो अनिर्वचनीय शाति एव आनन्द की अनुभूति होती है। उस आनन्द मे मग्न साधक जीवन-मरण के विकल्प को भूल जाता है।

मेघ मुनि इसी दुष्कर साधना मे लीन हो गए। वे समताभाव के विमल सरोवर मे डुवकिया लगाने लगे। अनुभवी स्थविर, जो उनके साथ गए थे, अग्लानभाव से उनकी सेवा करने लगे। यद्यपि मेघ मुनि को सेवा की अपेक्षा रह नही गई थी, तथापि यथायोग्य देखरेख रखना, स्थविर अपना कर्तव्य मानते थे। उन स्थविरो ने भी उन दिनो तपस्या की। निर्जन वन मे पहाडियो पर भूखे-प्यासे रहे। एक मास तक सेवा कार्य करते रहे।

आज इस प्रकार का उत्तरदायित्व किसी पर आ पडे तो उसे प्रसन्नतापूर्वक निभाना कठिन होता है। किन्तु उन महान् स्थविरो को भी धन्य है, जो मेघ मुनि की साधना मे सहायक बनकर स्वयं कष्ट झेलने मे तनिक भी उद्विग्न नही हुए।

मेघ मुनि ने 'पढम नाण तओ दया' इस विधान के अनुसार पहले सूत्रार्थ का ज्ञान प्राप्त किया, फिर कठिन तपस्या मे प्रवृत्त हुए। उन्होने अपने जीवन को खूब चमकाया। उनका पादपोपगमन सथारा एक मास तक चला। जब शरीर के वियोग को स्थिति आई तो आलोचना और प्रतिक्रमण किया। आलोचना से पूर्वकृत पापो का क्षय होता है। प्रतिक्रमण द्वारा विशुद्धि प्राप्त की जाती है।

यद्यपि मेघ मुनि को अव पाप होने का विशेष कारण नही था,

तथापि कदाचित् मानसिक सकल्प मे कोई त्रुटि आई हो तो उसके लिए और व्यवहार को अक्षुण्ण रखने के लिए उन्होने आलोचना की, प्रतिक्रमण किया।

उनके अन्तर् मे किसी प्रकार की माया-ममता नही थी। पारलौकि सुखो की कामना नही थी। वे समभाव मे स्थित थे। चित्त मे समाधि थी। ऐसी स्थिति मे चित्तसमाधि स्वत प्राप्त हो जाती है। अतएव समाधिपूर्वक मुनि कालधर्म को प्राप्त हुए।

जब मेघ अनगार कालधर्म (मरण) को प्राप्त हो चुके तो स्थविरो ने परिनिर्वाणप्रत्ययक कायोत्सर्ग किया और मुनि के सयमोपकरण उठाकर वहा से रवाना हो गए।

पहाड़ी संथारा

उग्र तपस्वी जैन मुनि अन्तिम समय सन्निकट आया जानकर पहाडियो पर जाकर सथारा करते थे। इसका प्रधान हेतु यह है कि मृत कलेवर (शव) को न जलाना पडे और न भूमि मे गाडना पडे। ऐसा करने से आरम्भ-समारम्भ एव जीवहिंसा होती है। पहाड पर जाकर एकान्त मे प्राण त्याग करने से अन्त्येष्टि क्रिया नही करनी पडती। इसी हेतु से यह परम्परा प्रचलित रही होगी।

पर्वत पर जाकर मेघ मुनि की तरह अनेक मुनियो द्वारा सथारा करने का उल्लेख आगमो मे मिलता है।

आदि तीर्थ कर ऋषभदेव दस हजार मुनियो के साथ सथारा करने के लिए अष्टापद पर्वत पर गए थे।[1] आर्य स्कन्धक ने विपुलगिरि पर जाकर सथारा किया था[2]। अरिष्टनेमि के शिष्य गौतम नामक अनगार ने शत्रुञ्जय पर्वत पर जाकर समाधिमरण अगीकार किया था।[3]

१—कल्पसूत्र। २—भगवती सूत्र। ३—अन्तगडसूत्र, प्रथम वर्ग।

चौवीस तीर्थ करो मे से वीस तीर्थ कर सम्मेदशिखर पर्वत से मोक्ष पधारे है। अन्य तीर्थ कर भी प्राय. अन्त समय मे पर्वत पर ही पधारे और वही उन्होने निर्वाण प्राप्त किया।

आशय यह है कि अन्तिम समय मे पर्वत पर जाकर सथारा ग्रहण करने की जैन साधुओ की परम्परा लम्वे काल तक चलती रही है। हाँ, साध्वियो को ऐसा करने का विधान नही है। वे उपाश्रय से बाहर जाकर आतापना भी नही ले सकती। नारीजीवन वनवास के योग्य नही है।

इसी परम्परा का अनुसरण करते हुए मेघ मुनि ने भी विपुलगिरि पर जाकर शरीरोत्सर्ग किया।

जव मेघमुनि कालधर्म कर गए तो स्थविर सन्तो ने उनके उपकरण ग्रहण कर लिए। जिस प्रयोजन से पर्वत पर गए थे वह पूरा हो जाने पर वे धीरे-धीरे नीचे उतरे। धीरे धीरे नीचे उतरने का कारण निर्बलता है। प्रथम तो वे मुनि स्थविर थे, फिर लम्वी तपस्या भी उन्होने की थी। अतएव धीरे-धीरे उतर कर वे भगवान् की सेवा मे पहु चे। मेघ मुनि के उपकरण भगवान् के सामने रख दिए और उनके कालधर्म को प्राप्त होने का समाचार सुनाया। प्रभु तो ज्ञानी थे। सव कुछ उन्हे ज्ञात था, फिर भी स्थविरो ने वृत्तान्त कहकर अपने कर्त्तव्य का पालन किया। (४६)

पुनर्जन्मसम्वन्धी प्रश्नोत्तर

मूलपाठ—'भते' त्ति भगव गोयमे समण भगवं महावीर वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—एव खलु देवाणुप्पियाणं अन्तेवासी मेहे णाम अणगारे से ण भते! मेहे अणगारे कालमासे काल किच्चा कहिं गए? कहिं उववन्ने?

'गोयमाइ' समणे भगवं महावीरे भगव गोयम एव वयासी—एवं खलु गोयमा ! मम अन्तेवासी मेहे णाम अणगारे पयइभद्दए जाव विणीए । से णं तहारूवाणं थेराण अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइ अहिज्जइ, अहिज्जित्ता वारस भिक्खुपडिमाओ गुणरयणसवच्छरं तवोकम्मं काएणं फासेत्ता जाव किट्टेत्ता मए अब्भणुन्नाए समाणे गोयमाइ थेरे खामेइ, खामित्ता तहारूवेहिं जाव विउल पव्वयं दुरूहइ, दुरूहित्ता दब्भसंथारग-सथरइ, सथरित्ता दब्भ-संथारोवगए सयमेव पचमहव्वयाइं उच्चारेइ । वारसवासाइ सामण्णपरियाग पाउणित्ता, मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता, सट्ठि भत्ताइ अणसणाए छेदेत्ता, आलोइयपडिक्कन्ते उद्धियसल्ले समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा उद्धं चंदिम-सूर-गहगण-नक्खत्त-तारारूवाणं बहूइ जोयणाइं, बहूइ जोयणसयाइं, बहूइं जोयणसहस्साइं, बहूइं जोयण-सयसहस्साइं, बहूइं जोयणकोडीओ, बहूइ जोयणकोडा-कोडीओ उड्ढ दूर उप्पइत्ता सोहम्मी-साणसणंकुमारमाहिंद-बम्भलंतगमहासुक्कसहस्साराणयपाणयारणच्चुए तिन्नि य अट्ठारसुत्तरे गेवेज्जविमाणावाससए वीइवइत्ता विजए महा-विमाणे देवत्ताए उवन्नणे ।

तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता । तत्थ ण मेहस्स वि देवस्स तेत्तीसं सागरो-वमाइं ठिई पण्णत्ता ।

एस णं भते ! मेहे देवे ताओ देवलोयाओ आउक्खएणं ठिइक्खएण भवक्खएणं अणतरं चय चइत्ता कहिं गच्छि-हिइ ? कहि उववज्जिहिति ?

गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ, बुज्झिहिइ, मुच्चिहिइ, परिनिव्वाहिइ सव्वदुक्खाणमंत काहिइ ।

एव खलु जंवू ! समणेण भगवया महावीरेण आइगरेणं तित्थयरेण जाव संपत्तेणं अप्पोपालंभनिमित्त पढमस्स नायज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति वेमि ।

मूलार्थ—'भगवन्' इस प्रकार कह कर भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—"देवानुप्रिय के अन्तेवासी मेघ अनगार थे। भगवन् ! वह मेघ अनगार कालमास मे अर्थात् मृत्यु के अवसर पर काल करके किस गति मे गए ? और किस जगह उत्पन्न हुए ?"

'गौतम' इस प्रकार कह कर श्रमण भगवान् महावीर ने भगवान् गौतम से इस प्रकार कहा —"इस प्रकार हे गौतम ! मेरा अन्तेवासी मेघ अनगार प्रकृति से भद्र यावत् विनीत था। उसने तथारूप स्थविरो से सामायिक से प्रारम्भ करके ग्यारह अगो का अध्ययन किया। अध्ययन करके वारह भिक्षुप्रतिमाओ का और गुणरत्न-सवत्सर नामक तप का काय से स्पर्श करके यावत् कीर्त्तन करके, मेरी आज्ञा प्राप्त करके गौतमादि स्थविरो को खमाया। खमाकर तथारूप यावत् स्थविरो के साथ विपुल पर्वत पर आरोहण किया। दर्भ का सथारा विछाया। फिर दर्भ के सथारे पर स्थित होकर स्वय ही पाच महाव्रतो का उच्चारण किया। वारह वर्ष तक साधुत्वपर्याय का पालन करके एक मास की सलेखना से अपने शरीर को कृश करके, साठ भक्त अनशन से छेदन करके, आलोचना प्रतिक्रमण करके, शल्यो को उद्धृत करके, समाधि को प्राप्त होकर, कालमास मे मृत्यु को प्राप्त करके, ऊपर चन्द्र सूर्य ग्रहगण नक्षत्र और तारारूप ज्योतिष्क चक्र से वहुत योजन, वहुत सौ योजन, वहुत हजारो योजन, वहुत लाखो योजन, वहुत करोडो योजन और वहुत कोड़ाकोड़ी योजन लाघकर, ऊपर जाकर, सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र,

ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत देवलोको को तथा तीन सौ अठारह नवग्रैवयको के विमानावासो को लाघकर विजय नामक महाविमान मे देव के रूप मे उत्पन्न हुआ है।

इस विजय नामक अनुत्तर विमान मे किन्ही देवो की तेतीस सागरोपम की स्थिति कही है। उनमे से मेघ नामक देव को भी तेतीस सागरोपम की स्थिति कही है।"

"भगवन्! वह मेघ देव उस देवलोक से आयु का अर्थात् आयुकर्म के दलिको का क्षय करके, आयुकर्म की स्थिति का वेदन द्वारा क्षय करके तथा देवभव के शरीर का त्याग करके अर्थात् देवलोक से च्यवन करके किस गति मे जाएगा? किस स्थान पर उत्पन्न होगा?"

"हे गौतम! महा विदेह वर्ष मे (जन्म लेकर) सिद्धि प्राप्त करेगा। समस्त मनोरथो को सम्पन्न करेगा, केवलज्ञान से समस्त पदार्थों को जानेगा, समस्त कर्मों से मुक्त होगा और परिनिर्वाण प्राप्त करेगा, अर्थात् कर्मजनित समस्त विकारो से रहित हो जाने के कारण स्वस्थ होगा एव समस्त दु खो का अन्त करेगा।"

श्री सुधर्मा स्वामी अपने प्रधान शिष्य जम्बू स्वामी से कहते हैं—इस प्रकार हे जम्बू! श्रमण भगवान् महावीर ने, जो प्रवचन की आदि करने वाले तीर्थ की स्थापना करने वाले यावत् मुक्ति को प्राप्त हुए हैं, आप्त (हितकारी) गुरु को चाहिए कि वह अविहित कार्य करने वाले शिष्य को उपालम्भ दे, इस प्रयोजन से प्रथम ज्ञाताध्ययन का यह अर्थ कहा है, ऐसा मैं कहता हूँ, अर्थात् तीर्थंकर भगवान् ने जैसा फर्माया है, वैसा ही मैं तुमसे कहता हूँ। (२०)

प्रथम अध्ययन समाप्त

विशेष बोध—सर्वज्ञ सर्वदर्शी प्रभु महावीर केवलज्ञानी होने से प्रत्येक जीव के परभव-स्थान आदि सभी भावो को साक्षात् रूप से

जानते थे। इसी कारण गौतम स्वामी ने मेघ मुनि के परभव के विषय मे प्रश्न पूछा है।

गौतम स्वामी यद्यपि छद्मस्थ थे, तथापि चार ज्ञानो के धारक थे। केवली न होते हुए भी केवली के समान थे। प्रश्न पूछने के कारण यह नही समझना चाहिए कि उन्हे वह मालूम नही था। तथापि सर्व साधारण को जानकारी कराने के अभिप्राय से उन्होंने अनेक प्रश्न पूछे हैं। इसके अतिरिक्त सूत्ररचना की शैली भी ऐसी है है कि गौतम स्वामी से प्रश्न करवाकर भगवान् के द्वारा उत्तर के रूप मे विषय का स्पष्टीकरण किया जाय।

भगवान् का अन्तेवासी साधक मेघ मुनि कितनी दूर जा पहुँचा है। मानवलोक के ऊपर, ज्योतिष्क-मडल से भी ऊपर और सौधर्मादि देवलोको से तथा ग्रैवेयक विमानो से भी ऊपर विजय नामक अनुत्तर विमान है। कोटि-कोटि योजन से भी ऊपर वह विमान है। फिर भी सर्वज्ञ हस्तकमलवत् उसे देख रहे हैं। वहाँ का वैभव, आयु आदि सभी कुछ उनके केवलज्ञान मे झलक रहा है। गौतम स्वामी के प्रश्न का उत्तर व्यास-शैली मे दिया गया।

मेघ मुनि आत्म विजय करके विजय विमान मे उत्पन्न हुए।

विपुल पर्वत पर धीमे-धीमे चढ़े किन्तु विजय विमान मे पहुंचते जरा भी देर न लगी। इतनी शक्ति कहाँ से और कैसे टपक पडी ? किसी ने कहा है—

"कल तो कहते थे कि विस्तर से उठा जाता नही।
आज दुनिया से चले जाने की ताकत आ गई॥"

वस्तुत. जव तक वे जीर्ण-शीर्ण शरीर के वन्धन मे वधे थे, तव तक कमजोरी थी। उस शरीर से छुटकारा पाते ही असीम शक्ति का स्रोत उमड़ पडा।

दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि विजय विमान तक जाने की क्षमता उन्हे तप, जप, यम, नियम आदि के द्वारा प्राप्त हुई थी।

है, आहारादि का प्रमाण। साधु को आहार-पानी की मात्रा का ज्ञान भी अवश्य होना चाहिए।

वह प्रकृति से भद्र, विनीत, सरल एव क्रोध मान माया और लोभ को उपशान्त करने वाला मुनि मेघकुमार पुन सयम-पथ पर आरूढ हो गया। औपपातिक सूत्र मे मुनि के गुणो का विस्तृत वर्णन किया गया है। उन गुणो को मुनि मेघकुमार ने धारण किया। स्थविर सन्तो से ज्ञानाभ्यास किया और वह ज्ञान तथा क्रिया मे निष्ठ वन गया।

ज्ञानार्जन के लिए सेवकभाव को अगीकार करना आवश्यक है। जहा अध्येता और अध्यापक मे सेव्यसेवकभाव होता है वही ज्ञान की निर्मल गगा प्रवाहित होती है।

ज्ञानप्राप्ति के पश्चात् मेघ मुनि ने तपश्चर्या प्रारम्भ कर दी। तपस्या के बिना पूर्वोपार्जित कर्मों का क्षय नही होता। सवर के द्वारा नूतन कर्मवध रोक देने और तपस्या द्वारा पूर्वकृत कर्मो की निर्जरा कर देने पर ही मुक्ति का पथ प्रशस्त होता है। (४५)

मूलपाठ—तए णं से मेहे अणगारे अन्नया कयाइ समण भगव महावीरं वदइ, नमंसइ, वदित्ता नमसित्ता एवं वयासी—इच्छामि णं भते ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाए समाणे मासिय भिक्खुपडिम उवसपज्जिता ण विहरित्तए।

अहासुह देवाणुप्पिया ! मा पडिबधं करेह।

तए ण से मेहे समणेण भगवया महावीरेण अब्भणुन्नाए समाणे मासिय भिक्खुपडिम उवसपजित्ता ण विहरइ। मासिय भिक्खुपडिम अहासुत्त अहाकप्पं अहामग्ग सम्म काएण फासित्ता, पालित्ता, सोहेत्ता, तीरेत्ता, किट्टेत्ता पुणरवि समण भगव महावीर वदइ, नमंसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—

इच्छामि णं भते ! तुब्भेहि अब्भणुन्नाए समाणे दो-मासिय भिक्खुपडिम उवसपज्जित्ता ण विहरित्तए।

अहासुह देवाणुप्पिया ! मा पडिबधं करेह।

जहा पढमाए अभिलावो तहा दोच्चाए तच्चाए चतुत्थाए पचमाए छम्मासियाए सत्तमासियाए पढमसत्तराइंदियाए, दोच्चं सत्तराइदियाए, तच्च सत्तराइदियाए अहोराइदियाए वि एगराइदियाए वि।

तए ण से मेहे अणगारे वारस भिक्खुपडिमाओ सम्म काएण फासेत्ता पालेत्ता सोहेत्ता तोरेत्ता किट्टेत्ता पुणरवि वदइ, नमसइ, वंदित्ता नमसित्ता एवं वयासी—

इच्छामि ण भते ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाए समाणे गुण-रयणसवच्छर तवोकम्मं उवसपज्जित्ता णं विहरित्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबध करेह।

तए णं से मेहे अणगारे पढमं मासं चउत्थचउत्थेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेण दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे रत्ति वीरासणेण अवाउडएणं।

. दोच्च मासं छट्ठछट्ठेण०, तच्चं मास अट्ठमअट्ठमेणं, चउत्थं मास दसमदसमेण अणिक्खित्तेण तवोकम्मेण दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमुहे आयावण-भूमीए आयावेमाणे रत्ति वीरासणेण अवाउडएण। पचम मास दुवालसमंदुवालसमेण अणिक्खित्तेण तवोकम्मेणं दिया ठाणुक्कुडुए सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे रत्ति वीरासणेण अवाउडएण।

एव खलु एएणं अभिलावेण छट्ठे चोद्दसमं चोद्दसमेणं. सत्तमे सोलसमसोलसमेण, अट्ठमे अट्ठारसमं अट्ठारसमेण,

नवमे वीसतिय वीसतिमेणं, दसमे बावीसइमं बावीसइमेण, एक्कारसमे चउवीसइमं चउवीसइमेण, बारसमे छब्बीसइम छब्बीसइमेण, तेरसमे अट्ठावीसइम अट्ठावीसइमेण, चोद्दसमे तीसइम तीसइमेण, पंचदसमे बत्तीसइमं बत्तीसइमेण, सोलसमे मासे चउत्तीसइम चउत्तीसइमेण अणिक्खित्तेण तवोकम्मेण दिया ठाणुक्कुडुएणं सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे राइ वीरासणेण य अवाउडएण य।

तए ण मेहे अणगारे गुणरयणसवच्छर तवोकम्म अहासुत्त जाव सम्म काएण फासेइ, पालेइ, सोहेइ, तीरेइ, किट्टेइ, अहासुत्त अहाकप्प जाव किट्टेता समण भगव महावीर वदइ नमसइ, वंदित्ता नमसित्ता बहूहिं छट्ठट्ठमदसमदुवालसेहि मासद्धमासखमणेहिं विचित्तेहि तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। (४६)

मूलार्थ—तत्पश्चात् उन मेघ अनगार ने किसी समय श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'भगवन्! मैं आपकी अनुमति पाकर एक मास की मर्यादा वाली भिक्षुप्रतिमा को अगीकार करके विचरने की इच्छा करता हूँ।'

भगवान् ने कहा - 'देवानुप्रिय! तुम्हे जैसे सुख उपजे वैसा करो। प्रतिबन्ध अर्थात् इच्छित कार्य का विघात न करो—बिलम्ब न करो।'

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर द्वारा अनमति पाये हुए मेघ अनगार एक मास की भिक्षुप्रतिमा अगीकार करके विचरने लगे।

एक मास की भिक्षुप्रतिमा को सूत्र के अनुसार, कल्प (आचार) के अनुसार, मार्ग (ज्ञानादिक मार्ग या क्षयोपशमभाव) के अनुसार

सम्यक् प्रकार से काय से ग्रहण किया, निरन्तर सावधान रहकर उसका पालन किया, पारणा के दिन गुरु को देकर शेप बचा भोजन करके शोभित किया अथवा अतिचारो का निवारण करके शोधित किया. प्रतिमा का काल पूर्ण हो जाने पर भी किंचित् काल अधिक प्रतिमा मे रहकर तीर्ण किया, पारणा के दिन प्रतिमासवधी कार्यो का कथन करके कीर्त्तन किया। इस प्रकार समीचीन रूप से काया से स्पर्श करके, पालन करके, शोभित या शोधित करके, तीर्ण करके एव कीर्त्तन करके पुन. श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

भगवन्! आपकी अनुमति पाकर के मैं दो मास की भिक्षुप्रतिमा अगीकार करके विचरना चाहता हूँ।

भगवान् ने कहा—देवानुप्रिय! जैसे सुख उपजे वैसा करो, प्रतिवन्ध मत करो।

जिस प्रकार पहली प्रतिमा का आलापक कहा है, उसी प्रकार दूसरी प्रतिमा दो मास की, तीसरी तीन मास की, चौथी चार मास की, पाचवी पांच मास की, छठी छह मास की, सातवी सात मास की, फिर पहली अर्थात् आठवी सात अहोरात्र की, दूसरी अर्थात् नौवी भी सात अहोरात्र की, तीसरी अर्थात् दशमी भी सात अहोरात्र की और ग्यारहवी तथा वारहवी एक-एक अहोरात्र की कह लेना चाहिए।

इस प्रकार मेघ अनगार ने वारहो भिक्षुप्रतिमाओ का सम्यक् प्रकार से कार्य से स्पर्श करके, पालन करके, शोधन करके, तीर्ण करके और कीर्त्तन करके पुन श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

भगवन्! मैं आपकी आज्ञा प्राप्त करके गुणरत्नसवत्सर नामक तपश्चरण अंगीकार करके विचरना चाहता हूँ।

भगवान् बोले—हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख उपजे वैसा करो, प्रतिबन्ध मत करो।

[गुणरत्नसवत्सर नामक तप मे तेरह मास और सतरह दिन उपवास के होते है और तिहत्तर दिन पारणा के। इस प्रकार सोलह मास मे इस तप का अनुष्ठान किया जाता है। तपस्या का यत्र इस प्रकार है—

मास	तप	तपोदिन	पारणादिवस	कुलदिन
१	उपवास	१५	१५	३०
२	बेला	२०	१०	३०
३	तेला	२४	८	३२
४	चौला	२४	६	३०
५	पचोला	२५	५	३०
६	छह उपवास	२४	४	२८
७	सात ,,	२१	३	२४
८	आठ ,,	२४	३	२७
९	नौ ,,	२७	३	३०
१०	दस ,,	३०	३	३३
११	ग्यारह ,,	३३	३	३६
१२	बारह ,,	२४	२	२६
१३	तेरह ,,	२६	२	२८
१४	चौदह ,,	२८	२	३०
१५	पन्द्रह ,,	३०	२	३२
१६	सोलह ,,	३२	२	३४
		४०७	७३	४८०

जिस मास मे जितने दिन कम है, उसमें अगले मास के उतने दिन समझ लेने चाहिएँ। इसी प्रकार जिस माम मे अधिक है, उसके दिन अगले मास मे सम्मिलित कर लेने चाहिएँ।]

तत्पश्चात् मेघ अनगार पहले महीने मे निरतर चतुर्थभक्त अर्थात् एकान्तर उपवास की तपस्या के साथ विचरने लगे। दिन मे उत्कुट (गोदोहन) आसन से रहते और सूर्य के सन्मुख आतापना भूमि में आतापना लेते। रात्रि मे प्रावरण (वस्त्र) से रहित होकर वीरासन मे स्थित रहते थे।

इसी प्रकार दूसरे महीने मे निरन्तर षष्ठभक्त तप, तीसरे महीने मे अष्टमभक्त, चौथे महीने मे दशमभक्त तप करते हुए विचरने लगे। दिन मे उत्कुट आसन मे स्थित रहते। सूर्य के सन्मुख आतापनाभूमि मे आतापना लेते और रात्रि मे प्रावरण रहित होकर वीरासन से रहते।

पाचवे मास मे द्वादशम-द्वादशम (पचोले-पचोले) का निरन्तर तप करने लगे। दिन मे उकडू आसन से स्थित होकर सूर्य के सन्मुख आतापना भूमि मे आतापना लेते और रात्रि मे प्रावरणरहित होकर वीरासन से रहते थे।

इस प्रकार इसी अलापक के साथ छठे मास मे छह-छह उपवास का, सातवे मास मे सात-सात उपवास का, आठवे मास मे आठ-आठ उपवास का, नौवे मास मे नौ-नौ उपवास का, दसवे मास मे दस-दस उपवास का, ग्यारहवे मास मे ग्यारह-ग्यारह उपवास का, वारहवें मास मे वारह-बारह उपवास का, तेरहवे मास मे तेरह-तेरह उपवास का, चौदहवे मास मे चौदह-चौदह उपवास का, पन्द्रहवे मास मे पन्द्रह-पन्द्रह उपवास का और सोलहवे मास मे सोलह-सोलह उपवास का निरन्तर तपश्चरण करते हुए विचरने लगे। दिन मे उकडू आसन से सूर्य के सन्मुख आतापनाभूमि मे आतापना लेते थे और रात्रि मे प्रावरणरहित होकर वीरासन से स्थित रहते थे।

तत्पश्चात् मेघ अनगार ने गुणरत्नसवत्सर नामक तप कर्म सूत्र के अनुसार यावत् सम्यक् प्रकार से काय द्वारा स्पर्श किया, पालन किया, शोधित या शोभित किया तथा कीर्त्तित किया।

सूत्र के अनुसार और कल्प के अनुसार यावत् कीर्त्तन करके श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन किया, नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके वहुत-से षष्ठभक्त, अष्टमभक्त, दशमभक्त, द्वादशम भक्त, आदि तथा अर्धमासखमण एव मासखमण आदि विचित्र प्रकार के तप कर्म करके आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। (४९)

विशेष बोध—

नमन्ति सफला वृक्षा, नमन्ति कुलज नरा.।
शुष्ककाष्ठञ्च मूर्खाश्च, न नमन्ति कदाचन ।।

मेघकुमार मुनि क्षत्रियपुत्र एव प्रतिष्ठित कुल मे उत्पन्न हुए थे। अतएव ठोकर लगने पर शीघ्र ही सभल गए। भगवान् ने उनकी भावना सुदृढ कर दी। अब वे घोर तपश्चरण के लिए उद्यत हो गए।

उत्तम जाति के काष्ठ से उत्तम फर्नीचर बनता है, अच्छे पाषाण से सुन्दर मूर्त्ति बनती हे, अच्छी मृत्तिका से अच्छे पात्र बनते है। इसी प्रकार सत्कुल और उत्तम जाति वाले मानव प्राय धर्म के सुपात्र होते है।

इसका आशय यह नही कि धर्म के आचरण की योग्यता या पात्रता का सबध किसी कुल अथवा जाति के साथ है। अनेक महा-मुनि ऐसे भी हुए है जो जाति और कुल से हीन गिने जाते थे। फिर भी वे उत्कृष्ट सयम के पात्र बने।

उत्तम जाति और कुल की विशेषता यही है कि उसमे जन्मे व्यक्तियो को अनायास ही सुसस्कारो का लाभ मिल जाता है, क्योकि माता-पिता का प्रभाव सन्तान पर अवश्य पड़ता है। यदि

माता-पिता सुसस्कृत होते है तो सन्तान के सुसस्कृत होने की अधिक सभावना रहती है।

मेघ मुनि पुण्यशाली थे कि उन्हे महाराज श्रेणिक जैसे पिता और धारिणी देवी जैसी माता की प्राप्ति हुई। इनके सान्निध्य से सहज ही उसमे धर्मभाव उत्पन्न होगया।

मुनि मेघ ने जब प्रतिमावहन की आज्ञा मागी तो भगवान् ने तुरन्त आज्ञा प्रदान कर दी। कहा—'अहासुख देवाणुप्पिया ! मा पडिबध करेह।'

प्रतिमा एक प्रकार का तपोऽनुष्ठान है। यहा मूल या टीका मे उसका विवरण नही दिया गया है। टीकाकार श्री अभयदेव सूरि ने इतना ही कहा है कि इसकी विधि अन्य ग्रथो से जान लेना चाहिए।

प्रतिमा के विषय मे परम्परा यह है कि एक मास की भिक्षु-प्रतिमा मे दिन भर मे एक दात पानी की और एक दात आहार की ली जाती है। तात्पर्य यह कि पारणा के दिन गृहस्थ के घर प्रतिमा-धारी मुनि भिक्षा के लिए जाय। गृहस्थ पात्र मे पानी वहरावे तो एक ही धार मे जितना पानी पात्र मे गिरा हो उतना ही ले। एक बार धार रुक जाने के बाद दूसरी बार न ले। आहार के लिए भी इसी प्रकार समझना चाहिए। इसे एक दात (दत्ति) पानी की और एक दात आहार की कहते है। एक मास पर्यन्त यही क्रम चलता है।

अन्य प्रतिमाओ के सबंध मे भी ऐसा ही यथायोग्य समझ लेना चाहिए।

भिक्षुप्रतिमा और गुणरत्नसवत्सर जैसे उग्र तप उस काल की विशेषता थे। इस प्रकार की तपस्या करनेवाले साधक उग्रतपस्वी या घोर तपस्वी कहलाते थे।

मेघ मुनि राजसी वैभव मे पलकर भी इस प्रकार की तपश्चर्या करने लगे। वे रात्रि मे वीरासन से स्थित रहते, दिन मे उकडू आसन से सूर्य के सन्मुख होकर आतापना लेते।

वीरासन मे स्थित रहना ही कितना कठिन है। कोई मनुष्य दोनो पेर धरती पर टेक कर कुर्सी पर बैठे और फिर कुर्सी हटा ली जाय तो उसका जो आसन होता है, वह वीरासन कहलाता है। रात्रि भर इस आसन से रहना अत्यन्त धैर्य और साहस का काम है।

मेघकुमार मुनि साधना के पथ पर बहुत आगे बढ गए। क्योकि उन्होने समझ लिया था कि जन्म-जन्मान्तर मे बद्ध कर्मों के क्षय का उपाय तपश्चर्या ही है। वे यह भी जान गए थे कि शरीर नाशवान है। लालन पालन करने पर भी वह अन्तत विशीर्ण होता ही है। तो फिर क्यो नही आत्मा की विशुद्धि के लिए इसका पूरा उपयोग कर लिया जाय ! ऐसा अवसर फिर नही मिलने का।

इस प्रकार की विचारधारा से प्रेरित होकर उन्होने जो तपश्चर्या आरभ की वह साधारण जन के लिए आश्चर्यजनक है। उनकी तपश्चर्या आगम के अनुकूल एव कल्प के अनुसार थी। उसका शास्त्रकार ने जिन शब्दो मे वर्णन किया है, उससे स्पष्ट है कि बडे ही धैर्य, उत्साह, चढते परिणाम और असाधारण सहनशीलता के साथ वे तपस्या कर रहे थे। (४८)

मूलपाठ—तए णं से मेहे अणगारे तेणं उरालेणं विपुलेणं सस्सिरीएणं पयत्तेणं पग्गहिएणं कल्लाणेणं सिवेणं धन्नेणं मगल्लेण उदग्गेणं उदारएण उत्तमेणं महाणुभावेण तवोकम्मेणं सुक्के भुक्खे लुक्खे निम्मसे निस्सोणिए किडि-किडियाभूए अट्ठिचम्मावणद्धे किसे धमणिसंतए जाए यावि होत्था।

जीवजीवेण गच्छइ, जीवजीवेण चिट्ठइ, भासं भासित्ता गिलायइ, भासं भासमाणे गिलायइ, भासं भासिस्सामि त्ति गिलायइ।

से जहा नामए इगालसगडियाइ वा, कट्ठसगडियाइ वा, पत्तसगडियाइ वा, तिलसगडियाइ वा, एरडकट्ठसगडियाइ वा, उण्हे दिण्णा सुक्का समाणी ससद्दं गच्छइ, ससद्द चिट्ठइ, एवामेव मेहे अणगारे ससद्दं गच्छइ, ससद्दं चिट्ठइ, उवचिए तवेरा, अवचिए मंससोणिएण, हुयासणे इव भासरासिपरिछन्ने, तवेण तेएण तवतेयसिरीए अईव अईव उवसोभेमाणे उवसोभेमाणे चिट्ठइ ।

तेण कालेण तेणं समएरा समणे भगव महावीरे आइगरे तित्थयरे जाव पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे, गामाणुगाम दूइज्जसुहंसुहेण विहरमाणे जेणामेव रायगिहे नगरे जेणामेव गुणसिलए चेइए तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूव उग्गहं उग्गिण्हित्ता सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ । (४७)

मूलार्थ—तत्पश्चात् वे मेघ अनगार उस उराल-प्रधान, विपुल-दीर्घकालिक होने से विस्तीर्ण, सश्रीक-शोभासम्पन्न, गुरुद्वारा प्रदत्त अथवा प्रयत्नसाध्य, वहुमानपूर्वक गृहीत, कल्याणकारी, नीरोगताजनक, शिव-मुक्ति के कारणभूत, धन्य-धन प्रदान करने वाले, मागल्य-पापविनाशक, उदग्र-तीव्र, उदार-निष्काम होने के कारण औदार्य वाले, उत्तम-अज्ञानान्धकार से रहित, और महान् प्रभाव वाले तपश्चरण से शुष्क—नीरस, भूखे, रूक्ष, मासरहित और रुधिर-रहित हो गए । उठते-वैठते उनके हाड कडकडाने लगे । उनकी हड्डिया केवल चमडे से मढी रह गई । शरीर कृश और नसो से व्याप्त हो गया ।

वे अपने जीव के बल से ही चलते एव जीव के बल से ही खड़े रहते । भाषा वोलकर थक जाते, बात करते-करते थक जाते, यहा तक कि 'मैं वोलू गा' ऐसा विचार करते भी थक जाते थे । तात्पर्य यह

है कि पूर्वोक्त तपस्या के कारण उनका शरीर अत्यन्त ही दुर्बल हो गया था।

जैसे कोई कोयलो से भरी गाडी हो, लकडियो से भरी गाडी हो, पत्तो से भरी गाडी हो, तिलो (तिल के डठलो से) भरी गाडी हो अथवा एरण्ड के काष्ठो से भरी गाडी हो, धूप मे रखकर सुखाई गई हो अर्थात् कोयला, लकडी, पत्ते आदि खूब सुखा लिये गये हो और फिर गाडी मे भरे गए हो तो वह गाडी खडखड की आवाज करती हुई चलती है और खडखड की आवाज करती हुई ठहरती है, उसी प्रकार मेघ अनगार हाडो की खडखडाट के साथ चलते थे और खडखडाट के साथ खडे रहते थे। वे तपस्या से तो उपचित—वृद्धिप्राप्त थे, मगर मास और रुधिर से अपचित—ह्रास को प्राप्त हो गये थे। वे भस्म से आच्छादित अग्नि की तरह तपस्या के तेज से देदीप्यमान थे। वे तपस्तेज की लक्ष्मी से अतीव-अतीव शोभायमान हो रहे थे।

उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर धर्म की आदि करने वाले, तीर्थ की स्थापना करने वाले, यावत् अनुक्रम से चलते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम का उल्लघन करते हुए, सुखपूर्वक विहार करते हुए, जहा राजगृह नगर था और जहा गुणसिलक चैत्य था, उसी जगह पधारे। पधार कर यथोचित अवग्रह (उपाश्रय) की आज्ञा लेकर सयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। (४७)

विशेष बोध—मुनि मेघकुमार एक वार विचारो से गिर कर भी उठ खडे हुए। सभले और खूब सभले। जैसे लम्बी छलाग मारने से पूर्व सिह दो कदम पीछे हटता है और फिर छलाग मारता है, ऐसी ही स्थिति मेघ मुनि की हुई। वे अब घोर तपस्वी बन गए। लम्बी और भावपूर्वक तपस्या करने वाला घोर तपस्वी कहलाता है।

तपस्वी जो तपस्या करे वह गुरु की आज्ञा प्राप्त करके ही करे, तभी वह शोभासम्पन्न कही जा सकती है। अपने बल, पराक्रम एव

योग्यता को तोल कर ही तपश्चर्या की जानी चाहिए। तपस्या करके आलसी की तरह पडा नही रहना चाहिए किन्तु नियत समय पर स्वाध्याय और ध्यान करके आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, वाल एव ग्लान आदि मुनियो की यथायोग्य वैयावृत्य भी करना चाहिए।

तप की विशुद्धि कषायहीनता से होती है। अतएव तपस्वी को क्रोध और मान आदि कषायो से बचना चाहिए। अपने अध्यवसाय को उपशममय बनाना चाहिए।

शास्त्र मे बतलाया गया है कि तपस्या के पीछे किसी प्रकार की इस लोक सबधी कामना, परलोकसबधी कामना अथवा यश-कीर्त्ति की कामना नही होनी चाहिए। केवल कर्मनिर्जरा के उद्देश्य से ही तपश्चरण करना चाहिए। इस प्रकार की निष्काम तपस्या ही मुक्तिप्रदायिनी होती है। लौकिक लाभ एव यशकीर्त्ति तो तपस्वी को आकांक्षा न करने पर भी उसी प्रकार प्राप्त हो जाती है जैसे अन्न के लिए खेती करने पर किसान को भूसा आदि प्राप्त हो जाते है।

मुनि मेघकुमार की तपस्या ऐसी ही आदर्श थी। ऐसी तपस्या महामगलमयी होती है।

पहले ज्ञानार्जन किया जाय और फिर तपश्चरण किया जाय तो वह विशिष्ट फलप्रद होता है। उससे अत्यधिक निर्जरा होती है। अज्ञानी जीव कोटि-कोटि जन्मो मे जितने कर्मो का क्षय कर पाता है, ज्ञानी क्षण भर मे उतने कर्मो का अन्त कर डालता है। मेघमुनि ने ज्ञानाराधना करने के पश्चात् अपनी समग्र शक्ति तपस्या मे लगा दी।

तपस्या इतनी तीव्र थी कि उसके कारण मेघ मुनि का मास और रक्त सूख गया। हाड़ और चमड़ी ही उनके शरीर मे अवशिष्ट रह गए। मगधसम्राट् के लाडले पुत्र के शरीर का सौन्दर्य न जाने कहा

विलीन हो गया ! तपस्या की अग्नि मे उन्होने अपने मृदुल शरीर को झोक दिया।

यह है अपने शरीर के प्रति निस्पृहता ! और जो अपने शरीर के प्रति भी इतना निस्पृह हो जाता है, उसे ससार के अन्य पदार्थो के प्रति स्पृहा कैसे रह सकती है। वह सर्वथा निष्काम वन जाता है।

मेघ मुनि तपस्या के कारण अत्यन्त कृश एव दुर्वल हो गए। उठते-बैठते उनके हाड खडखड़ाते थे, जैसे सूखे पत्ते गाड़ी मे भरे जाने पर खडखड़ करते है। वे वात करके थक जाते, वात करते-करते थक जाते, यहा तक कि वात करने के विचार से भी थक जाते थे।

कैसी उग्रतर तपश्चर्या! कितनी उन्नत भावना ! कैसी निस्पृह-वृत्ति ! कितना धैर्य ! मेघ मुनि धन्य है और हमारे लिए आदर्श है।

शरीर से कृश और दुर्वल हो जाने पर भी वे सर्वथा शक्तिहीन नही हो गए थे। उनका शरीरवल जितना कम हुआ था, उससे कई गुणा आत्मवल वृद्धि को प्राप्त हुआ था। वे तप की अपूर्व ज्योति से जगमगा उठे थे। उनके चेहरे पर तपस्तेज अपनी अनूठी दीप्ति प्रकट कर रहा था। तपश्चर्या की लक्ष्मी से मेघ अनगार उसी प्रकार शोभायमान हो रहे थे जैसे आसौज के सघन वादलो के बीच कोई खुला और दीप्तिमान् नक्षत्र चमक रहा हो।

श्रमण भगवान् महावीर विचरते-विचरते राजगृह नगर पधारे और नगर से वाहर गुणसिलक नामक उसी पूर्ववर्णित उद्यान मे विराजमान हुए। भगवान् स्वय घोर तपस्वी थे। तप और सयम उनके मत मे आत्मशुद्धि के मूलाधार थे। इन्ही के अवलम्बन से भगवान् ने सर्वज्ञ-सर्वदर्शी होकर परमात्मपद प्राप्त किया था। यह मार्ग सौभाग्य से मिला तो हमे भी है मगर देखना है, कि उस युग और इस युग के आचार-व्यवहार मे कितना परिवर्त्तन आ गया है। (४७)

मूलपाठ—तए णं तस्स अणगारस्स राओ पुव्वरत्ता-वरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयमेया-रूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पजित्था—

एव खलु अह इमेण उरालेणं तहेव जाव भासं भासि-स्सामि त्ति गिलामि, त अत्थि ता मे उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे सद्धा धिई सवेगे, जाव य मे धम्मायरिए धम्मोवएसए समणे भगवं महावीरे जिणे सुहत्थी विहरइ ताव मे सेय कल्ल पाउप्पभायाए रयणीए जाव तेयसा जलते सूरे समणं भगवं महावीरं वंदित्ता नमंसित्ता समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुन्नायस्स समाणस्स सयमेव पच महव्वयाइं आरुहित्ता गोयमाइए समणे निग्गंथे निग्गंथीओ य खामेत्ता तहारूवेहि कडाईहि थेरेहिं सद्धिं विउलं पव्वयं सणियं सणियं दुरूहित्ता, सयमेव मेहघणसन्नि-गासं पुढविसिलापट्टय पडिलेहिता, संलेहणा-झूसणाए झूसि-यस्स भत्तपाण-पडियाइक्खियस्स पाओवगयस्स कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तए।

एवं संपेहेइ, सपेहित्ता कल्ल पाउप्पभायाए रयणीए जाव जलंते जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवाग-च्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता नच्चासन्ने नाइदूरे, सुस्सूसमाणे नमंसमाणे अभिमुहे विणएण पजलिउडे पज्जुवासइ।

मेहे त्ति समणे भगवं महावीरे मेहं अणगार एवं वयासी—

से नूणं तव मेहा ! राओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि

धम्मजागरिय जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था–एव खलु अह इमेणं ओरालेण जाव जेणेव अह तेणेव हव्वमागए से णूण मेहा! अट्ठे समट्ठे ?

'हता अत्थि।'

अहा सुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबध करेह। (४८)

मूलार्थ तत्पश्चात् उन मेघ अनगार को रात्रि मे पूर्वरात्रि और पिछली रात्रि के समय अर्थात् मध्यरात्रि मे धर्मजागरणा करते हुए इस प्रकार का अध्यवसाय उत्पन्न हुआ—

"इस प्रकार मै इस प्रधान तप के कारण, इत्यादि पूर्वोक्त सब कथन यहा कहना चाहिए, यावत् 'भाषा बोलू गा' ऐसा विचार आते ही थक जाता हूँ। तो अभी मुझमे उठने की शक्ति है, बल, वीर्य, पुरुषकार, पराक्रम, श्रद्धा, धृति और सवेग है। तो जब तक मुझमे उत्थान—कार्य करने की शक्ति, बल, वीर्य, पुरुषकार, पराक्रम, श्रद्धा, धृति और सवेग है तथा ब तक मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर गधहस्ती के समान जिनेश्वर देव विचर रहे है, तब तक कल रात्रि के प्रभातरूप मे प्रकट होने के बाद यावत् सूर्य के तेज से जाज्वल्यमान होने पर मैं श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना और नमस्कार करके, श्रमण भगवान् महावीर की आज्ञा लेकर स्वय ही पाच महाव्रतो को पुन अगीकार करके, गौनम आदि श्रमण निर्ग्रन्थियो को खमा कर, तथारूपधारी एव योगवहन आदि क्रियाएँ जिन्होने की हैं, ऐसे स्थविरो के साथ धीरे-धीरे विपुलाचल पर आरूढ होकर स्वय ही सघन मेघ के सदृश पृथ्वीशिलापट्टक का प्रतिलेखन करके, सलेखना करके, आहार-पानी का त्याग करके, पादपोपगमन अनशन धारण करके मृत्यु की आकाक्षा न करता हुआ विचरूँ।"

मेघ मुनि ने इस प्रकार विचार किया। विचार करके दूसरे दिन

रात्रि के प्रभात रूप मे परिणत होने पर यावत् सूर्य के जाज्वल्यमान होने पर जहा श्रमण भगवान् महावीर थे, वहाँ पहुँच कर श्रमण भगवान् महावीर को तीन वार दाहिनी ओर से आरम्भ करके प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वन्दना की, नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके न वहुत समीप और न वहुत दूर—योग्य स्थान पर स्थित हो कर शुश्रूषा करते हुए, नमस्कार करते हुए, सन्मुख, विनय के साथ, दोनो हाथ जोडकर उपासना करने लगे, अर्थात् वैठ गए।

'हे मेघ' इस प्रकार सम्वोधन करके श्रमण भगवान् महावीर ने मेघ अनगार से इस भाति कहा—निश्चय ही हे मेघ! रात्रि मे, मध्यरात्रि के समय धर्मजागरणा जागते हुए तुम्हे इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ है कि—इस प्रकार निश्चय ही मै इस प्रधान तप के कारण, इत्यादि, यावत् जहा मैं हूँ वहा तुम तुरन्त आए हो। मेघ! क्या यह अर्थ समर्थ है? अर्थात् यह सत्य है?

मेघ मुनि वोले—हाँ, यह अर्थ समर्थ है।

तव भगवान् ने कहा—देवानुप्रिय! जैसे सुख उपजे वैसा करो, प्रतिवन्ध न करो। (४८)

विशेष वोध—मेघकुमार मुनि के अन्त करण मे अव एक विमलतर विचार लहरी उत्पन्न हुई। मध्यरात्रि का समय था। सर्वत्र शान्ति का प्रसार हो रहा था। मुनिराज धर्मविचारणा मे तल्लीन थे।

जागरणा अनेक प्रकार की होती है। धर्म-चिन्तन करते हुए मनुष्य का जागना धर्मजागरणा है। कुटुम्व के सम्वन्ध मे गहरा विचार आने पर नीद नही आती और व्यक्ति जागता है, वह कुटुम्व-जागरणा कहलाती है। अर्थ के लिए या अर्थसम्वन्धी चिन्तन के कारण होने वाली जागरणा अर्थजागरणा है, आदि।

मेघ मुनि धर्म जागरणा कर रहे थे। आत्मा के स्वरूप मे एकान्त भाव से रमण कर रहे थे। कुटुम्वजागरणा या अर्थ जागरणा अथवा अन्य किसी प्रकार की जागरणा से उन्हे कोई सरोकार नही था।

की वेला आने पर यही होता है। परिवार कही रह जाता है और जीव अकेला कही का कही पहु च जाता है।

मेरुप्रभ हाथी अकेला पड गया। वह उसी ओर भागा जिस ओर उसने मडल बनाया था।

मनुष्य के विवेक की सार्थकता इसी मे है कि वह भी सकट का अवसर आने से पूर्व ही अपने लिए ऐसा सुरक्षित स्थान बना ले जहाँ पहु च कर निर्भय बन सके। (४३)

मूलपाठ—तए णं तुमं मेहा ! अन्नया कयाइ कमेणं पंचसु उउसु सम-इक्कतेसु गिम्हकालसमयंसि जेट्ठामूले मासे पायवसघससमुट्ठिएरग जाव सवट्टिएसु मिय-पसु-पक्खि-सिरीसवेसु दिसोदिसिं विप्पलायमाणेसु तेहिं बहूहिं हत्थीहि य सद्धि जेणेव मंडले तेरगेव पहारेत्थ गमणाए।

तत्थ ण अण्णे बहवे सीहा य, वग्घा य, विगया दीविया अच्छा य, रिच्छ-तरच्छा य, पारासरा य, सरभा य, सियाला विराला सुणहा, कोला, ससा, कोकंतिया, चित्ता, चिल्लला पुव्वपविट्ठा अग्गिभयविद्दुया एगयओ बिलधम्मेणं चिट्ठंति।

तए णं तुमं मेहा ! जेणेव से मंडले तेणेव उवागच्छसि, उवागच्छित्ता तेहिं बहुहिं सीहेहिं जाव चिल्ललएहि य एगयओ बिलधम्मेरगं चिट्ठसि।

तए रग तुम मेहा ! पाएण गत्त कडुइस्सामि त्ति कट्टु पाए उक्खित्ते, तंसि च णं अतरसि अन्नेहिं बलवतेहिं सत्तेहि परगोलिज्जमाणे पणोलिज्जमाणे ससए अणुपविट्ठे।

तए णं तुम मेहा ! गाय कंडुइत्ता पुणरवि पायं पडि-निक्खमिस्सामि त्ति कट्टु त ससयं अणुपविट्ठं पाससि,

पासित्ता पाणाणुकंपयाए भूयाणुकंपयाए जीवाणुकंपयाए सत्ताणुकंपयाए से पाए अंतरा चेव सधारिए, नो चेव णं णिक्खित्ते ।

तए ण तुम मेहा ! ताए पाणाणुकपयाए जाव सत्ताणु-कपयाए ससारे परित्तीकए, मणुस्साउए निबद्धे ।

तए ण से वणदवे अड्ढाइज्जाइं राइंदियाइ तं वण झामेइ, झामेत्ता निट्ठिए, उवरए, उवसते, विज्झाए यावि होत्था ।

तए णं ते बहवे सीहा य जाव चिल्ललया य तं वणदवं निट्ठिय जाव विज्झायं पासंति, पासित्ता अग्गिभयविप्पमुक्का तण्हाए य छुहाए य परब्भाहया समाणा तओ मण्डलाओ पडिणिक्खमति, पडिणिक्खमित्ता सव्वओ समंता विप्प-सरित्था ।

तए ण तुम मेहा ! जुण्णे जराजज्जरियदेहे सिढिलवलिय-यापिणिद्धगत्ते दुब्बले किलते जु जिए पिवासिए अत्थामे अबले अपरक्कमे अचंकमणो वा ठाणुखंडे वेगेणं विप्पसरि-स्सामि त्ति कट्टु पाए पसारेमाणे विज्जुहए विव रयय-गिरिपब्भारे धरणियलंसि सव्वंगेहि य सन्निवइए ।

तत्थ णं तवं मेहा ! सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया उज्जला जाव दाहवक्कतीए यावि विहरसि । तए णं तुमं मेहा ! तं उज्जलं जाव दुरहियास तिन्न राइंदियाइ वेयणं वेदेमाणे विहरित्ता एग वाससयं परमाउ पालइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे रायगिहे नयरे सेणियस्स रण्णो धारिणीए देवीए कुच्छिसि कुमारत्ताए पच्चायाए ।

(४४)

मूलार्थ—हे मेघ ! किसी समय पाच ऋतुए व्यतीत हो जाने पर ग्रीष्म काल के अवसर पर, जेठ मास मे वृक्षो की परस्पर रगड़ से उत्पन्न हुए दावानल के कारण यावत् अग्नि फैल गई और मृग, पशु, पक्षी तथा सरीसृप आदि भाग दौड करने लगे। तब तुम बहुत-से हाथियो आदि के साथ जहा वह मडल था वहाँ जाने के लिए दौडे।

(यह दूसरा गम है, अर्थात् अन्य आचार्यो के मतानुसार पूर्वोक्त पाठ के स्थान पर यह पाठ है।)

उस मडल मे अन्य बहुत से सिंह, व्याघ्र, भेडिया, द्वीपिक, चीते, रीछ, तरच्छ, पारासर, शरभ, श्रृगाल, बिडाल, श्वान, शूकर, खर-गोश, लोमडी, चित्र और चिल्लल आदि पशु अग्नि के भय से पराभूत होकर पहले से ही आ घुसे थे और एक साथ बिलधर्म से रहे हुए थे—अर्थात् जैसे एक बिल मे बहुत-से मकोडे ठसाठस भरे रहते हैं, उसी प्रकार उस मडल मे भी पूर्वोक्त जीव ठसाठस भरे थे।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम जहा मडल था वहा आए और आकर उन बहुसख्यक सिंह यावत् चिल्ललक आदि के साथ एक जगह बिल-धर्म मे ठहर गए।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुमने 'पैर से शरीर खुजाऊ' ऐसा सोचकर एक पैर ऊपर उठाया। इसी समय उस खाली हुई जगह मे अन्य बलवान् प्राणियो द्वारा प्रेरित—धकियाया हुआ एक शशक प्रविष्ट हो गया।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुमने पैर से खुजाकर सोचा कि मैं पैर नीचे रक्खू, परन्तु शशक को पैर की जगह मे घुसा हुआ देखा। देखकर द्वीन्द्रियादि प्राणियो की अनुकम्पा से, वनस्पतिरूप भूतो की अनु-कम्पा से, पचेन्द्रिय जीवो की अनुकम्पा से तथा वनस्पति के सिवाय शेप चार स्थावर सत्त्वो की अनुकम्पा से वह पैर अधर ही रक्खा। नीचे नही रक्खा।

हे मेघ ! तब उस प्राणानुकम्पा यावत् सत्त्वानुकम्पा से तुमने संसार परीत किया और मनुष्यायु का बन्ध किया।

तत्पश्चात् वह दावानल अढाई अहोरात्रपर्यन्त उस वन को जलाकर पूर्ण हो गया, उपरत हो गया, उपशान्त हो गया और बुझ गया।

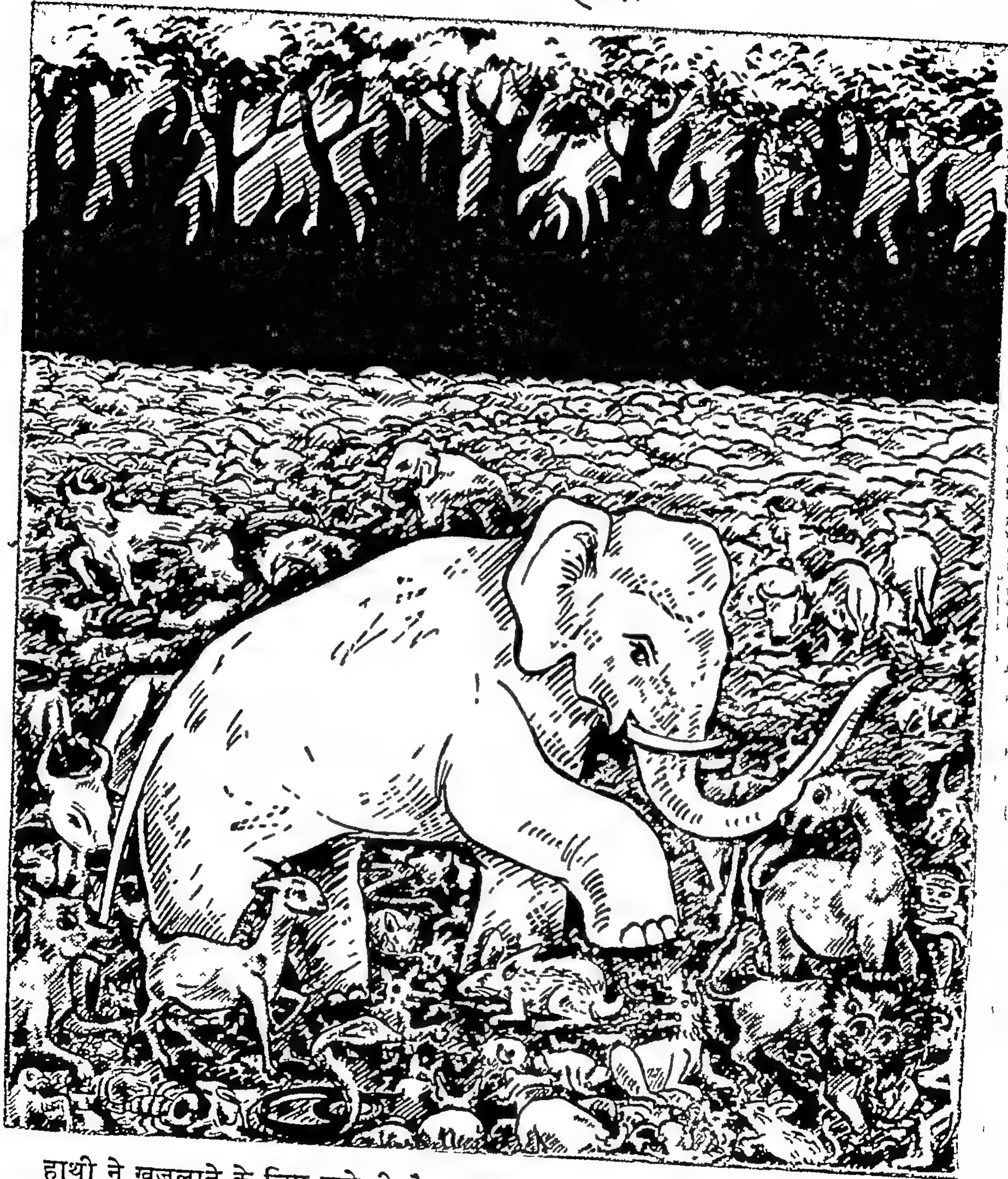
तब उन बहुत-से सिंह यावत् चिल्ललक आदि प्राणियो ने उस वन-दावानल को पूरा हुआ यावत् बुझा हुआ देखा और देखकर वे अग्नि के भय से मुक्त हुए। वे प्यास एव भूख से पीडित होते हुए उस मडल से बाहर निकले और निकलकर चहु ँ ओर फैल गए।

हे मेघ ! उस समय तुम वृद्ध, जरा से जर्जरित शरीर वाले, शिथिल एव सलो वाली चमड़ी से व्याप्त गात्र वाले, दुर्बल, थके हुए, भूखे-प्यासे, शारीरिक शक्ति से हीन, सहारा न होने से निर्बल, सामर्थ्य से रहित, चलने-फिरने की शक्ति से रहित और ठूठ की तरह स्तब्ध रह गए। 'मैं वेग से चलू ँ' ऐसा विचार कर ज्यों ही पैर पसारा कि विद्युत् से आहत रजतगिरि के शिखर के समान सभी अगो से तुम धडाम से धरती पर गिर पडे।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम्हारे शरीर मे उत्कट वेदना उत्पन्न हुई तथा दाहज्वर उत्पन्न हुआ। तुम ऐसी स्थिति मे रहे। तब हे मेघ ! तुम उस उत्कट यावत् दुस्सह वेदना को तीन रात्रि-दिवस पर्यन्त भोगते रहे। अन्त मे सौ वर्ष की आयु भोग कर इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे, भारतवर्ष मे, राजगृह नगर मे श्रेणिक राजा की धारिणी देवी की कू ंख मे कुमार के रूप मे उत्पन्न हुए। (४४)

विशेष बोध—मेरुप्रभ हाथी आग से भयभीत हो पूर्वनिर्मित मंडल मे चला गया। अग्नि के उत्पन्न होकर वन मे फैल जाने और उसके कारण वन्य जीवो के सन्तप्त एव त्रस्त होने का वर्णन दूसरी वार आया है।

करुणावान हाथी



हाथी ने खुजलाने के लिए ज्यो ही पैर ऊपर उठाया नीचे एक खरगोश आ दुबका और पैर ऊपर उठा ही रह गया। एक खरगोश की नन्ही-सी जान बचाने के लिए उसने अपनी जान देदी।

प्रथम पाठ विस्तार युक्त है और उसमे काव्य की शैली परिलक्षित होतो है। दूसरा पाठ सक्षिप्त है और आलकारिक वर्णन से रहित सादा है।

मूल में ही स्पष्ट कर दिया गया है—'एक्को ताव एस गमो' अर्थात् यह एक गम है। किसी-किसो आचार्य के अनुसार इस प्रकार का पाठ है।

प्रारभ मे सूत्र लिपिवद्ध नही थे। मुनिजन उन्हे कठस्थ रखते थे और मौखिक ही अपने शिष्यो को सिखाते थे। इस प्रकार गुरु-शिष्य परम्परा लम्वे समय तक चलती रही। बाद मे दुर्भिक्षो के कारण तथा काल के प्रभाव से स्मृति की क्षति होने से पाठो का विस्मरण हो गया। तब अनेक वार युगप्रधान आचार्य मिले और उन्होंने आगम पाठो को पुन व्यवस्थित करने का प्रयास किया। फिर भी कही-कही वे एकमत न हो पाए। इसी कारण शास्त्रो मे वाचनाभेद उपलब्ध होता है। कही माथुरी वाचना और कही नागार्जुनीय वाचना आदि का भेद दृष्टिगोचर होता है। यहाँ भी इसी वाचना-भेद का उल्लेख है। फिर भी दोनो पाठो मे जो भेद है वह शाब्दिक ही है। मूल आशय मे कोई अन्तर नही है।

आगम तीर्थंकर द्वारा उपदिष्ट और गणधरो द्वारा रचित है। उनमे जानबूझ कर अपनी किसी मान्यता को पुष्ट करने के लिए हेर-फेर करना, किसी पाठ को निकाल देना अथवा कही प्रक्षिप्त कर देना उचित नही है। आगमो का प्रामाण्य उनके अक्षुण्ण रहने मे ही है। जब जिसने जो चाहा घटा दिया या बढा दिया तो इससे आगम विश्वसनीय नही रह सकते। अपने विचार के अनुसार आगमपाठ वना लेने से तो वस्तुत अपना ही विचार प्रमाणभूत रहा, आगम प्रमाणभूत नही रहा। अतएव आगम मे किसी प्रकार का परिवर्त्तन करना घोर पातक है, बडी से बडी अनैतिकता है। ऐसा करने से

लोगो की श्रद्धा किस प्रकार स्थिर रह सकती है ? आगम तो ज्यो के त्यो रहने चाहिए ।

हाँ, तो मेरुप्रभ ने जो मडल वनाया था, उसमे दूसरे सभी प्रकार के जानवर घुस गए थे । मेरुप्रभ गया तो वह भी थोड़ी-सी जगह पाकर खडा हो गया । ठसाठस जानवर भरे थे । जन्म से विरोधी सिह, हिरन आदि जैसे जीव भी उस घोर सकट के समय एक स्थान पर जमा हो गए थे । वे जन्मजात विरोध को भूलकर अपनी प्राण-रक्षा के लिए ही चिन्तित थे । सकट का समय आने पर वैर विस्मृत हो जाता है । ग्रीष्म का वर्णन करते हुए महाकवि कालिदास ने कहा है—

फणी मयूरस्य तले निषीदति ।

मयूर और सर्प का विरोध प्रसिद्ध है । मयूर सर्प को मार कर खा जाता है, ऐसी प्रसिद्धि है । मगर गीष्म के ताप से व्याकुल होकर सर्प भी मयूर के शरीर की छाया मे आ जाता है ।

यहा भी ऐसी ही स्थिति है । जगली जानवर उस मडल मे ऐसे भरे थे जैसे किसी विल मे मकोडे भरे होते हैं । इसे शास्त्रकार ने 'विलधर्म' से रहना कहा है ।

शशक वेचारा छोटा और सुकोमल प्राणी होता है । एक शशक को ठहरने को स्थान नही मिल रहा था । धक्के खा रहा था । व्याकुल हो रहा था । मेरुप्रभ ने खाज खुजाने के लिए पैर ऊपर उठाया तो जगह खाली हुई और वह शशक उस जगह जा वैठा । वह हाथी की शरण मे जा पहुंचा । वडे की छाया भी श्रेयस्कर होती है—

सेवितव्यो महावृक्ष:, फलच्छायासमन्वित. ।
यदि दैवात्फलं नास्ति, छाया केन निवार्यते ।।

फल और छाया वाले विशाल वृक्ष का आश्रय लेना उचित है। कदाचित् समय अनुकूल न होने के कारण फलो की प्राप्ति न हो, तो भी छाया को कौन रोक सकता है ? वह तो मिलेगी ही।

शशक ने विशालकाय हाथी की शरण ग्रहण की। वह सुखी वन गया।

मेरुप्रभ ने शरीर खुजाकर ज्यो ही पैर नीचे रखना चाहा, देखा कि शशक उस स्थान पर आ जमा है। हाथी चाहता तो पैर रख सकता था और शशक को कुचल सकता था। परन्तु वह ऐसा करुणा-हीन नही था। उसने सोचा—मैं पैर रखता हूँ तो साथी कुचल जाएगा। प्राणरक्षा के लिए यह यहा आया है तो इसके प्राणो का अन्त करना उचित नही।

इस प्रकार विचार कर हाथी ने अढाई दिन-रात्रि पर्यन्त अपना पैर ऊपर ही उठाए रक्खा। इस कारण पैर मे सूजन आ गई होगी। और वह अकड गया होगा। उसे वडा कष्ट हुआ, फिर भी दयालु हाथी ने अपने सुख की अपेक्षा शशक के सुख को प्रधानता दी। आखिर दावानल बुझ गया। सव भूखे-प्यासे प्राणी मडल को छोडकर इधर-उधर चल दिए। जगह खाली हो गई।

मेरुप्रभ हाथी ने व्यवहारत. शशक की दया की, किन्तु निश्चय से तो षट्काय की ही दया की। इसी अभिप्राय से मूलपाठ मे प्राणी, भूत, जीव और सत्त्व की अनुकम्पा का कथन किया गया है।

अनुकम्पा की निर्मल भावना से हाथी ने ससार को परीत किया और मनुष्यायु का वन्ध किया। न मालूम कब से चली आरही तिर्यंच अवस्था से उसे छुटकारा मिल गया। अनुकम्पा उत्क्रान्ति का साधन है, यह इस कथानक से स्पष्ट है।

हाथी का शरीर अकड़ गया। वह भूख-प्यास से पीड़ित था।

फिर भी उसके मन मे आर्त ध्यान उत्पन्न हुआ हो, ऐसा नही जान पडता। अन्यथा वह ससार को परीत नही कर सकता था।

चलने का प्रयास करके भी हाथी चल नही सका। वह वहीं धड़ाम से गिर पड़ा, जैसे विजली गिरने से किसी पर्वत का शिखर टूट कर गिर पड़ता है।

वह हाथी प्रकृति का भद्र, प्रकृति से विनीत, अमत्सरभावी और करुणावान् था। वह देह त्याग कर महारानी धारिणी के उदर मे पुत्र-रूप से उत्पन्न हुआ। (४४)

मूलपाठ—तए णं तुमं मेहा! आणुपुव्वेण गब्भवासाओ निक्खित्ते समाणे उम्मुक्कबालभावे जोव्वणगमणुपत्ते मम अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए। तं जइ जाव तुमं मेहा! तिरिक्खजोणियभावमुवगएणं अप्पडिलद्धसम्मत्तरयणलंभेणं से पाए पाणाणुकंपाए जाव अंतरा चेव संधारिए, नो चेव णं णिक्खित्ते, किमंग पुण तुम मेहा! इयाणिं विपुलकुलसमुब्भवेणं निरुवहय-सरीरदंतलद्धपंचिंदिए णं एवं उट्ठाणबलवीरियपुरिसगार-परक्कमसंजुत्तेण मम अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अण-गारियं पव्वइए समाणे समणाणं निग्गंथाणं राओ पुव्व-रत्तावरत्तकालसमयंसि वायणाए जाव धम्माणुओगचिंताए य उच्चारस्स वा पासवणस्स वा अइगच्छमाणाण य निग्गच्छमाणाण य हत्थसंघट्टणाणिय पायसंघट्टणाणि य जाव रयरेणुगुंडणाणि य नो सम्मं सहसि, खमसि, तिति-क्खसि, अहियासेसि?

तए णं तस्स मेहस्स अणगारस्स, समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म सुभेहिं परि-

णामेहिं, पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं, लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं, तयावरणिज्जाण कम्माण खओवसमेण ईहावूहमग्गणगवेसणं करेमाणस्स सन्निपुव्वे जाइसरणे समुप्पन्ने। एयमट्ठं सम्मं अभिसमेइ।

तए णं से मेहे कुमारे समणेण भगवया महावीरेण सभारियपुव्वजाइसरणे दुगुणाणीयसंवेगे आणदयंसुपुन्नमुहे हरिसवसेण धाराहयकदबक पिव समुस्ससियरोमकूवे समण भगव महावीर वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी–

'अज्जप्पभिई णं भते! मम दो अच्छीणि मोत्तूण अवसेसे काए समणाणं निग्गंथाण निसट्ठे' त्ति कट्टु पुणरवि समण भगवं महावीर वदइ, नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी–

'इच्छामि ण भते! इयाणि सयमेव दोच्चपि पव्वाविय, सयमेव मुडाविय जाव सयमेव आयारगोयर जायामायावत्तियं धम्ममाइक्खह।'

तए ण समणे भगव महावीरे मेह कुमार सयमेव पव्वावेइ जाव जायामायावत्तियं धम्ममाइक्खइ–'एव देवाणुप्पिया! गंतव्वं, एव चिट्ठियव्व, एवं णिसीयव्व, एवं तुयट्टियव्व, एव भुंजियव्वं, एव भासियव्व, उट्ठाय उट्ठाय पाणाणं भूयाण जीवाण सत्ताण सजमेण सजमियव्व।'

तए ण से मेहे समणस्स भगवओ महावीरस्स अयमेयारूव धम्मियं उवएस सम्म पडिच्छइ, पडिच्छित्ता तह चिट्ठइ, जाव सजमेण संजमइ।

तए ण से मेहे अणगारे जाए इरियासमिए, अणगार-वन्नओ भाणियव्वो ।

तए णं से मेहे अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए एयारूवाणं थेराण सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता वहूहिं चउत्थछट्ठट्ठमदसमदुवाल-सेहिं मासद्धमासखमणेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

तए णं समणे भगव महावीरे रायगिहाओ नगराओ गुणसिलाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ । (४५)

मूलार्थ—तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम अनुक्रम से गर्भवास से वाहर आए—तुम्हारा जन्म हुआ । वाल्यावस्था से मुक्त हुए और युवावस्था को प्राप्त हुए । तव मेरे निकट मुंडित होकर गृहवास से (मुक्त हो) अनगार हुए । तो हे मेघ ! जव तुम तिर्यंचयोनिरूप पर्याय मे थे और जव तुम्हे सम्यक्त्व-रत्न का लाभ भी नही हुआ था, उस समय भी तुमने प्राणियो की अनुकम्पा से प्रेरित होकर यावत् अपना पैर अधर ही रक्खा था, नीचे नही टिकाया था । तो फिर हे मेघ ! इस जन्म मे तो तुम विशाल कुल मे जन्मे हो, तुम्हे उपघात से रहित शरीर प्राप्त हुआ है, प्राप्त पांचो इन्द्रियो का तुमने दमन किया है और उत्थान (विशिष्ट शारीरिक चेष्टा), वल (शारीरिक शक्ति), वीर्य (आत्मवल), पुरुषकार (विशेष प्रकार के अभियान) और पराक्रम (कार्य को सिद्ध करने वाले पुरुषार्थ) से युक्त हो और मेरे समीप मुण्डित होकर, गृहवास त्याग कर अगेही वने हो ! फिर भी पहली और पिछली रात्रि के समय श्रमण निर्ग्रन्थ वाचना के लिए यावत् धर्मानुयोग के चिन्तन के लिए तथा उच्चार-प्रस्रवण के लिए आते-जाते थे, उस समय तुम्हे उनके हाथ का स्पर्श हुआ, पैर का स्पर्श

हुआ, यावत् रजकणो से तुम्हारा शरीर भर गया, उसे तुम सम्यक् प्रकार से सहन न कर सके, बिना क्षुब्ध हुए सहन न कर सके, अदीनभाव से तितिक्षा न कर सके और शरीर को निश्चल रखकर सहन न कर सके।

तत्पश्चात् मेघ अनगार को श्रमण भगवान् महावीर के पास से यह वृत्तान्त सुन-समझकर शुभ परिणाम के कारण, प्रशस्त अध्यवसायो से लेश्याओ की विशुद्धि होने के कारण तथा जातिस्मरण को आच्छादित करने वाले ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से, ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा करते हुए सज्ञी जीवो को प्राप्त होने वाला जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त होगया। उससे मेघ मुनि ने अपना पूर्वोक्त वृत्तान्त सम्यक प्रकार से जान लिया।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा मेघकुमार को पूर्ववृत्तान्त स्मरण करा दिया गया, इस कारण उसे दुगुना सवेग प्राप्त हुआ। उसका मुख आनन्द के आसुओ से परिपूर्ण हो गया। हर्ष के कारण मेघधारा से आहत कदम्बपुष्प की भाति उसके रोमाञ्च विकसित होगए। उसने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन किया, नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—भते! आज से मैंने अपने दोनो नेत्र छोडकर शेष समस्त शरीर श्रमण निर्ग्रन्थो को समर्पित किया।

इस प्रकार कहकर मेघकुमार ने पुन. श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके इस भॉति कहा—भगवन्! मेरी इच्छा है कि अब आप स्वय ही मुझे दूसरी बार प्रव्रजित करे, स्वय ही मुण्डित करे यावत् स्वय ही ज्ञानादिक आचार और गोचर-गोचरी के लिए भ्रमण, यात्रा—पिण्डविशुद्धि आदि सयमयात्रा तथा मात्रा—प्रमाणयुक्त आहार ग्रहण करना आदि श्रमणधर्म का उपदेश दीजिए।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने मेघकुमार को स्वयमेव दीक्षित किया यावत् यात्रा-मात्रारूप धर्म का उपदेश किया कि— हे देवानुप्रिय ! इस प्रकार गमन करना चाहिए, अर्थात् युगपरिमित भूमि पर दृष्टि रखकर चलना चाहिए, इस प्रकार अर्थात् पृथ्वी का प्रमार्जन करके खडा होना चाहिए, इस प्रकार भूमि का प्रमार्जन करके बैठना चाहिए, इस प्रकार अर्थात् शरीर और भूमि का प्रमार्जन करके शयन करना चाहिए, इस प्रकार निर्दोष आहार करना चाहिए और इस प्रकार अर्थात् भाषासमितिपूर्वक बोलना चाहिए। सावधान रह-रह कर प्राणो, भूतो, जीवो और सत्त्वो की रक्षा रूप सयम मे प्रवृत्त होना चाहिए। तात्पर्य यह है कि मुनि को प्रत्येक क्रिया यतना के साथ करना चाहिए।

तत्पश्चात् मेघ मुनि ने श्रमण भगवान् महावीर के इस प्रकार के इस धार्मिक उपदेश को सम्यक् प्रकार से अगीकार किया। अंगीकार करके वे उसी प्रकार वर्त्ताव करने लगे, यावत् सयम मे उद्यम करने लगे।

तब मेघ ईर्यासमिति आदि से युक्त अनगार हुए। यहां (औपपातिक सूत्र के अनुसार) अनगार का समस्त वर्णन कहना चाहिए।

तत्पश्चात् उन मेघमुनि ने श्रमण भगवान् महावीर के निकट रह कर तथाप्रकार के स्थविर मुनियो से सामायिक से प्रारम्भ करके ग्यारह अग शास्त्रो का अध्ययन किया। अध्ययन करके बहुत-से उपवास, बेला, तेला, चौला, पचौला आदि से तथा अर्द्ध मास खमण एव मासखमण आदि तपस्या से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

तत्पश्चात श्रमण भगवान् महावीर राजगृह नगर से एव गुण-सिलक चैत्य से निकले। निकल कर बाहर जनपदो मे विहार करने लगे। (४५)

विशेष बोध—प्रत्येक प्राणी का गर्भवास उसके द्वारा उपार्जित कर्म के अनुसार होता है। आत्मा स्वय उन कर्मों का कर्त्ता और स्वय ही भोक्ता है। आत्मा से भिन्न कोई ऐसी शक्ति या व्यक्ति नही, जो जीव के गर्भवास या जन्म अथवा मरण की नियामिका हो। जीव के अपने शुभाशुभ कर्म ही यह फल उत्पन्न करते है।

अगर अन्तर मे वैराग्य जागृत हो जाय, भोग रोग के समान, इन्द्रियविषय विष के समान, बन्धु-बान्धव आदि बन्धन के समान और संसार कारागार के समान प्रतिभासित होने लगे तो प्रत्येक वय दीक्षा के योग्य है। जिसने अपनी आयु के नौ वर्ष पूरे कर लिए हो, उसमे भी विशिष्ट सस्कार होने पर दीक्षा की पात्रता आ जाती है। वस्तुत दीक्षा की योग्यता की कसौटी वय नही, विरक्ति है।

भगवान् ने मेघकुमार से कहा—तूने युवा होकर दीक्षा ग्रहण की, फिर ऐसा क्यो सोचा ? 'मम अतिए मु डे भवित्ता' यह वाक्याश अत्यन्त अर्थ पूर्ण है।

किसी सामान्य साधु का शिष्य कुछ लडखडा जाय तो विस्मय की बात नही, किन्तु सर्वज्ञ सर्वदर्शी त्रिलोकीनाथ का शिष्य अगर मार्ग से डिग जाय तो आश्चर्य की बात समझना चाहिए। और उस डिगने का भी कोई बहुत जबर्दस्त कारण नही। मुनियो के आवा-गमन से टक्कर हो गई और सस्तारक पर धूलिकण गिर गए। यह कोई वजनदार कारण नही कहा जा सकता।

समय पर सहनशीलता की वृत्ति न रहने पर जीवन मे क्या स्थिति उत्पन्न हो सकती है, विचारधारा किस प्रकार अवाछित दिशा मे मुड जाती है, यह शिक्षा यहा साकार-सोदाहरण प्रदर्शित की गई है। कायर और शूरवीर की परीक्षा ऐसे अवसर पर ही होती है।

वाधाओ पर विजय प्राप्त कर,
जो निज सत्य निभाता है।
नर से नारायण की पदवी,
वही जगत मे पाता है।

आपत्तिया जीवन के उत्थान मे अतीव सहायक होती है। उनके साथ किये जाने वाले सघर्ष से आत्मिक शक्तियो का विकास होता है।

जिस जीवन मे विपत्तिविजय से उत्पन्न होने वाला उल्लास नही, वह जीवन नीरस है। ऐसा जीवन कदाचित् ही सफलता के उच्चतर शिखर तक पहुच पाता है। भगवान् महावीर ने परमात्म-पद तक पहुचने के लिए वार-वार विपत्तियो से सघर्ष किया। उन्हे पराजित किया। और ज्यो-ज्यो उनकी विजयिनी शक्ति का विकास होता गया, वे सिद्धि के निकट और निकटतर पहुचते गए। किसी ने यथार्थ कहा है—

वसुधा का नेता कौन हुआ ?
भूखण्ड-विजेता कौन हुआ ?
अतुलित यश-क्रेता कौन हुआ ?
जिसने न कभी आराम किया।

मेघकुमार मे सहनशीलता की जो कमी थी, उसकी पूर्त्ति भगवान् ने कर दी।

मेघकुमार के आत्मारूप उपादान मे मलिनता नही थी। हाथी के भव मे उसमे शुद्धि का आविर्भाव हो चुका था। वही शुद्धि अव काम आ रही है। प्रभु के निमित्त को पाकर वह पुन शीघ्र सावधान हो गया। तिलो मे तेल हो तो दवाव पड़ने पर वाहर निकलता है। कूप मे पानी हो तो श्रम करके निकाला जा सकता है। इसी प्रकार अन्तरग मे जागृति हो तो अनुकूल निमित्त मिलने पर वह अभिव्यक्त हो जाती है।

उपादान के शुद्ध होने से ही प्रभु का उपदेश लागू पड गया। उपदेश सुनते ही मेघकुमार उसमे तन्मय हो गया, फलत उनको चट से जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त हो गया। जातिस्मरण होने से वह स्वय समझ गया कि मैं कौन था, क्या था और किस निमित्त से क्या हो गया हूँ।

ठोकरे खाने के बाद इन्सान बनता है। कष्ट सहन करके भी धैर्य न छोडने से मनुष्य का मूल्य बढता है।

अब मेघ कुमार पूरी तरह जागृत हो गया। पूर्ववृत्तान्त को सुना और फिर स्वय जाना तो उसके हृदय के कपाट खुल गए। अन्तरात्मा मे ऐसी ज्योति उद्भासित हुई जो पूर्व मे कभी अनुभव मे नही आई थी। पश्चात्ताप के द्वारा ही उसने अपनी स्खलना का प्रमार्जन कर लिया। वह 'दुगुणाणीयसवेगे' अर्थात् दुगुने सवेग से सम्पन्न हो गया।

सवेग का अर्थ है—सम्यक् प्रकार का वेग। मेघकुमार जिस सवेग से प्रेरित होकर दीक्षित हुआ था, बीच मे उसमे कमी आ गई थी। उसके परिणाम की धारा अधोमुखी हो गई थी। किन्तु प्रभु के संबोधन से एव जातिस्मरण ज्ञान की प्राप्ति से वह सवेग दुगुना हो गया। उसके हृदय मे वैराग्य हिलोरे मारने लगा। आत्मकल्याण के लिए जो वेग चाहिए—तीव्रता आनी चाहिए, उसमे दुगुनी वृद्धि हो गई।

सवेग सम्यग्दर्शन के पाच लक्षणो मे से एक लक्षण है। आत्मा मे ससार से विरक्ति होने पर मोक्षमार्ग पर चलने की त्वरा उत्पन्न हो जाती है, वही सवेग है।

इस समय मेघकुमार की स्थिति अद्भुत थी। वह हर्षविभोर हो उठा। अपने हर्ष को भीतर समा नही पा रहा है। अश्रुओ के रूप मे वह बाहर उमड आया। उसने सवेग एव हर्ष की अनिर्वचनीय

स्थिति मे कहा—प्रभो ! जीवदया के हेतु दोनों नेत्रो के सिवाय मेरा सारा शरीर अव मुनियो की सेवा के लिए समर्पित है। अपना जीवन मुनियो की सेवा के लिए निछावर कर दूंगा।

मुनि मेघकुमार इतना कह कर ही नही रह गए। स्खलना का जो शल्य उन्हे सता रहा था, उसका निर्मूलन करना आवश्यक था। अतएव वह वोले—प्रभो ! मेरा शुद्धीकरण कीजिए। प्रायश्चित्त के रूप मे फिर से नवीन दीक्षा दीजिए और साधुजीवन की शिक्षाएं देकर मुझ पर अनुग्रह कीजिए।

साधक से जव कोई छोटी या बड़ी विराधना हो जाती है तो उसे उसी प्रकार चैन नही पड़ती जैसे शरीर मे काटा चुभने पर क्षण भर के लिए भी शान्ति नही मिलती। वह अपनी विराधना को गुरु के समक्ष निष्कपट भाव से निवेदन करता है और उसकी शुद्धि करने के लिए गुरुद्वारा प्रदत्त दण्ड—प्रायश्चित्त को श्रद्धापूर्वक स्वीकार करता है। इसी मे अपने सयम की शुद्धि मानता है और आत्मा का हित समझता है। जव वह प्रायश्चित्त लेकर शुद्धि कर लेता है तभी उसको निराकुलता होती है। सच्चे साधक मुनि की यही स्थिति होती है। पर आज हम क्या देखते हैं ? आज यथोचित प्रायश्चित्त लेना अपमान समझा जाता है। विराधना का भय नही रह गया है। अव प्रायश्चित्त प्राय. लिया नही जाता, दिया जाता है और देने पर भी उसके अमल मे अनेक प्रकार के विसंवाद होते है। सच्चे साधक के लिए यह स्थिति हितकर नही। आत्मार्थी मुनि आज भी अपनी स्खलना को सहन नही करते और उसकी शुद्धि कर लेने पर ही सन्तोष का अनुभव करते है।

मेघ मुनि ने यात्रा और मात्रा का भी ज्ञान प्राप्त किया। तप, सयम, नियम, स्वाध्याय, ध्यान, आवश्यक क्रिया आदि योगो मे जो यतना-प्रवृत्ति है, वही यहां यात्रा समझना चाहिए।[1] मात्रा का अर्थ

---

१ देखो भगवती सूत्र श० १८ उ० १०

विरस अर्राटे के शब्द-चीत्कार से वह आकाशतल को फोडता हुआ-सा, पैरो के आघात से पृथ्वीतल को कम्पित करता हुआ-सा, सीत्कार करता हुआ, चहु ओर सर्वत्र बेलो के समूह को छेदता हुआ, त्रस्त, और बहुसख्यक सहस्रो वृक्षो को उखाड़ता हुआ, राज्य से भ्रष्ट हुए राजा के समान, वायु से डोलते हुए जहाज के समान और ववण्डर के समान इधर-उधर भागता हुआ और बार-बार लीडी त्यागता हुआ, बहुत-से हाथियो, हथिनियो आदि के साथ दिशाओ और विदिशाओ मे इधर-उधर भागदौड़ करने लगा।

हे मेघ! तुम वहा जीर्ण, जरा-से जर्जरित देह वाले, व्याकुल, भूखे, प्यासे, दुर्बल, थके-मादे, बहिरे तथा दिङ्मूढ होकर अपने यूथ (झुड) से बिछुड गए। वन के दावानल की ज्वालाओ से पराभूत हुए। गर्मी से, प्यास से, भूख से पीडित होकर भय को प्राप्त हुए, त्रस्त हुए। तुम्हारा आनन्द-रस शुष्क हो गया। इस विपत्ति से कैसे छुटकारा पाऊ, ऐसा विचार करके उद्विग्न हुए। तुम्हे पूरी तरह भय उत्पन्न हुआ। अतएव इधर-उधर दौडने और खूब दौडने लगे।

इसी समय अल्प जलवाला और कीचड की अधिकतावाला एक बडा सरोवर तुम्हे दिखाई दिया। उसमे पानी पीने के लिए बिना घाट के तुम उतर गए।

हे मेघ! वहाँ तुम किनारे से तो दूर चले गए, परन्तु पानी तक न पहुच पाए और बीच ही मे कीचड़ मे फस गए।

हे मेघ! 'मैं पानी पीऊँ' ऐसा विचार करके वहाँ तुमने सूड फैलाई, मगर तुम्हारी सूड भी पानी न पा सकी। तब हे मेघ! तुमने "पुन शरीर को बाहर निकालू" ऐसा विचार कर जोर मारा तो कीचड मे और गाढे फस गए।

तत्पश्चात् हे मेघ! एकदा कदाचित् एक नौजवान श्रेष्ठ हाथी को तुमने सूड़, पैरो और दात रूपी मूसलो से प्रहार करके मारा था

और अपने झुंड मे से, बहुत समय पूर्व, निकाल दिया था। वह हाथी पानी पीने के लिए उसी महाद्रह मे उतरा।

तत्पश्चात् उस नौजवान हाथी ने तुम्हे देखा। देखते ही उसे पूर्व वैर का स्मरण हो आया। स्मरण होते ही उसमे क्रोध के चिह्न प्रकट हुए। उसका क्रोध बढ़ गया। उसने रौद्र रूप धारण किया और वह क्रोधाग्नि से जलगया। अतएव वह तुम्हारे पास आया। आकर उसने तीक्ष्ण दन्तमुसलो से तीन बार तुम्हारी पीठ बीध दी और पूर्व वैर का बदला लिया। बदला लेकर हृष्ट-तुष्ट होकर उसने पानी पीया। पानी पीकर जिस दिशा से प्रकट हुआ था—आया था, उसी दिशा मे वापिस चला गया।

तत्पश्चात् हे मेघ! तुम्हारे शरीर मे वेदना उत्पन्न हुई। वह वेदना ऐसी थी कि तुम्हे तनिक भी चैन न थी। वह सम्पूर्ण शरीर मे व्याप्त थी और तीव्र थी, अथवा त्रितुला[1] थी (मन, वचन, काय की तुलना करने वाली थी अर्थात् उस वेदना मे तीनो योग तन्मय हो रहे थे)। वह वेदना कठोर यावत् दुस्सह थी। उस वेदना के कारण तुम्हारा शरीर पित्तज्वर से व्याप्त होगया और शरीर मे दाह उत्पन्न होगया। उस समय तुम इस हालत मे रहे।

तत्पश्चात् हे मेघ! तुम उस उज्ज्वल—बेचैन बना देनेवाली यावत् दुस्सह वेदना को सात दिन-रात पर्यन्त भोगकर, एक सौ बीस वर्ष की आयु भोगकर, आर्त्तध्यान के वशीभूत एव दुःख से पीड़ित होकर कालमास मे (मृत्यु के अवसर पर) काल करके इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र मे, दक्षिणार्ध भरत मे, गगा नामक महानदी के दक्षिणी किनारे पर विंध्याचल के समीप एक मदोन्मत्त श्रेष्ठ गन्धहस्ती से, एक श्रेष्ठ हथिनी की कूख मे, हाथी के बच्चे के रूप मे उत्पन्न हुए।

तत्पश्चात् उस हथिनी ने नौ मास पूर्ण होने पर वसन्त मास मे तुम्हे जन्म दिया।

१—यह अर्थ 'तिउला' पाठान्तर के अनुसार है।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम गर्भवास से मुक्त होकर गजकलभक (छोटे हाथी) भी होगए। लाल कमल के समान लाल और सुकुमार हुए। जपाकुसुम, रक्तवर्ण पारिजात नामक वृक्ष, लाख के रस, सरस कु कुम और सन्ध्याकालीन बादलो के रग के समान रक्तवर्ण हुए। अपने यूथपति के प्रिय हुए। गणिकाओ के समान युवती हथिनियो के उदरप्रदेश मे अपनी सू ड डालते हुए काम क्रीडा मे तत्पर रहने लगे।

इस प्रकार सैकडो हाथियो से परिवृत होकर तुम पर्वत के रमणीय काननो मे सुखपूर्वक विचरने लगे (४१)

विशेष बोध—कितना मगलमय वह समय था जब साक्षात् प्रभु महावीर इस धराधाम को अपने पावन चरणो से पवित्र कर रहे थे, और मनुष्य जाति को आत्मजागृति का सदेश दे रहे थे। न जाने कितने पतितो का उन्होने उद्धार किया ? कितने ही धर्मविमुख जनो को धर्माभिमुख बनाया !

सयमपथ से स्खलित मुनि मेघकुमार को भी प्रभु का सबल सहारा मिल गया। उन्होने मेघकुमार के पूर्वभवो का उल्लेख करते हुए कहा—

मेघ ! एक समय वह था जब तू हाथी के भव मे घोर दुःख का भाजन बन गया था। दावानल से सन्तप्त होकर भागा-भागा फिर रहा था। उस समय कौन तेरा सरक्षक था ? भूख-प्यास और घबराहट से आकुल-व्याकुल हो रहा था। मुश्किल से पानी दृष्टि-गोचर हुआ और उसे पीने के लिए तू तालाब मे उतरा। मगर पानी पीने के पहले ही पक मे फस गया ! हाथी का भारी भरकम शरीर ठहरा ! उद्धार होना कठिन होगया। उस समय तेरा विशाल यूथ – तेरे साथी, कोई काम न आया। सब तरफ से निराशा ही पल्ले पड़ी।

तभी तेरे कर्मोदय से तेरा वैरी दूसरा युवा हाथी वहा आ पहु चा। उसने दन्तप्रहार करके वैर का वदला लिया और तेरा प्राणान्त हो गया। कोई खोज-खवर लेने वाला तक न मिला। तडफ-तडफ कर मरते समय किसी ने सहानुभूति भी प्रदर्शित नही की।

प्रभु द्वारा प्रदर्शित हाथी-भव की झाकी और विशेषत दावानल का वर्णन हृदयस्पर्शी है। जहाँ निरकुश दावानल सुलग उठे वहा वृक्षो, पशुओ और पक्षियो का तो लगभग सर्वनाश ही समझिए। इतिहास प्रसिद्ध अरवली के पहाडो मे इस लेखक की जन्मभूमि है। उन पहाड़ो मे ग्रीष्म ऋतु का तूफान लेखक की आखो देखी घटना है। जब भयकर ज्वालाएँ द्रुतगति से चारो ओर फैलती है तो प्रलय का साक्षात् दृश्य उपस्थित हो जाता है। असख्य प्राणी उन ज्वालाओ के भक्ष्य वन जाते है।

दीक्षा लेना और देना क्या है? ससार के दु.खो से उद्विग्न होकर जव कोई भव्य पुरुष किसी अनुभवी साधक की शरण मे पहु चता है और मुक्तिमार्ग की साधना मे उससे पथप्रदर्शन की अपेक्षा करता है, तव वह साधक करुणा प्रेरित होकर उसे अपनी शरण मे लेता है। भव्य पुरुष कहता है—

घर मे आग लगने पर जैसे गृहस्वामी मूल्यवान् वस्तु को वाहर निकाल लेता है और असार वस्तुओ को छोड़ देता है, उसी प्रकार जरा-मरण की भीषण आग मे जलते हुए इस लोक मे से मैं अपनी आत्मा को तारना चाहता हूँ।[1] इसके लिए आपका सहयोग चाहिए।

१—जहा गेहे पलित्तम्मि, तस्स गेहस्स जो पभू।
सार-भडाणि णीणेइ, असार अवउज्झइ॥
एव लोए पलित्तम्मि, जराए मरणेण य।
अप्पाण तारइस्सामि, तुम्भेहि अणुमन्निओ॥ —उत्तरा० अध्य १९

यहाँ मेघकुमार ने भी भगवान् महावीर के प्रति यही निवेदन किया था और भगवान् ने उसे सहयोग देना स्वीकार किया था। प्रस्तुत से भगवान् का सहयोग मेघ मुनि के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। अगर भगवान् ने उसे सहायता न दी होती तो वह सयम से च्युत हुए बिना न रहते। ऐसे अवसरो पर ज्ञानी गुरु ही रक्षक होते हैं।

मेघ मुनि का यह चरित्र मानव-मन की चचलता का ज्वलन्त निदर्शन है। दीक्षा के समय उनके जो भाव थे और दीक्षा की प्रथम रात्रि मे जो भावना उत्पन्न हुई, उन दोनो मे प्रकाश और अधकार जितना अन्तर है। दीक्षा के समय भगवान् के समक्ष उन्होने कहा था—भगवन्! जरा और मृत्यु के दावानल से ससार जल रहा है, खूब जल रहा है। मैं अपने आपको (आत्मा को) इस आग से बचाना चाहता हूँ। मेरे लिए यही कल्याणकारी है।

किन्तु जरा-सा सकट आते ही मन ने अपनी गति बदल ली। वह पुन उसी आग मे झुलसने के लिए मेघ मुनि को प्रेरित करने लगा। किन्तु भगवान् की धर्मशिक्षा से मन फिर समीचीन पथ पर आ गया। मन मे उठी तरग शान्त हो गई। यह गुरुकृपा का पुनीत प्रसाद समझना चाहिए। (४१)

मूलपाठ—तए ण तुमं मेहा! उम्मुक्कबालभावे जोव्वणगमणुपत्ते जूहवइणा कालधम्मुणा सजुत्तेण त जूह सयमेव पडिवज्जसि।

तए ण तुम मेहा! वणयरेहिं निव्वत्तियनामधेज्जे जाव चउदते मेरुप्पभे हत्थिरयणे होत्था। तत्थ णं तुमं मेहा! सत्तगपइट्ठिए तहेव जाव पडिरूवे।

तत्थ ण तुमं मेहा! सत्तसइयस्स जूहस्स आहेवच्च जाव अभिरमेत्था।

तए ण तुम अन्नया कयाइ गिम्हकालसमयसि जेट्ठा-

मूले वणदवजालापलित्तेसु वणतेसु सुधूमाउलासु दिसासु जाव मंडलवाए व्व परिब्भमन्ते भीए तत्थे जाव संजायभए बहूहिं हत्थीहि य जाव कलभियाहि य सद्धि संपरिवुडे सव्वओ समंता दिसोदिसिं विप्पलाइत्था ।

तए णं तुमं मेहा ! तं वणदवं पासित्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—

'कहिं णं मन्ने मए अयमेयारूवे अग्गिसंभवे अणुभूय-पुव्वे ?'

तए ण तव मेहा ! लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं, अज्झव-साणेणं सोहणेणं, सुभेणं परिणामेण, तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहापोहमग्गणगवेसणं करेमाणस्स सन्निपुव्वे जाइसरणे समुप्पज्जित्था ।

तए णं तुमं मेहा ! एयमट्ठं सम्मं अभिसमेसि—'एवं खलु मया अईए दोच्चे भवग्गहणे इहेव जंबुद्दीवे भारहे वासे वेयड्ढगिरिपायमूले जाव सुहसुहेणं विहरइ । तत्थ णं महया अयमेयारूवे अग्गिसंभवे समणुभूए ।'

तए णं तुमं मेहा ! तस्सेव दिवसस्स पच्चावरण्हकाल-समयंसि नियएणं जूहेणं सद्धि समन्नागए यावि होत्था । तए णं तुमं अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—'तं सेयं खलु ममं इयाणिं गंगाए महानदीए दाहिणिल्लंसि कूलंसि विंझगिरिपायमूले दवग्गिसंजायकारणट्ठा सएणं जूहेण महालयं मंडलं घाइत्तए' त्ति कट्टु एवं सपेहेसि, संपेहित्ता सुहं सुहेणं विहरसि ।

तए णं तुमं मेहा ! अन्नया कयाइ पढमपाउससि महा-वुट्ठिकायंसि सन्निवइयंसि गंगाए महाणदीए अदूरसामंते

बहूहिं हत्थीहिं जाव कलभियाहि य सत्तहि हत्थिसएहिं सपरिवुडे एग महं जोयणपरिमण्डलं महइमहालय मडलं घाएसि । ज तत्थ तरण वा पत्त वा कट्ठं वा कटए वा लया वा वल्ली वा खाणु वा रुक्खे वा खुवे वा, त सव्व तिक्खुत्तो आहुणिय आहुणिय पाएरण उट्ठवेसि, हत्थेण गेण्हसि, एगंते पाडेसि ।

तए ण तुमं मेहा ! तस्सेव मंडलस्स अदूरसामते गगाए महानईए दाहिणिल्ले कूले विंझगिरिपायमूले गिरिसु य जाव विहरसि ।

तए ण तुम मेहा ! अन्नया कयाइं मज्झिमए वरिसारत्तसि महावुट्ठिकायसि सनिवइयंसि जेणेव से मडले तेणेव उवागच्छसि, उवागच्छित्ता तच्चंपि मंडलघाय करेसि, ज तत्थ तणं वा जाव सुहसुहेण विहरसि । (४२)

मूलार्थ—तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम बाल्यावस्था को पार कर यौवन को प्राप्त हुए । फिर अपने यूथपति के कालधर्म को प्राप्त होने पर तुम स्वय ही उस यूथ को वहन करने लगे, अर्थात् यूथपति हो गए ।

तत्पश्चात् हे मेघ ! वनचरो ने तुम्हारा नाम मेरुप्रभ रक्खा । तुम चार दातो वाले हस्तिरत्न हुए । हे मेघ ! तुम सातो अगो से भूमि को स्पर्श करने वाले आदि पूर्वोक्त विशेषणो से युक्त यावत् सुन्दर रूप वाले हुए । हे मेघ ! तुम वहा सात सौ हाथियो के यूथ का अधिपतित्व करते हुए अभिरमण करने लगे ।

तत्पश्चात् अन्यदा कदाचित् ग्रीष्मकाल के अवसर पर ज्येष्ठ मास मे वन के दावानल की ज्वालाओ से वनप्रदेश जलने लगे । दिशाए धूम से भर गई । उस समय तुम ववण्डर की तरह इधर-उधर भाग-दौड़ करने लगे । भयभीत हुए, व्याकुल हुए और वहुत

डर गए । तव बहुत से हाथियो यावत् तरुण हथिनियो के साथ, उनसे परिवृत होकर, चारो ओर एक दिशा से दूसरी दिशा मे भागे।

हे मेघ ! उस समय उस वन के दावानल को देखकर तुम्हे इस प्रकार का अध्यवसाय यावत् उत्पन्न हुआ—लगता है जैसे इस प्रकार की अग्नि की उत्पत्ति मैंने कभी पहले अनुभव की है ! तत्पश्चात् हे मेघ ! विशुद्ध होती हुई लेश्याओ, शुभ अध्यवसाय, शुभ परिणाम और जातिस्मरण को आवृत करने वाले कर्मों का क्षयोपशम होने से, ईहा, अपोह, मार्गण और गवेषणा करते हुए तुम्हे सज्ञी जीवो को प्राप्त होने वाला जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ ।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुमने यह अर्थ सम्यक् प्रकार से जाना कि—निश्चय ही मैं व्यतीत हुए दूसरे भव मे इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे, भरत क्षेत्र मे, वैताढ्यगिरि के पादमूल मे सुखपूर्वक विचरता था। वहा इस प्रकार का महान् अग्नि का सभव मैंने अनुभव किया है।

तदनन्तर हे मेघ ! तुम उस भव मे उस दिन अन्तिम प्रहर तक अपने यूथ के साथ विचरण करते थे। [हे मेघ ! उसके वाद काल करके दूसरे भव मे सात हाथ ऊचे यावत् जातिस्मरण से युक्त चार दांत वाले हाथी हुए ।]

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुमने कदाचित् एक वार प्रथम वर्षाकाल मे खूब वर्षा होने पर गगा महानदी के समीप वहुत से हाथियो यावत् हथिनियो से अर्थात् सात सौ हाथियो से परिवृत होकर एक योजन परिमित अत्यन्त विशाल गोल मडल वनाया। इस मडल मे जो भी घास, पत्ते, काष्ठ, कांटे, लता, वेले, ठूठ, वृक्ष या पौधे आदि थे, उन सव को तीन वार हिलाकर पैरो से उखाडा, सू ड से पकडा और एक ओर ले जाकर डाल दिया।

हे मेघ ! तत्पश्चात् तुम उसी मंडल के समीप गगा महानदी के

दक्षिण किनारे विन्ध्याचल के पादमूल में पर्वत आदि पूर्वोक्त स्थानो मे विचरण करने लगे ।

तत्पश्चात् हे मेघ ! किसी अन्य समय मध्य वर्षा ऋतु मे खूब वर्षा होने पर तुम उस स्थान पर आए जहा वह मडल था । वहा आकर दूसरी वार उस मडल को ठीक तरह साफ किया । इसी प्रकार अन्तिम वर्षा रात्रि मे घोर वृष्टि होने पर जहा मडल था, वहा आए । आकर तीसरी वार उस मडल को साफ किया । वहा जो भी तृण आदि थे उन सव को उखाड कर सुखपूर्वक विचरण करने लगे । (४२)

विशेष बोध—सर्वज्ञ सर्वदर्शी प्रभु महावीर की कितनी महान् करुणा है कि वे मेघकुमार को इतने विस्तार के साथ समझा रहे है । बार-बार कितना सबोधन कर रहे हैं ! धन्य है महामुनि मेघ कुमार, जिन्हे समय पर तरण-तारण के रूप मे साक्षात् त्रिलोकीनाथ भगवान् का सान्निध्य और अनुग्रह प्राप्त हुआ ।

घर-डर गुरु-डर वश-डर, डर लज्जा डर राज ।
एते डर मन मे रखे, तो ही सुधरे काज ।

जिस मनुष्य के हृदय मे इन बातो का खयाल रहता है वह प्रथम तो कुमार्ग पर जाता नही, अयोग्य कृत्य करता नही, कदाचित् ऐसा हो जाय तो शीघ्र ही अपने को सभाल लेता है । मेघकुमार को इन बातो का खयाल था । इसी कारण वे उपदेश के पात्र भी थे ।

अमृत-वाणी से उपदेश करते हुए प्रभु ने मेघकुमार से कहा— हे मेघ ! तू पिछले दूसरे भव मे भी हाथी-पर्याय मे था और यूथपति बना था ।

सम्यग्ज्ञान, दर्शन और चारित्र के अभाव मे पशुपति और नृपति समान हैं ।

'मेरुप्रभ' नाम से यह परिलक्षित होता है कि वह बहुत बडा एव प्रभावशाली रहा होगा ।

सात सौ हाथियो का स्वामी होना भी पूर्वार्जित किसी पुण्य का प्रभाव समझना चाहिए।

मूलपाठ मे मेरुप्रभ के यूथ को सात सौ का कहा है—'सत्तसइयस्स जूहस्स आहेवच्च जाव अभिरमेत्था।' अर्थात् मेरुप्रभ सात सौ के यूथ का स्वामित्व करता हुआ रमण करता था।

यहा सभावना यह है कि उसके यूथ मे सात सौ हथिनिया होनी चाहिएँ। वन्दर आदि के समूहो को देखने पर ज्ञात होता है कि एक समूह मे एक वन्दर होता है, शेष सव बन्दरिया। बन्दर और हाथी आदि की आदत सुनी जाती है कि नवीन सन्तति उत्पन्न होते ही यूथपति उसे देखता है। यदि वह मादा नही, नर हुआ तो उसे मार डालता है।

सीचानक हाथी की कथा प्रसिद्ध है। गर्भवती हथिनी यूथपति के इसी भय के कारण यूथ से पृथक् पीछे-पीछे रहा करती थी। उसने यूथपति को पता नहीं चलने दिया। तापसो के मठ मे छिपकर माता ने सीचानक हाथी को जन्म दिया। वही सेचनक हाथी श्रेणिक राजा का प्रेमपात्र वना।

इस प्रकार हाथियो का यूथपति हाथी नही हो सकता। उनमे परस्पर सघर्ष हो जाना है। हथिनियो का यूथ हो तो ऐसी सभावना नही रहती। किन्तु प्रस्तुत शास्त्र मे ही कुछ वाक्य ऐसे है जिनसे यूथ मे हाथियो का होना भी प्रतीत होता है। तत्त्व केवलिगम्यम्।

हाँ, तो भगवान् मेघकुमार को सबोधन करते हुए कहते है—तू दूसरे भव मे भी हाथी हुआ। वहा भी आग का भय उत्पन्न हुआ।

अनादि काल से भवभ्रमण करनेवाले इस आत्मा ने असख्य वार आग का उपद्रव अनुभव किया है। कन्तु प्रसगानुसार सन्निकट होने के कारण यहा दो ही भव वतलाए गए है।

भय और विस्मय की स्थिति मे प्राणी के अन्तरतम मे अनेक तरगे उठती हैं। ऐसी ही स्थिति मे मेरुप्रभ हाथी को जाति स्मरण ज्ञान की प्राप्ति हुई। उसने सोचा—ऐसी आग पहले भी कही देखी है। आग धू-धू करके जल रही है। जो भी उसकी लपेट मे आता है, भस्म हो जाता है। जान पडता है जन्म-जन्म का भूखा यम सहस्रो जिह्वाए धारण करके सभी कुछ भख रहा है, अनगिनती प्राणियो को निगल रहा है और इसी कारण उसकी ये जिह्वाए रक्तवर्ण हो गई है।

उसे पहले की कुछ सुध आती है। उसी समय लेश्याओ की विशुद्धि से और अध्यवसायो की निर्मलता के कारण उसे जातिस्मरण उत्पन्न हो गया।

पूर्वजन्मो की याद आ जाना जातिस्मरण कहलाता है। यह पाच प्रकार के ज्ञानो मे से मतिज्ञान का विकसित रूप है। इसका अन्तरग कारण मतिज्ञानावरण कर्म का विशिष्ट क्षयोपशम एव लेश्या तथा अध्यवसाय की विशुद्धि है। बाह्य कारण अनेक प्रकार के हो सकते हैं। यहाँ पूर्वदृष्ट दावानल के समान दावानल को देखना उसका बाह्य कारण है।

सद्भाव की ओर उपयोग का आकृष्ट होना ईहा है। असद्भूत पदार्थ का पृथक्करण अपोह है। वस्तुस्वरूप के निश्चय के अभिमुख उपयोग की प्रवृत्तिविशेष मार्गणा और गवेषणा है।

इस प्रकार का मतिज्ञान हाथी को हुआ। इस ज्ञान से उसने अपने पूर्वभव की घटना को जान लिया।

आश्चर्य है कि आज यह विशिष्ट मतिज्ञान मानवो को भी प्राप्त नही है। आधुनिक वैज्ञानिक भी, जो चन्द्रमा पर पहुच जाने का दावा करते है, यह नही जानते कि वे स्वय कौन है? पूर्व मे क्या थे? भविष्य मे क्या होगे?

जातिस्मरण ज्ञान के फलस्वरूप वह पूर्वभव के भय का भी स्मरण करने लगा। भयभीत होकर उसने भविष्य के लिए रक्षा का उपाय किया।

वह उपाय था एक विशाल मडल बनाना। घास-फूस, पेड़-पौधे, लता-वल्लरी, जो भी एक नियत प्रदेश मे था, सबको उसने उखाड़ फेका। एक योजन गोलाकार भूमि उसने साफ कर डाली, जिससे वहां आग का उपद्रव न हो सके। (४२)

मूलपाठ—अह मेहा! तुमं गइन्दभावम्मि वट्टमाणो कमेण नलिणिवणविवहणगरे हेमन्ते कुन्दलोद्धउद्धततुसारपउरम्मि अइक्कन्ते, अहिणवे गिम्हसमयसि पत्ते, वियट्टमाणो वणेसु वणकरेणुविविहदिण्णकयपसवघाओ तुमं उउयकुसुमकयचामरकन्नपूरपरिमण्डियाभिरामो मयवसविगसंतकडतडकिलिन्नगधमदवारिणा सुरभिजणियगधो करेणुपरिवारिओ उउसमत्तजणियसोओ काले दिणयरकरपयडे परिसोसियतरुवरसिहरभीमतरदरिसणिज्जे भिंगाररवंतभेरवरवे णाणाविहपत्तकट्ठतणकयवरुद्धत-पइमारुया-इद्धनहयलदुमगणे वाउलियादारुणयरे तण्हावसदोसदूसियभमन्तविविहसावयसमाउले भीमदरिसणिज्जे वट्टते दारुणम्मि गिम्हे, मारुयवसपसरपसरियवियभिएणं अब्भहियभीमभेरवरवप्पगारेणं महुधारापडियसित्त - उद्धायमाणधगधगतसद्दुद्धुएणं दित्ततरसफुलिगेण धूममालाउलेणं सावयसयंतकरणेणं अब्भहियवणदवेणं जालालोवियनिरुद्धधूमधकारभीओ आयवालो य महंततुबइयपुन्नकण्णो आकुंचियथोरपीवरकरो भयवसभमन्तदित्तनयणो वेगेण महामेहोव्व पवणोल्लियमहल्लरूवो जेणेव कओ पुरा दवग्गि-

भयभीयहियएण अवगयतणप्पएस-रुक्खो रुक्खोद्देसो दव-ग्गिसंताणकारणट्ठाए जेणेव मडले तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

एक्को ताव एस गमो। (४३)

मूलार्थ—हे मेघ! तुम गजेन्द्र पर्याय मे वर्त्त रहे थे कि अनुक्रम से कमलिनियो के वन का विनाश करने वाला, कुन्द और लोध्र के पुष्पो की समृद्धि से सम्पन्न तथा अत्यन्त हिमवाला हेमन्त ऋतु व्यतीत हो गया। अभिनव ग्रीष्मकाल आ पहुचा। उस समय तुम वनो मे विचरण कर रहे थे। वहा क्रीडा करते समय वन की हथिनिया तुम्हारे ऊपर विविध प्रकार के कमलो एव पुष्पो का प्रहार करती थी। तुम उस ऋतु मे उत्पन्न पुष्पो के बने चामर जैसे कर्ण के आभूषणो से मण्डित और मनोहर थे। मद के कारण विकसित गण्डस्थलो को आर्द्र करने वाले तथा झरते हुए सुगंधित मद-जल से तुम सुगध-मय बन गये थे। हथिनियो से घिरे रहते थे। सब तरह से ऋतु-सबधी शोभा उत्पन्न हुई थी। उस ग्रीष्म काल मे सूर्य की प्रखर किरणे गिर रही थी। उस गीष्म ऋतु ने वृक्षो के शिखरो को अत्यन्त शुष्क बना दिया था। वह बडा ही भयकर प्रतीत होता था। शब्द करने वाले भृगार नामक पक्षी भयानक शब्द करते थे। पत्र, काष्ठ तृण और कचरे को उडाने वाले प्रतिकूल पवन से आकाशतल और वृक्षो का समूह व्याप्त हो गया था। वह बवण्डरो के कारण भयावह दीख पडता था। प्यास के कारण उत्पन्न वेदनादि दोपो से दूषित हुए और इसी कारण इधर-उधर भटकते हुए श्वापदो (शिकारी जगली पशुओ) से युक्त था। देखने मे भयानक ग्रीष्म ऋतु,उत्पन्न हुए दावानल के कारण और अधिक दारुण हो गया।

वह दावानल वायु के कारण प्राप्त हुए प्रचार से फैल गया और विकसित हुआ था। उसके शब्द का प्रकार अत्यधिक भयकर था। वृक्षो से गिरने वाले मधु की धाराओ से सिंचित होने के कारण वह

अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त हुआ था। धधक रहा था और शब्द के कारण उद्धत था। वह अत्यन्त देदीप्यमान, चिनगारियो से युक्त और धूम की कतार से व्याप्त था। सैकडो श्वापदो के प्राणो का अन्त करने वाला था। इस प्रकार तीव्रता को प्राप्त दावानल के कारण वह ग्रीष्म ऋतु अत्यन्त भयकर दिखाई देता था।

हे मेघ! तुम उस दावानल की ज्वालाओ से आच्छादित हो गए—रुक गए। इच्छानुसार जाने मे असमर्थ हो गए। धूम के कारण उत्पन्न अधकार से भयभीत हो गए। अग्नि के ताप को देखने से तुम्हारे दोनो कान अरघट्ट के तुम्ब के समान स्तब्ध रह गए। तुम्हारी मोटी और बडी सूड सिकुड़ गई। भय के कारण नेत्र इधर-उधर झांकने लगे। वेग के कारण तुम्हारा स्वरूप विस्तृत दिखाई देने लगा। पहले दावानल के भय से भीतहृदय होकर दावानल से अपनी रक्षा करने के लिए, जिस दिशा मे तृण के प्रदेश (मूल आदि) और वृक्ष हटाकर सफाचट प्रदेश बनाया था और जिधर वह मण्डल बनाया था, उधर ही जाने का तुमने विचार किया! वही जाने का निश्चय किया।

यह एक गम है अर्थात् किसी-किसी आचार्य के मतानुसार इस प्रकार का पाठ है। (४३)

विशेष बोध—प्रस्तुत शास्त्र मे स्थान-स्थान पर काव्यमय शैली दृष्टिगोचर होती है। यह शास्त्र व्यास-शैली मे सुनिर्मित है। इस सूत्र मे प्राकृतिक वर्णन वस्तुत. अत्यन्त सजीव और हृदयस्पर्शी है।

शीत के प्रकोप से कमलिनी के पत्ते नष्ट हो गए। वसन्त के प्रारम्भ मे पतझड होता है। किन्तु यह पतझड विषाद या नैराग्य का कारण नही, क्योकि उसके पश्चात् नूतन किशलय और पत्र आते हैं। विषाद तो तब होता है जब दाह पड़ने से पत्ते नष्ट हो जाते हैं। कवि कहता है—

दाह नही ऋतुराज है, सुन तरुवर, यह बात।
इनके विछुडे आएँगे, कोमल-कोमल पात ॥

पुरातन के उजडे बिना नूतन की सृष्टि नही होती। दातारो मे जागृति उत्पन्न करने के लिए यह कहा गया है। जैसे वृक्ष पुराने पत्तो का त्याग करते हैं तो उनमे नवीन-नवान सुकोमल पत्ते आ जाते हैं, उसी प्रकार दातार जब दान देता है तो उसे अनेकगुणित सम्पत्ति प्राप्त होती है।

दाह के पश्चात् ऋतुराज वसन्त का आगमन हुआ। वसन्त मन-मोहक मौसिम है। उसके आने पर प्रकृति जैसे नवीन शृगार से युक्त होकर श्रीसम्पन्न वन जाती है। पुराने पत्तो जाते है, मगर नवीन उनका स्थान ले लेते है।

घर मे से स्थविर जाते हैं तो खेद तो होता है, पर नवीन उनके स्थान की पूर्त्ति करते रहते है तो वह दु ख विस्मृत हो जाता है। वसन्त के समय भी यही जाना और आना होता है। आने वाले की मोहकता के कारण जाने वाले के वियोग का सन्ताप विस्मृत हो जाता है।

गजराज मेरुप्रभ सुहावने वसन्त मे मदोन्मत्त हुआ। काम-विकार मे ग्रस्त होकर सात सौ हथिनियो के साथ रमण करता हुआ मस्त हो गया। मगर—

चक्रवत्परिवर्त्तन्ते दु.खानि च सुखानि च।

ससार मे दु ख और सुख गाडी के पहिये के समान घूमते रहते हैं। सुख के वाद दु ख और दु ख के वाद सुख आता है। मेरुप्रभ ने अपने पर्याय के अनुकूल सुख का उपभोग किया तो दु ख भी आकर उपस्थित हो गया।

वसन्त गया। उसके साथ ही जीवन का वसन्त भी चला। परि-ताप, सन्ताप और उद्वेग बढाने वाला ग्रीष्म का मौसिम आधमका।

भोग-विलास के दिन लद गए। चारों ओर गर्मी ही गर्मी अनुभूत होने लगी। लू चलने लगी और प्राणो को झुलसाने लगी। वन के जन्तु प्यास से पीड़ित होकर दुखी होने लगे।

हथनिया वही थी, पर अब वे मेरुप्रभ को वैसा आनन्द नही दे रही थी। जैसे सभी के प्राण सूख रहे थे। मेरुप्रभ भी परेशान था। सुख का मार्ग सब ओर से अवरुद्ध हो गया था।

ऐसे प्रकृतिजनित सन्ताप के अवसर पर दावानल फिर सुलग उठा। जलती आग मे घी की आहुति पड़ गई। यहा दावानल का वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक है और पढते ही हृदय दहल उठता है।

ससार वन है! इस संसार मे भी कभी-कभी प्राकृतिक प्रकोप का दावानल सुलगता है। जैसे पूरे के पूरे वन मे दावानल नही फैलता, बीच मे नदी-नाला आदि आ जाने पर रुक जाता है, इसी प्रकार प्राकृतिक उपद्रव भी कही-कही होते हैं, एक साथ सर्वत्र नही। भरत क्षेत्र मे छह आरो का चक्र चलता है। जब छठा आरा प्रारभ होता है तो भरत क्षेत्र मे भी दावानल-सा उत्पन्न हो जाता है, मगर विदेह क्षेत्र मे यह उपद्रव नही होता।

मरुस्थली मे अवृष्टि के कारण प्राय दुष्काल पड़ता है, सर्वत्र ऐसा नही होता।

जैसे दावानल से वन्य पशु व्याकुल और सन्तप्त हुए, उसी प्रकार ससार मे जन्म-मरण की आग से जीव दुखी होते हैं।

दावानल के दु ख से त्राण पाने के लिए हाथी ने प्रयत्न किया— मडल बनाया तो फिर मनुष्य जैसा बुद्धिमान् प्राणी जन्म-मरण की आग से परित्राण पाने के लिए उचित उपाय क्यो न करे? सम्यग्ज्ञान और क्रिया की साधना मे ही उसे त्राण मिल सकता है।

आग की लपटो से त्रस्त होकर कोई इधर और कोई उधर भागा। यूथ बिखर गया। किसी ने किसी की चिन्ता न की। मौत

काम-भोगो की सामग्री सदा प्रस्तुत रहती है। किन्तु साधारण प्राणी की भांति मेघकुमार विलासमय वातावतरण मे कभी बेभान नही हुआ। उसके जन्मजात सस्कारो मे विरक्ति थी। अतएव वह भोग भोगता हुआ भी उनमें तन्मय नही बना। इसका प्रमाण खोजने की आवश्यकता नही। उठती हुई तरुणाई और भोग सामग्री होने पर भी भगवान् की देशना श्रवण करते ही उसका अन्त.स्थित वैराग्य जागृत हो गया और वह मुनिदीक्षा लेने को कटिबद्ध हो गया।

मेघकुमार ने सोचा—विषयवासना की कीचड़ में पड़ा रहना अपनी आत्मा को मलिन बनाना है। यह कीचड़ तो मनुष्य के मन-मन्दिर मे भरा पडा है। इसमे भोग-विलास रूपी पत्थर डाल कर तो उस कीचड को और अधिक उछालना होगा। मानव-भव आत्मा को ऊपर उठाने के लिए है, अधिक कलुषित करने अथवा अधोगति की ओर ले जाने के लिए नही।

इस प्रकार का विचार उत्पन्न होते ही वह जाग उठा। उसने सोचा-ससार मे सुख है कहाँ ? मुझे महात्माओ की सीख हृदयगम कर उसी के अनुसार चलना चाहिए। और वह पूरी तरह विरक्त हो गया।

माता-पिता ने उसे गृहस्थी मे फँसाए रखने को भरसक कोशिश की। उन्हे सफलता नही मिली। तब अन्ततोगत्वा उन्हे झुकना पडा। प्रभु की सेवा मे ले जाकर कहना पडा—भगवन् ! हम आपको शिष्य-भिक्षा अर्पित करते है।

करुणानिधि भगवान् ने शिष्यभिक्षा स्वीकार की। वैरागी मेघ कुमार ने ईशान कोण मे जाकर वस्त्राभूषण उतारे। माता ने उन्हें उठा लिया और सुन्दर धवल वस्त्र मे लपेट कर रख लिया।

माता का ममतामय हृदय फिर उमड़ आया। उसके नेत्रों से आँसुओ के रूप मे जल की वर्षा होने लगी। कितना भावपूर्ण दृश्य रहा होगा वह !

हृदय को थाम कर माता कहती है—लाल ! संयम मे पुरुषार्थ करना। प्रमाद न करना। मेरी भी भावना है कि समय आने पर मै भी सयम ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त कर सकूँ।

इसके पश्चात् माता-पिता भगवान् को भावपूर्वक वन्दन-नमस्कार करके चले जाते है। उनके लौट जाने पर मेघकुमार पचमुष्टिक लोच करता है और फिर भगवान् के समक्ष उपस्थित होता है।

प्रश्न किया जा सकता है कि मेघकुमार के केश तो पहले ही नापित द्वारा काटे जा चुके थे। सिर पर केश नही रहे थे तो फिर लु चन किसका किया ?

उत्तर यह है कि राजा श्रेणिक ने नाई को जब केश काटने का आदेश दिया तब ये शब्द कहे थे—'चउरगुलवज्जे णिक्खमणपाउग्गे अग्गकेसे कप्पेहि। 'अर्थात् चार अगुल छोड़ कर दीक्षा के योग्य केश काट दो।

इससे स्पष्ट है कि लु चन-करने के लिए कुछ केश छोड़ दिये गए थे। उन्ही का इस समय मेघ कुमार ने लु चन किया। आज भी इस प्रकार की परम्परा प्रचलित है।

मेघकुमार केशलु चन के अनन्तर प्रभु से निवेदन करता है—नाथ ! यह ससार जन्म-जरा-मरण की भीषण ज्वालाओ से प्रज्वलित हो रहा है, घोर सताप का अनुभव कर रहा है। मैं अपनी आत्मा को इस संताप से बचाना चाहता हूँ। जरा-मरण रूपी आग से बचाव का उपाय सयम है। प्रभो ! आप स्वय मुझे दीक्षा दीजिए। ज्ञानाभ्यास कराइए। आचार-गोचर समझाने का अनुग्रह कीजिए।

प्रभु ने मेघकुमार की अभ्यर्थना अगीकार की। स्वय उसे दीक्षित किया। और स्वयं ही सूत्रार्थ का ज्ञान दिया और स्वय ही साधु के आचार की शिक्षा दी।

भगवान् का और उनके अनुयायी साधु समाज का यह निश्चय है कि दीक्षा उसी को प्रदान की जानी चाहिए जो स्वय भावपूर्वक उसे ग्रहण करना चाहे। बलात् सयम नही दिया जा सकता और न पलवाया जा सकता है।

कोई-कोई मुनि आजकल दीक्षा देना अच्छा नही समझते। वे दीक्षा का विरोध भी करते हैं। किंतु ऐसा करना जिनशासन को हानि पहुचाना है। अयोग्य दीक्षा का समर्थन तो कोई नही कर सकता, किन्तु जो मनुष्य आन्तरिक वैराग्य से प्रेरित होकर, सयम के स्वरूप को समझकर अपनी आत्मा का कल्याण करना चाहता है, उसकी दीक्षा का समर्थन अवश्य करना चाहिए।

मूलपाठ—ज दिवस च ण मेहे कुमारे मुडे भवित्ता आगाराओ-अणगारियं पव्वइए तस्स णं दिवसस्स पच्चावरण्हकालसमयसि समणाण निग्गथाण अहाराइणियाए सेज्जासथारए जाए यावि होत्था।

तए ण समणाण निग्गथाण पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि वायणाए पुच्छणाए धम्माणुजोगचिंताए य उच्चारस्स य पासवणस्स य अइगच्छमाणाण य निग्गच्छमाणाण य अप्पेगइया मेह कुमार हत्थेहिं सघट्टन्ति, एव पाएहिं, सीसे, पोट्टे, कायसि, अप्पेगइया ओलंडेन्ति, अप्पेगइया पोलडेन्ति, अप्पेगइया पायरयरेणु गुंडियं करेन्ति। एवं महालिय च ण रयणि मेहेकुमारे णो संचाएइ खणमवि अच्छि निमीलित्तए।

तए ण तस्स मेहस्स कुमारस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव-समुप्पज्जित्था—"एव खलु अहं सेणियस्स रण्णो पुत्ते, धारिणीए देवीए अत्तए मेहे जाव सवणयाए। तं जया ण अहं अगारमज्झे वसामि तया ण मम समणा निग्गथा

आढायंति, परिजाणंति, सक्कारेंति, सम्माणेति, अट्ठाइं हेऊइं पसिणाइं कारणाइं वागरणाइं आइक्खेति, इट्ठाहिं कंताहिं वग्गूहिं आलवेन्ति, संलवेन्ति, जप्पभिइयं च ण अह मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए तप्पभिइं च णं मम समणा णो आढायन्ति जाव नो संलवन्ति। अदुत्तरं च ण समणा निग्गंथा राओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि वायणाए पुच्छणाए जाव महालिय च ण रत्ति नो संचाएमि अच्छिं निमीलित्तए। तं सेयं खलु मज्झ कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए जाव तेयसा जलंते समणं भगव महावीरं आपुच्छित्ता पुणरवि अगारमज्झे वसित्तए"त्ति कट्टु एव संपेहेइ, संपेहित्ता अट्टदुहट्टवसट्टमाणसगए णिरयपडिरूवियं च णं तं रयणिं खवेइ। खवित्ता कल्ल पाउप्पभायाए सुविमलाए रयणीए जाव तेयसा जलते जेणेव समणे भगव महावीरे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिणं करेइ। करित्ता वंदइ नमसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जाव पज्जुवासइ। (३६)

तए णं 'मेहा' इ समणे भगव महावीरे मेहं कुमारं एवं वयासी—"से णूणं तुमं मेहा! राओ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि समणेहिं निग्गंथेहिं वायणाए पुच्छणाए जाव महालियं च ण राइं णो सचाएमि मुहुत्तमवि अच्छि निमीलित्तए, तए ण तुब्भं मेहा इमे एयारूवे अज्झत्थिए समुप्पज्जित्था—जया णं अहं अगारमज्झे वसामि तया ण मम समणा निग्गंथा आढायंति जाव परिजाणति, जप्पभिइं च णं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयामि, तप्पभिइं च ण मम समणा णो आढायंति जाव नो परियाणति। अदुत्तरं

च णं समणा निग्गंथा राओ अप्पेगइया वायणाए जाव पायरयगुडियं करेन्ति । तं सेयं खलु मम कल्लं पाउप्पभायाए समणं भगवं महावीरं आपुच्छित्ता पुणरवि अगारमज्झे आवसित्तए' त्ति एवं सपेहेसि । सपेहित्ता अट्टदुहट्टवसट्ट-माणसे जाव रयणिं खवेसि । खवित्ता जेणामेव अह तेणामेव हव्वमागए । से नूण मेहा ! एस अट्ठे समट्ठे ?"

"हंता, अट्ठे समट्ठे ।"

"एवं खलु मेहा ! तुमं इओ तच्चे अईए भवग्गहणे वेयड्ढगिरिपायमूले वणयरेहिं णिव्वत्तियणामधेज्जे सेए संखदलउज्जलविमलनिम्मलदहिघणगोखीरफेणरयणियर–(दगरयरययणियर) प्पयासे सत्तुस्सेहे णवायए दसपरिणाहे सत्तंगपइट्ठिए सोमे समिए सुरूवे पुरओ उदग्गे समूसियसिरे सुहासणे पिट्ठओ वराहे अइयाकुच्छि अलंबकुच्छी पलबलं-बोदराहरकरे धणुपट्ठागिइविसिट्ठपुट्ठे अल्लीणपमाणजुत्त-पुच्छे पडिपुन्नसुचारुकुम्मचलणे पंडुरसुविसुद्धनिद्धणिरुवहय-विसतिनहे छद्दंते सुमेरुप्पभे नामं हत्थिराया होत्था ।

तत्थ णं तुमं मेहा ! बहूहिं हत्थीहिं हत्थिणीहि य लोट्टएहि य लोट्टियाहि य कलभेहि य कलभियाहि य सद्धिं सपरिवुडे हत्थिसहस्सणायए देसए पागट्टी पट्ठवए जूहवई वदपरिग्गट्टए अन्नेसिं च बहूण एकल्लाणं हत्थिकलभाण आहेवच्चं जाव विहरसि ।

तए णं तुम मेहा ! णिच्चप्पमत्ते सइं पललिए कदप्प-रई मोहणसीले अवितण्हे कामभोगतिसिए बहूहिं हत्थीहिं य जाव सपरिवुडे वेयड्ढगिरिपायमूले गिरीसु य, दरीसु य, कुहरेसु य, कंदरासु य, चिल्ललेसु य, कडएसु य, कडयपल्ल-

लेसु य, तडीसु य, वियडेसु य. टंकेसु य, कूडेसु य, सिहरेसु य, पब्भारेसु य, मचेसु य, मालेसु य, काणणेसु य, वणेसु य, वणसंडेसु य, वणराईसु य, नदीसु य, नदीकच्छेसु य, जूहेसु य, संगमेसु य, वावीसु य, पोक्खरिणीसु य, दीहियासु य, गुंजालियासु य, सरेसु य, सरपतियासु य, सरसरपतियासु य, वणयरेहिं दिन्नवियारे बहूहिं हत्थीहि य जाव सद्धि संपरिवुडे बहुविहतरुपल्लवपउरपाणियतणे निब्भए निरुव्विग्गे सुहंसुहेणं विहरसि। (३६-४०)

मूलार्थ—जिस दिन मेघकुमार ने मुण्डित होकर गृहवास त्याग कर चारित्र अगीकार किया, उसी दिन के सन्ध्याकाल मे, रात्निक अर्थात् दीक्षापर्याय के अनुक्रम से श्रमण निग्रन्थो के शय्या-सस्तारकों का विभाजन करते समय मेघकुमार का शय्या-सस्तारक द्वार के समीप हुआ।

तत्पश्चात् श्रमण निर्ग्रन्थ अर्थात् अन्य मुनि रात्रि के पहले और पिछले समय मे वाचना के लिए, पृच्छना के लिए, परावर्त्तन (श्रुत की आवृत्ति) के लिए, धर्म के व्याख्यान का चिन्तन करने के लिए, उच्चार (वड़ी नीति) के लिए, प्रस्रवण (लघुनीति) के लिए प्रवेश करते थे और वाहर निकलते थे। उनमे से किसी साधु के हाथ का मेघकुमार के साथ सघट्टन हुआ, इसीप्रकार किसी के पैरो से, मस्तक की, पेट की और शरीर की टक्कर हुई। कोई-कोई मेघकुमार को लाघकर निकले और किसी-किसी ने दो-तीन बार लाघा। किसी-किसी ने अपने पैरो की रज से उसे भर दिया। पैरो के वेग से उड़ी रज से भर दिया। इस प्रकार लम्बी रात्रि मे मेघकुमार क्षणभर भी आख वन्द न कर सका।

तव मेघकुमार के मन मे इस प्रकार का अध्यवसाय उत्पन्न हुआ मैं श्रेणिक राजा का पुत्र और धारिणी देवी का आत्मज

(उदरजात) मेघ कुमार हूँ। यावत् गूलर के पुष्प के समान मेरा नाम श्रवण करना भी दुर्लभ है। जब मैं घर मे रहता था, तब श्रमण निर्ग्रन्थ मेरा आदर करते थे। 'यह कुमार ऐसा है' ऐसा जानते थे, सत्कार-सन्मान करते थे। जीवादि पदार्थों को, उन्हे सिद्ध करने वाले हेतुओ को, प्रश्नो को, कारणो को और व्याकरणो (प्रश्नो के उत्तरो) को कहते थे और बार-बार कहते थे। इष्ट और मनोहर वाणी से आलाप-सलाप करते थे। किन्तु जब से मैने मुण्डित होकर गृहवास को त्यागकर साधु दीक्षा अगीकार की है, तब से लेकर साधु मेरा आदर नही करते, यावत् सलाप नही करते। इतने पर भी वे श्रमण निर्ग्रन्थ पहली और पिछली रात्रि के समय वाचना पृच्छना आदि के लिए जाते-आते मेरे सस्तारक को लाघते हैं और मैं इतनी लम्बी रात भर मे आख भी न मीच सका।

अतएव कल रात्रि के प्रभातरूप होने पर यावत् सूर्य के तेज से जाज्वल्यमान होने पर (सूर्योदय के पश्चात्) श्रमण भगवान् महावीर से आज्ञा लेकर पुन॰ गृहवास मे वसना ही मेरे लिए अच्छा है !

मेघकुमार ने ऐसा विचार किया। विचार करके आर्तध्यान के कारण दु ख से पीडित और विकलपयुक्त मानस को प्राप्त होकर मेघकुमार ने वह रात्रि नरक की भाति व्यतीत की। रात्रि व्यतीत करके, प्रभात होने पर, सूर्य जब तेज से जाज्वल्यमान होगया तब वह जहा श्रमण भगवान् महावीर थे, वहा आया। आकर तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके भगवान् को वन्दन किया, नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके यावत् भगवान् की पर्यु-पासना करने लगा।

तत्पश्चात् 'हे मेघ' इस प्रकार सम्बोधन करके श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने मेघकुमार से इस प्रकार कहा—हे मेघ ! तुम रात्रि के पहले और पिछले काल के अवसर पर, श्रमण निर्ग्रन्थो के वाचना पृच्छना आदि के लिए आवागमन करने के कारण लम्बी

रात्रि मे थोड़ी देर के लिए भी आंख नही मीच सके। मेघ! तव तुम्हारे मन मे इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—जब मैं गृहवास मे निवास करता था, तव श्रमण निर्ग्रन्थ मेरा आदर करते थे, यावत् मुझे जानते थे। परन्तु जब से मैंने मुण्डित होकर गृहवास से निकल कर साधुता की दीक्षा ली है, तब से श्रमण निर्ग्रन्थ न मेरा आदर करते है, न मुझे जानते है। इसके अतिरिक्त आते-जाते मेरा विस्तर लांघते है यावत् पैरो की रज से भरते है। अतएव मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि कल प्रभात होने पर श्रमण भगवान् महावीर से पूछ कर मैं पुन· गृहवास मे बसने लगू।

तुमने इस प्रकार विचार किया है। विचार करके आर्तध्यान के कारण दु ख से पीडित एव सकल्प-विकल्प से युक्त मानस वाले होकर यावत् रात्रि व्यतीत की है। रात्रि व्यतीत करके जहा मैं हूँ वहाँ शीघ्रतापूर्वक आए हो।

हे मेघ! यह अर्थ समर्थ है—मेरा यह कथन सत्य है?

मेघकुमार ने उत्तर दिया— जी हा, यह अर्थ समर्थ है—आपका कथन यथार्थ है।

प्रतिबोध

भगवान् बोले—हे मेघ! इससे पूर्व तीसरे अतीत भव मे, वैताढ्य पर्वत के पादमूल मे (तलहटी मे) तुम गजराज थे। वनचरों ने तुम्हारा नाम 'सुमेरुप्रभ' रक्खा था। उस सुमेरुप्रभ का वर्ण श्वेत था। शख के दल (चूर्ण) के समान उज्ज्वल, विमल, निर्मल, दही के थक्के के समान, गाय के दूध के फेन के समान (या क्षीर समुद्र के फेन के समान) और चन्द्रमा के समान (या जल कण अथवा चांदी के समूह के समान) रूप था। वह सात हाथ ऊ चा और नौ हाथ लम्बा था। मध्यभाग मे दस हाथ का परिमाण वाला था। चार पैर, सू ड़, पूंछ और लिंग— ये सात अग प्रतिष्ठित अर्थात् भूमि को स्पर्श करते थे।

सौम्य, प्रमाणोपेत अंगो वाला, सुन्दर रूपवाला, आगे से ऊंचा, ऊंचे मस्तक वाला, शुभ अथवा सुखद आसन (स्कंध आदि) वाला था। उसका पिछला भाग वराह (शूकर) के समान नीचे झुका हुआ था। उसकी कूंख बकरी की कूंख जैसी थी और वह छिद्रहीन थी। उसमे गड्ढा नही पडा था और वह लम्बी नही थी। वह लम्बे उदर वाला, लंबे होठ वाला और लम्बी सूंड वाला था। उसकी पीठ खींचे हुए धनुष के पृष्ठ जैसी आकृति की थी। उसके अन्य अवयव भलीभांति मिले हुए, प्रमाणयुक्त, गोल एवं पुष्ट थे। पूंछ चिपकी हुई तथा प्रमाणोपेत थी। पैर कछुए जैसे, परिपूर्ण और मनोहर थे। बीसों नाखून श्वेत, निर्मल, चिकने और निरुपहत थे। छह दांत थे।

हे मेघ! वहां तुम हाथियो, हथनियो, लोट्टकों (कुमार अवस्था वाले हाथियो), लोट्टिकाओ, कलभो (हाथी के बच्चो) और कलभिकाओ से परिवृत होकर एक हजार हाथियो के नायक, मार्गदर्शक, अगुवा, प्रस्थापक (काम मे लगाने वाले), यूथपति और यूथ की वृद्धि करने वाले थे। इनके अतिरिक्त बहुत-से अन्य अकेले हाथी के बच्चो का आधिपत्य करते हुए यावत् विचरण कर रहे थे।

हे मेघ! तुम निरन्तर प्रमादशील, सदा क्रीडापरायण, कन्दर्परति-क्रीडा करने मे प्रीति वाले, मैथुनप्रिय, कामभोग से तृप्त न होने वाले और कामभोग मे तृष्णा वाले थे। बहुत-से हाथियो वगैरह से परिवृत होकर वैताढ्य पर्वत के पादमूल मे, पर्वतो मे, दरियो (विशेष प्रकार की गुफाओ) मे, कुहरो (पर्वतो के अन्तरो) मे, कंदराओ मे, चिल्ललो (कीचड वाली तलैयो) मे, कटको (पर्वतो के तटो) मे, कटकपल्लवो (पर्वत की समीपवर्ती तलैयो) मे, तटो मे, अटवी मे, टंको (विशेष प्रकार के पर्वतो) मे, कूटो (नीचे चौडे और ऊपर सकडे पर्वतो) मे, शिखरो मे, प्राग्भारो (कुछ झुके हुए पर्वतो के भागो) मे, मंचो (नदी आदि को पार करने के लिए पाटा डालकर बनाए हुए कच्चे पुलो) पर, मालो पर, काननो मे, वनो (एक जाति के वृक्ष

वाले वगीचो) मे, वनखण्डों (अनेक जाति के वृक्षों वाले प्रदेशो) मे वन की श्रेणियो मे, नदियो मे, नदी-कच्छो (नदी के समीपवर्त्ती प्रदेशो) मे, यूथो (वानर आदि के निवास-स्थानो) मे, सगम स्थलो में, चौकोर वावडियो मे, गोल या कमलो वाली वावड़ियों मे, दीर्घिकाओ (लम्वी वावडियो) मे, गु जालिकाओ (वक्र वावड़ियो) मे, सरोवरों में, सरोवरो की पक्तियो मे, सरसरपक्तियो (जहा एक सर से दूसरे सर मे पानी जाने का मार्ग वना हो ऐसे सरो की पक्तियो) में, वनचरो द्वारा विचार (विचरण करने की छूट) जिसे दिया गया है, ऐसे तुम वहुसख्यक हाथियो आदि के साथ, नाना प्रकार के तरुपल्लवो पानी और घास का उपभोग करते हुए, निर्भय और उद्वेग-रहित होकर सुखपूर्वक विचरते थे। (३९-४०)

विशेष बोध—मेघकुमार दीक्षा के प्रथम दिन ही घवरा गए। मानो सिर मु डाया कि ओले पडे। प्रश्न हो सकता है कि ऐसा क्यो हुआ ? उनका वैराग्य वास्तविक था, आन्तरिक था। माता-पिता के वहुत समझाने पर भी और अनेक प्रकार के प्रलोभन एव भय प्रदर्शित करने पर भी वे दृढ रहे। फिर प्रारम्भ मे ही ऐसा क्यो हुआ ?

इसका उत्तर मानव-मानस की दुर्वलता ही समझना चाहिए। मुनि बन जाने के पश्चात् अनेक प्रकार की असुविधाए और प्रतिकूलताए आती है। उन्हे समभाव से झेल लेने का मनोवल मुनि मे होना चाहिए। मेघ सम्राट् के पुत्र थे। मृदुल शय्या पर शयन करने वाले थे। जीवन मे प्रथम वार उन्हे भूशय्या पर सोना पडा। कष्ट होना स्वाभाविक था। जीवन मे यह बडा भारी परिवर्त्तन था। फिर मुनियो के आवागमन से भी उन्हे कष्ट हुआ। सव मिलाकर स्थिति ऐसी वन गई कि उनका चित्त अस्थिर होगया।

चाहे राजकुमार हो या कोई निर्धन कुल से आया हो, मुनि वन जाने पर सब बराबर होते है। वहाँ किसी का लिहाज नही किया

जाता। यह आदर्श धार्मिक साम्यवाद है। तथापि नवदीक्षित मुनि को कुछ विशेष सुविधाएं मिलनी चाहिए। मेघ मुनि को वे सुविधाएं नही मिली। अधिकारी मुनियो ने उन्हे उचित स्थान नही दिया।

आज भी ऐसी परम्परागत धारणा है कि नवदीक्षित मुनि की, छह मास पर्यन्त उसकी इच्छानुसार खान-पान-शयन आदि की व्यवस्था रखनी चाहिए। सभव है मेघकुमार की इस घटना के पश्चात् ही यह व्यवस्था प्रचलित हुई हो।

तथापि मेघ मुनि की सहनशीलता मे कमी अवश्य मालूम होती है, जो उनके पूर्व-जीवन को देखते हुए स्वाभाविक है। आने-जाने वाले श्रमण भगवन्त हमारे जैसे प्रमादी नही रहे होगे। वे ईर्यासमिति का पालन करने वाले ऋषिराज थे। छद्मस्थ होने के कारण किसी की पैर की टक्कर लग जाना असभव नही, फिर भी, थोडा-सा कष्ट भी मेघ मुनि को महान् कष्ट जान पडा होगा। परीषहो और उपसर्गों को सहन करने का अभ्यास उन्हे नही था। अतएव मन ने सोचने की एक बार जो दिशा पकडी, उस पर वह आगे ही आगे बढता गया। उनके सुखशील मन ने राई जैसे उस कष्ट को पर्वत बना दिया! वास्तव मे मन बडा ही चचल और सृजन-शील है।

साधुजीवन मे जो आनन्द है, उसकी ठीक-ठीक कल्पना वही कर सकता है जिसने साधुता को जीवन मे रमा लिया हो। किसी ने यथार्थ कहा है—

न च राजभय न वियोगभय;
न च चौरभय न च वृत्तिभयम्।
इहलोकसुख परलोकहित,
श्रमणत्वमिद रमणीयतरम्॥

साधु को न राजा से भय रहता है और न किसी के वियोग का ही भय होता है। जहा सयोग होता है वही वियोग का भय रहता है। साधु सयोगमात्र का त्याग कर देता है। कुटुम्ब-परिवार, धन-

सम्पदा आदि से अपना सम्बन्ध विच्छिन्न कर लेता है। शरीर पर भी उसका ममभाव नही रहता। फिर वियोग की भीति उसके पास भी कैसे फटक सकती है! अकिंचन अनगार को चोर का भय हो नही सकता। आजीविका की उसे चिन्ता नही। भिक्षा से जीवन निर्वाह करने वाले को आजीविका का ख्याल ही नही आता। इस प्रकार साधुता इस लोक मे भी सुखकर है और परलोक मे भी हितकर है।

अगर साधु मे साधुत्व के प्रति गहरी श्रद्धा, रुचि और प्रतीति है तो सौधर्म देवलोक से लेकर सर्वार्थ सिद्ध विमान के देवो की अपेक्षा भी वह अधिक सुख की अनुभूति करेगा।

मुनि मेघकुमार की भाँति यदि साधु जीवन मे अनास्था, अरुचि और अप्रीति उत्पन्न हो जाय तो साधु जीवन नारकीय जीवन बन जाता है। मेघकुमार स्वय कहते हैं कि उन्होने वह रात्रि इस प्रकार व्यतीत की, मानो नरक मे रहकर वह समय व्यतीत किया हो। ऐसा मुनि 'इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्ट.' हो जाता है। उसके गार्हस्थिक सुख तो छूट ही जाते हैं, साधुता के आनन्द को भी वह नही पा सकता। परिणामस्वरूप दु ख ही दु.ख उसके पल्ले पडता है।

अत्यन्त सौभाग्यशाली थे मुनि मेघकुमार, जिन्हे श्रमण भगवान् महावीर गुरू के रूप मे मिले थे। भगवान् अन्तर्यामी थे। उन्होने मेघ मुनि के मानसिक भाव जान लिए। यह भी जाना कि मेघ घर लौट जाना चाहता है किन्तु चुपचाप नही, छिपकर नही, मुझसे अनुमति लेकर ही जाने की इच्छा कर रहा है। वह भावना से गिरा अवश्य है परन्तु ऐसा नही कि उठ न सके। उसमे उज्ज्वलता के पर्याप्त अश विद्यमान हैं।

मेघकुमार जब प्रभात होने पर भगवान् के निकट पहु चे तो उन्होने तत्काल उन्हें स्थिर कर दिया।

सर्वप्रथम प्रभु महावीर ने मुनि को उनके मन की बात बतलाई। फिर उनके पूर्वभव का वृत्तान्त कह सुनाया।

केवल ज्ञानी होने से भगवान् पूर्वभव तथा मन की बाते जानते और कह सकते है। इन्द्रियो और मन से होने वाले ज्ञान मे यह सामर्थ्य नही होता। यह ज्ञान परोक्ष होता है, क्योकि वह आत्मा से भिन्न बाह्य साधनों से उत्पन्न होता है।

आत्मप्रादुर्भूत ज्ञान ही प्रत्यक्ष कहलाता है। जब वह पूर्णता को प्राप्त होता है तो केवल ज्ञान कहा जाता है। भगवान् केवल ज्ञानी थे। इसी कारण सब भूतभाव उनके ज्ञान मे साक्षात् झलकते थे। उन्होंने बतलाया कि—हे मेघ! तुम पूर्वभव मे हाथी की पर्याय मे थे और वन आदि प्रदेशो मे आनन्द-विलास करते फिरते थे।

इस पूर्ववृत्तान्त का मेघ मुनि के मन पर क्या प्रभाव पड़ा, यह अगले सूत्रो मे स्पष्ट किया जाएगा। (३९-४०)

मूलपाठ—तए ण तुमं मेहा! अन्नया कयाई पाउस-वरिसारत्तसरयहेमंतवसंतेसु कमेण पचसु उऊसु समइक्कतेसु, गिम्हकालसमयसि जेट्ठामूलमासे, पायवघंससमुट्ठिएण सुक्क-तण-पत्त-कयवर-मारुतसंजोगदीविएण महाभयंकरेण हुयवहेणं वणदवजालासंपलित्तेसु, वणंतेसु, धूमाउलासु दिसासु, महावायवेगेणं सघट्टिएसु छिन्नजालेसु आवयमाणेसु, पोल्लतरुसु अतो अतो झियायमाणेसु, मयकुहियविणिविट्ठ-किमियकद्दमनदीवियरग-जिण्णपाणीयतेसु वणतेसु भिंगार-कदीणकदियरवेसु, खरफरुसअणिट्ठरिट्ठवाहितविद्दमग्गेसु दुमेसु, तण्हावसमुक्कपक्खपयडियजिब्भतालुयअसंपुडित-तुडपक्खिसघेसु ससतेसु गिम्ह-उम्ह-उण्हवायखरफरुस-चडमारुयसुक्कतणपत्त - कयवरवाउलिभमंतदित्तसभतसाव-

याउलमिगतण्हाबद्धचिण्हपट्टेसु गिरिवरेसु, संवट्टिएसु तत्थमियपसवसिरीसवेसु, अवदालियवणविवरणिल्लालियग्ग-जीहे, महततुवइयपुण्णकण्णे सकुचियथोरपीवरकरे ऊसियलगूले पीणाइयविरसरडियसद्दे ण फोडयतेव अवरतल, पायदद्दरएणं कपयतेव मेइणितलं, विणिम्मुयमाणे य सोयारं, सव्वओ समंता वल्लिवियाणाइं छिंदमाणे, सक्खसहस्साइं तत्थ सुबहूणि पोल्लयते, विणट्ठरट्ठे व्व णरवरिन्दे, वायाइद्धे व पोए, मडलवाए व्व परिब्भमंते अभिक्खणं अभिक्खण लिंडिणियरं पमुंचमाणे पमुचमाणे बहूहिं हत्थीहि य जाव सद्धि दिसोदिसिं विप्पलाइत्था ।

तत्थ णं तुमं मेहा ! जुण्णे जराजज्जरियदेहे आउरे झझिए पिवासिए दुब्बले किलते नट्ठसुइए मूढदिसाए सयाओ जूहाओ विप्पहूणे वणदवजालापारद्धे उण्हेण य तण्हाए य छुहाए य परब्भाहारे समाणे भीए तत्थे तसिए उव्विग्गे संजायभए सव्वओ समंता आधावमाणे परिधावमाणे एग च णं महं सरं अप्पोदयं पंकबहुलं अतित्थेणं पाणियपाए उइन्नो ।

तत्थ णं तुम मेहा ! तीरमइगए पाणियं असंपत्ते अंतरा चेव सेयसि विसन्ने ।

तत्थ णं तुम मेहा ! पाणियं पाइस्सामि त्ति कट्टु हत्थं पसारेसि, से वि य ते हत्थे उदग न पावेइ । तए ण तुम मेहा ! पुणरवि काय पच्चुद्धरिस्सामि त्ति कट्टु बलियतराग पकसि खुत्ते ।

तए णं तुमं मेहा ! अन्नया कयाइ एगे चिरणिज्जूढे गयवरजुवाणए सयाओ जूहाओ कर-चरण-दत-मुसलप्प-

हारेहि विप्परद्धे समाणे तं चेव महद्दहं पाणीयं पाएउं समायरेइ ।

तए ण से कलभए तुमं पासति, पासित्ता तं पुव्ववेर समरइ, समरित्ता आसुरत्ते रुट्ठे चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे जेणेव तुम तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तुम तिक्खेहिं दतमुसलेहि तिक्खुत्तो पिट्ठओ उच्छुभइ, उच्छुभित्ता पुव्ववेर निज्जाएइ, निज्जाएत्ता हट्ठतुट्ठे पाणियं पिवइ, पिइत्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए ।

तए ण तव मेहा ! सरीरगसि वेयणा पाउब्भवित्था उज्जला विउला तिव्वा कक्खडा जाव दुरहियासा, पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कतीए यावि विहरित्था ।

तए ण तुम मेहा ! तं उज्जल जाव दुरहियास सत्त-राइदिण वेयणं वेदेसि, सवीस वाससय परमाउ पालइत्ता अट्टवसट्टदुहट्टे कालमासे कालं किच्चा इहेव जबुद्दीवे भारहे वासे दाहिणड्ढभरहे गंगाए महाणईए दाहिणे कूले विंझ-गिरिपायमूले एगेण मत्तवरगधहत्थिणा एगाए गयवर-करेणूए कुच्छिसि गयकलभए जणिए । तए णं सा गयकल-भिया णवण्ह मासाणं वसंतमासम्मि तुम पयाया ।

तए ण तुम मेहा ! गब्भवासाओ विप्पमुक्के समाणे गयकलभए यावि होत्था, रत्तुप्पलरत्तसूमालए जासुमणारत्त-पारिजत्तय - लक्खारस - सरसकुंकुम-संझब्भरागवण्णे इट्ठे णियस्स जूहवइणो गणियायारकणेरुकोत्थहत्थी अणेगह-त्थिसयसपरिवुडे रम्मेसु गिरिकाणणेसु सुहसुहेण विहरसि ।

मूलार्थ—तत्पश्चात् एक वार कदाचित् प्रावृट, वर्षा, शरद्, हेमन्त और वसन्त, इन पांच ऋतुओ के क्रमशः व्यतीत हो जाने पर ग्रीष्म ऋतु का समय आया। तव ज्येष्ठ मास मे, वृक्षो की आपस को रगड से उत्पन्न हुई तथा सूखे घास, पत्तो और कचरे से एव वायु के वेग से दीप्त हुई अत्यन्त भयानक अग्नि से उत्पन्न वन के दावानल की ज्वालाओ से वन का मध्य भाग सुलग उठा। दिशाएं धुएं से व्याप्त हो गई। प्रचण्ड वायुवेग से अग्नि की ज्वालाएं टूट जाने लगी और चारो ओर गिरने लगी। पोले वृक्ष भीतर ही भीतर जलने लगे। वन प्रदेश के नदी-नालो का जल मृत मृगादिक के शवो से सडने लगा—खराव होगया। उनका कीचड़ कीड़ो वाला होगया। उनके किनारो का पानी सूख गया। भृंगारक पक्षी दीनतापूर्ण आक्रन्दन करने लगे। उत्तम वृक्षो पर स्थित काक अत्यन्त कठोर और अनिष्ट शव्द करने लगे। उन वृक्षों के अग्रभाग अग्निकणो के कारण मूंगे के समान लाल दिखाई देने लगे। पक्षियो के समूह प्यास से पीड़ित होकर पख ढीले करके, जिह्वा एव तालु को प्रकट करके तथा मुंह फाडकार सासें लेने लगे। ग्रीष्मकाल की उष्णता, सूर्य के ताप, अत्यन्त कठोर एव प्रचण्ड वायु तथा सूखे घास पत्ते और कचरे से युक्त ववण्डर के कारण भाग-दौड करने वाले मदोन्मत्त तथा सभ्रम वाले-सिंह आदि श्वापदो के कारण श्रेष्ठ पर्वत आकुल-व्याकुल हो उठे। ऐसा प्रतीत होने लगा मानो उन पर्वतो पर मृग-तृष्णा रूप पट्टवन्ध वधा हो। त्रास को प्राप्त मृग, वन्य पशु और सरीसृप इधर-उधर तड़पने लगे।

इस भयानक अवसर पर हे मेघ! तुम्हारा अर्थात् तुम्हारे पूर्वभव के सुमेरुप्रभ नामक हाथी का मुख-विवर फूट गया। जीभ का अग्रभाग वाहर निकल आया। वड़े-वड़े दोनो कान भय से स्तव्ध और व्याकुलता के कारण शव्द ग्रहण करने मे तत्पर हुए। वडी और मोटी सूंड सिकुड गई। उसने पूंछ ऊंची करली। पीन (मड्‌डा) के समान

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स दुवे वरतरुणीओ सिंगा-रागारचारुवेसाओ जाव कुसलाओ सीयं दुरूहंति, दुरूहित्ता मेहस्स कुमारस्स उभओ पास नानामणि-कणग-रयणमहरिह-तवणिज्जुज्जलविचित्तदंडाओ चिल्लियाओ सुहुमवरदीह-वालाओ संख-कुंद-दग-रयअ-महियफेणपुंजसन्निगासाओ गहाय सलीलं ओहारेमाणीओ ओहारेमाणीओ चिट्ठंति।

तए ण तस्स मेह कुमारस्स एगा वरतरुणी सिंगारा० जाव कुसला सीयं जाव दुरुहइ, दुरुहित्ता मेहस्स कुमारस्स पुरतो पुरत्थिमेणं चंदप्पभवइर-वेरुलियविमलदड तालविंट गहाय चिट्ठइ।

तए ण तस्स मेहस्स कुमारस्स एगा वरतरुणी जाव सुरूवा सीयं दुरूहइ, दुरूहित्ता मेहस्स कुमारस्स पुव्वदक्खिणेण सेयं रययामयं विमलसलिलपुन्न मत्तगयमहामुहाकिइ-समाण भिंगारं गहाय चिट्ठइ। (३४)

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह नापित श्रेणिक राजा के इस प्रकार कहने पर हृष्ट तुष्ट और आनन्दित हृदय हुआ। उसने यावत् श्रेणिक राजा का आदेश स्वीकार किया। स्वीकार करके सुगधित गधोदक से हाथ-पैर धोए। हाथ-पैर धोकर शुद्ध वस्त्र से मुह बाधा। बाधकर बडी सावधानी से मेघकुमार के चार अगुल छोडकर दीक्षा के योग्य केश काटे।

तत्पश्चात् मेघकुमार की माता ने उन केशो को बहुमूल्य और हस के चित्र वाले उज्ज्वल वस्त्र मे ग्रहण किया। ग्रहण करके उन्हे सुगधित गधोदक से धोया। धोकर सरस गोशीर्ष चन्दन उन पर छिड़का। छिड़क कर उन्हे श्वेत वस्त्र मे बाँधा। बाँधकर रत्न की डिबिया मे रक्खा। रखकर उस डिबिया को मजूषा मे रक्खा। फिर

जल की धार, निर्गुंडी के फूल एव विखरे मोतियो के समान अश्रु वहाती-वहाती, रोती-रोती, आक्रन्दन करती-करती और विलाप करती-करती इस प्रकार कहने लगी—मेघकुमार के केशो का यह दर्शन राज्यप्राप्ति आदि अभ्युदय के अवसर पर, उत्सव के अवसर पर, प्रसव के अवसर पर, तिथियो के अवसर पर, इन्द्रमहोत्सव आदि के अवसर, नागपूजा आदि के अवसर पर तथा कार्तिकी पूर्णिमा आदि पर्वों के अवसर पर हमे अतिम दर्शनरूप होगा। इस प्रकार कह कर धारिणी ने वह पेटी अपने सिरहाने के नीचे रखली।

तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता ने उत्तराभिमुख सिंहासन रखवाया। फिर मेघकुमार को दो तीन वार श्वेत और पीत अर्थात् चादी और सोने के कलशो से नहलाया। नहलाकर रुएदार और कोमल गधकषायवस्त्र से उसके अग पोछे। पोंछकर सरस गोशीर्ष चन्दन से शरीर पर विलेपन किया। विलेपन करके नासिका के निश्वास की वायु से भी उडने योग्य अति वारीक तथा हसलक्षण वाला वस्त्र पहनाया। पहनाकर अठारह लडो का हार पहनाया, नौ लड़ो का अर्धहार पहनाया, फिर एकावली, मुक्तावली, कनकावली, रत्नावली, आलम्व, पादप्रलम्व (पैरो तक लटकने वाला आभूषण), कडे, तुटिक (भुजा का आभूषण) केयूर, अगद, दसो उगलियो मे दस मुद्रिकाएँ, कदोरा, कुडल, चूडामणि तथा रत्नजटित मुकुट पहनाया। यह सब अलकार पहनाकर पुष्पमाला पहनाई। फिर दर्दर मे पकाये हुए चन्दन के सुगधित तैल की गंध शरीर पर लगाई। (३२)

तत्पश्चात् मेघकुमार को सूत से गूथी हुई, पुष्प आदि से वेढी हुई, वाँस की सलाई आदि से पूरित की हुई तथा सघात से तैयार की हुई, इस तरह पांच प्रकार की मालाओ से कल्पवृक्ष के समान अलंकृत और विभूषित किया।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलवाया और कहा—हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही एक शिविका तैयार करो, जो अनेक सैकडो स्तभो से बनी हो, जिसमे क्रीडा करती हुई पुतलिया बनी हो, जो ईहामृग, वृषभ, तुरग, नर, मगर, विहग, सर्प, किंनर, रुरु (काला मृग), सरभ (अष्टापद), चमरी गाय, कुजर, वनलता, पद्मलता आदि के चित्रो से की गई रचना से युक्त हो, जिसमे घटा के समूह के मधुर और मनोहर शब्द हो रहे हो, जो शुभ मनोहर और दर्शनीय हो। जो कुशल कलाकारो द्वारा निर्मित हो, देदीप्यमान मणियो और रत्नो के घुघुरुओ के समूह से व्याप्त हो, स्तंभ पर बनी वेदिका से युक्त होने के कारण जो मनोहर दिखाई देती हो, जो चित्रित विद्याधर-युगलो से युक्त हो, चित्रित सूर्य की हजार किरणो से शोभित हो, इस प्रकार हजारो रूपको वाली, देदीप्यमान, अतिशय देदीप्यमान, जिसे देखते नेत्रो की तृप्ति न हो, जो सुखद स्पर्श वाली हो, सश्रीक स्वरूप वाली हो, शीघ्र त्वरित चपल और अतिशय चपल हो अर्थात् जिसे शीघ्रतापूर्वक ले जाया जाय और जो एक हजार पुरुषो द्वारा वहन की जाती हो।

तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष हृष्ट-तुष्ट होकर यावत् शिविका उपस्थित करते है।

तत्पश्चात् मेघकुमार शिविका पर आरूढ हुआ और सिंहासन के पास पहुँचकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठ गया।

तत्पश्चात् जो स्नान कर चुकी है, बलिकर्म कर चुकी है यावत् अल्प और बहुमूल्य आभरणो से शरीर को अलकृत कर चुकी है, ऐसी मेघकुमार की माता उस शिविका पर आरूढ हुई। आरूढ होकर मेघकुमार के दाहिने पार्श्व मे भद्रासन पर बैठ गई।

तत्पश्चात् मेघकुमार की धायमाता रजोहरण और पात्र लेकर शिविका पर आरूढ़ होकर मेघकुमार के बाये पार्श्व मे भद्रासन पर बैठी।

तत्पश्चात् मेघकुमार के पीछे श्रृ गार के आगाररूप, मनोहर वेषवाली एव सुन्दर गति हास्य वचन चेष्टा विलास सलाप उल्लाप करने मे कुशल, योग्य उपचार करने मे कुशल, परस्पर मिले हुए समश्रेणी मे स्थित गोलाकार ऊचे पुष्ट प्रीतिजनक और उत्तम आकार के स्तनो वाली एक उत्तम तरुणी हिम रजत कुन्दपुष्प और चन्द्रमा के समान आभा वाले एव कोरट-पुष्पो की माला से युक्त धवल छत्र को धारण करती हुई लीलापूर्वक खडी हुई।

तत्पश्चात् मेघकुमार के समीप श्रृ गार के आगार के समान सुन्दर वेष वाली यावत् उचित उपचार करने मे कुशल दो श्रेष्ठ तरुणिया शिविका पर आरूढ हुई। आरूढ होकर मेघकुमार के दोनों पार्श्वों मे विविध प्रकार के मणि सुवर्ण रत्न एव बहुमूल्य तपनीयमय (रक्त वर्ण सुवर्ण वाले) उज्ज्वल एव विचित्र दडी वाले, चमचमाते हुए पतले उत्तम और लबे वालो वाले, शख, कुन्दपुष्प, जलकण, रजत एव मन्थन किये हुए अमृत के फेन के समूह सरीखे (श्वेतवर्ण) दो चामर धारण करके लीलापूर्वक बीजती-बीजती खडी हुई।

तत्पश्चात् मेघकुमार के समीप श्रृ गार के आगाररूप यावत् उचित उपचार करने मे कुशल एक उत्तम तरुणी यावत् शिविका पर आरूढ हुई। आरूढ होकर मेघकुमार के पास पूर्व दिशा के सन्मुख चन्द्रकान्त मणि, वज्ररत्न और वैडूर्यमय निर्मल दडी वाले पखे को ग्रहण करके खड़ी हुई।

तत्पश्चात् मेघकुमार के समीप एक उत्तम तरुणी यावत् सुन्दर रूप वाली शिविका पर आरूढ हुई। आरूढ होकर मेघकुमार से पूर्व-दक्षिण—आग्नेय दिशा मे श्वेत, रजतमय, निर्मल जल से परिपूर्ण, मदमाते हाथी के महामुख के समान आकृति वाले भृ गार (झारी) को लेकर खडी हुई। (३४)

विशेष बोध—नाई ने शुद्ध वस्त्र से मुख बाधकर मेघकुमार के बाल काटे। मुख बाधने का हेतु यह है कि मुख से निकलने वाली

बदबू मेघकुमार को स्पर्श न करे। कदाचित् बोलना पडे तो थूक न न उचट जाय।

देखा जाता है कि उच्च स्वर से बोलने पर किसी-किसी मनुष्य के मुँह से थूक के फुहारे निकलते हैं। मुख से निकलने वाली वायु अशुद्ध और दुर्गन्धयुक्त होती है।

हम अहिंसा को लक्ष्य मे रखकर मुख पर मुहपत्ती बाधते हैं। किन्तु व्याख्यान के समय शास्त्र के पन्ने पर थूक के कण न गिर जाए, यह दृष्टिकोण भी अनुचित नही है।

वैरागी की माता ने कटे केशों को बडे ही प्यार से सुरक्षित रख लिया। इससे माता की असाधारण ममता व्यक्त होती है। महारानी धारिणी का कितना प्रगाढ प्रेम मेघकुमार के प्रति था, इस घटना से स्पष्ट हो जाता है।

वैराग्य की एक जोरदार लहर उमडी और मेघकुमार को ले गई। माता की पुत्र के प्रति जो ममता थी वह मानो केशो मे सीमित रह गई।

वैरागी के दीक्षाकालीन केश मागलिक माने जाते है। आज भी यह परम्परा चालू है। मोह और मागलिकता की धारणा, दोनो कारण होने से धारिणी देवी ने पुत्र के केश लेकर रत्नो की डिबिया मे रक्खे और उस डिबिया को फिर मजूषा मे रख लिया। इसलिए कि बार-त्यौहार के अवसर पर वे मेघकुमार का स्मारक बनेंगे।

वैरागी के केशो को मगलमय समझना अनुचित नही कहा जा सकता, क्योकि वैरागी होने पर जीवन मे अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि की परिपूर्ण भावनाए ओतप्रोत हो जाती है। इसी हेतु उसके वस्त्रादि भी मागलिक माने जाते है। वास्तव मे उन सब वस्तुओ से त्याग-वैराग्य का स्मरण होता है। मगर उनमे ममता धारण करना, उन्हे ममत्व का प्रतीक बना लेना उचित नही है।

धारिणी ने जो कुछ किया वह पुत्र स्नेह के वश होकर किया है। उसके समान आज कोई वैरागी की माता या उसका निकट-संबधी ऐसा करे, यह दूसरी वात है, परन्तु कोई भी व्यक्ति वाल उठाकर ले जाय और मादलिया वनवाकर अपने वच्चे के गले मे वाँध दे, यह अन्धश्रद्धा और रूढि समझना चाहिए।

मेघकुमार केश-कर्त्तन के पश्चात् वस्त्राभूषण धारण करते हैं। शिविका पर सुशोभन सिंहासन पर आसीन होते हैं। राजसी ठाठ के साथ जुलूस निकलता है। फिर भगवान् की सेवा मे दीक्षा के लिए जाते है। आज की परम्परा के अनुसार वैरागी जुलूस के साथ दीक्षा-स्थल पर जाता है और वहा पहु च कर क्षुरमुण्डन करवाता है।

सूत्रकार ने काव्यात्मक शैली से सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है।

(३३-३४)

मूलपाठ—तए ण तस्स मेहस्स कुमारस्स पिया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सरिसयाणं सरिसत्तयाण सरिसव्वयाणं एगाभरणगहियनिज्जोयाण कोडुबियवरतरुणाणं सहस्सं सद्दावेह।' जाव सद्दावेंति।

तए ण ते कोडुबियवरतरुणपुरिसा सेणियस्स रण्णो कोडुबियपुरिसेहिं सद्दाविया समाणा हट्ठा ण्हाया जाव एगाभरणगहियनिज्जोया जेणामेव सेणिए राया तेणामेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता सेणियं राय एव वयासी—'संदिसाहि णं देवाणुप्पिया ! जं णं अम्हेहिं करणिज्ज।'

तए ण से सेणिए राया त कोडुंबियवरतरुणसहस्स एव वयासी—'गच्छह णं देवाणुप्पिया ! मेहस्स कुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणिं सीय परिवहेह।'

तए णं ते कोडुंबियवरतरुणसहस्सं सेणिए णं रण्णा एवं वुत्तं सतं हट्ठ-तुट्ठं तस्स मेहस्स कुमारस्स पुरिससहस्स-वाहिणिं सीयं परिवहंति ।

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं दुरूढस्स समाणस्स इमे अट्ठट्ठ मंगलया तप्पढमयाए पुरतो अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया । तंजहा—(१) सोत्थिय (२) सिरिवच्छ (३) नंदियावत्त (४) वद्धमाणग (५) भद्दासण (६) कलस (७) मच्छ (८) दप्पण जाव बहवे अत्थत्थिया जाव ताहिं इट्ठाहिं जाव अणवरयं अभिणंदंता य एवं वयासी—

'जय जय णंदा ! जय जय भद्दा ! जय णंदा । भद्दं ते, अजियाइं जिणाहि इंदियाइं, जियं च पालेहि समणधम्मं, जियविग्घोऽवि य वसाहि तं देव ! सिद्धिमज्झे । णिहणाहि रागद्दोसमल्ले तवेण धिइधणियबद्धकच्छे, मद्दाहि य अट्ठकम्मसत्तू झाणेणं उत्तमेणं सुक्केणं अप्पमत्तो, पावय वितिमिरमणुत्तरं केवलं नाणं, गच्छ य मोक्खं परमपयं सासयं च अचलं हंता परिग्गहचमुं णं अभीओ परीसहोवसग्गाणं, धम्मे ते अविग्घं भवउ त्ति कट्टु पुणो-पुणो मंगल-जयजयसद्दं पउंजंति ।

तए णं से मेहे कुमारे रायगिहस्स नगरस्स मज्झं मज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव गुणसिलए चेइए तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ पच्चोरुहइ । (३५-३६)

मूलार्थ—तत्पश्चात् मेघकुमार के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलवाया । बुलवा कर इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो ! शीघ्र ही एक

सरीखे, एक सरीखी त्वचा (कान्ति) वाले, एक सरीखी उम्र वाले तथा एक से आभूषणो से समान वेष धारण करने वाले एक सहस्र उत्तम तरुण कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाओ।

यावत् उन्होने एक हजार पुरुषो को बुलाया।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा के कौटुम्बिक पुरुषो के द्वारा बुलाए गए वे कौटुम्बिक तरुण पुरुष हृष्ट-तुष्ट हुए। उन्होंने स्नान किया, यावत् एक-से आभूषण पहन कर समान पोशाक पहनी। फिर जहाँ श्रेणिक राजा था वहाँ आए। आकर श्रेणिक राजा से इस प्रकार बोले—हे देवानुप्रिय! हमें जो करने योग्य है, उसके लिए आज्ञा दीजिए।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने उन एक हजार उत्तम तरुण कौटुम्बिक पुरुषो से कहा—हे देवानुप्रियो! तुम जाओ और हजार पुरुषो द्वारा वहन करने योग्य मेघकुमार की पालकी को वहन करो।

तत्पश्चात् वे उत्तम तरुण हजार कौटुम्बिक पुरुष श्रेणिक राजा के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट हुए और हजार पुरुषो द्वारा वहन करने योग्य मेघकुमार की शिविका को वहन करने लगे।

तत्पश्चात् पुरुषसहस्रवाहिनी शिविका पर मेघकुमार के आरूढ होने पर, उसके सामने, सर्वप्रथम यह आठ मगलद्रव्य अनुक्रम से चले। वे इस प्रकार है—(१) स्वस्तिक (२) श्रीवत्स (३) नदावर्त्त (४) वर्द्धमान (५) भद्रासन (६) कलश (७) मत्स्य और (८) दर्पण। यावत् वहुत-से धन के अर्थी (याचक) जन यावत् इष्टकान्त आदि विशेपणो वाली वाणी से यावत् निरन्तर अभिनन्दन एवं स्तुति करते हुए इस प्रकार कहने लगे—

"हे नन्द! जय हो, जय हो। हे भद्र! जय हो, जय हो। हे जगत् को आनन्द देने वाले! तुम्हारा कल्याण हो। तुम नही जीती हुई पाच इन्द्रियो को जीतो और जीते हुए (प्राप्त किये) श्रमणधर्म का पालन करो। हे देव! विघ्नों को जीतकर सिद्धि मे निवास करो।

धैर्यपूर्वक कमर कस कर तप के द्वारा राग-द्वेष रूपी मल्लो का हनन करो। प्रमादरहित होकर उत्तम शुक्लध्यान के द्वारा आठ कर्म-शत्रुओ का मर्दन करो। अज्ञानान्धकार से रहित सर्वोत्तम केवल-ज्ञान को प्राप्त करो। परीषहरूप सेना का हनन करके, परीषह और उपसर्ग से निर्भय होकर शाश्वत एव अचल परमपद रूप मोक्ष को प्राप्त करो। तुम्हारे धर्माराधन मे विघ्न न हो।" इस प्रकार कह कर वे पुन पुन मगलमय 'जय-जय' शब्द का प्रयोग करने लगे।

तत्पश्चात् मेघकुमार राजगृह के बीचोबीच होकर निकला। निकल कर जहा गुणशील चैत्य था, वहां आया। आकर पुरुषसहस्र-वाहिनी पालकी से नीचे उतरा। (३५-३६)

विशेष बोध—प्राचीन सस्कृति की एक झाकी यहा प्रस्तुत है। एक सहस्र पुरुषो द्वारा वहन की जाने वाली शिविका पर मेघकुमार आरूढ होते है। ये सहस्र पुरुष राजा के बेगारी नही, कौटुम्बिक पुरुष हैं। इसका अभिप्राय यह है कि इनकी आजीविका की व्यवस्था राज्य की ओर से की जाती थी। जहा राजकोष इतने अधिक व्यक्तियो के काम आता हो वहा बेकारी का क्या काम ! इस प्रकरण से और पिछले अनेक प्रकरणो से स्पष्ट ज्ञात होता है कि राजा के श्रीगृह से निर्धनो को उदारतापूर्वक धन दिया जाता था। किसी न किसी निमित्त से वह गरीबो का सहारा था। यही कारण है कि उस समय वर्गसघर्ष नही था। समाजवाद एवं साम्यवाद के नारे नही लगाए जाते थे। उस समय राजा राजकोश का संरक्षक था।

शिविका को वहन करने वाले तरुण पुरुष समान, समान वय, वेश और रूपरग वाले थे। इससे जुलूस की शोभा मे अपार वृद्धि हुई होगी।

जब हजार पुरुष केवल शिविका मे ही लगे थे तो साथ चलने वालो की सख्या कितनी रही होगी, यह कल्पना का ही विषय है ! एक तरुण सम्राट्-पुत्र का गृहत्याग और भिक्षु-जीवन को अगीकार

करना भी क्या साधारण घटना थी ! कितना महान् त्याग है ! भारतीय सस्कृति की यह दिव्यता आज भी विवेकशील जनो के लिए सराहनीय है ।

आठ मगलद्रव्य[1] स्वस्तिकादि मगल एव शोभा के हेतु वैरागी के आगे-आगे मानव लेकर चले ।

वैरागी अव दीक्षास्थल पर, जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, पहुच रहा है। विराट जनसमूह साथ-साथ चल रहा है। जय-जयकार की तुमुल ध्वनि से गगनमडल गूज रहा है। वारबार जयध्वनि हो रही है। खुशियो के विविध प्रकार प्रकट हो रहे हैं । आशीर्वाद दिये जा रहे हैं, यथा—

हे नन्द ! जय हो, तुम्हारी जय हो । इन्द्रियो को जीतो । राग-द्वेष को जीतो । कर्मशत्रुओ को जीतो, आदि ।

यह वर्णन जैसे विजय-यात्रा का वर्णन है। मानो कोई राजा युद्ध के लिए प्रस्थान कर रहा हो ! और यह रूपक वास्तव मे यथार्थ है। मेघकुमार का यह प्रस्थान ऐसे युद्ध के लिए था जो स्वय अपने साथ लड़ा जाता है। इस महान् युद्ध मे अपनी ही विकार-वासनाओ से जूझना पडता है। आन्तरिक रिपुओ पर विजय प्राप्त करना और उन्हे निश्शेष करना ही सर्वोत्तम विजय है। इस विजय के पश्चात् न कोई शत्रु रह जाता है और न कालान्तर मे पराजय की संभावना रह जाती है। इस विजय के फलस्वरूप किसी एक भूखण्ड का अस्थायी स्वामित्व नही मिलता, अपितु तीनो लोको का ऐसा आधिपत्य प्राप्त होता है, जो सदा निरावाध और शाश्वत है।

मेघकुमार इसी युद्ध मे विजयी होने के लिए प्रस्थान कर रहे

---

१ मगलकानि—माङ्गल्यवस्तूनि, अन्ये त्वाहु :—अण्टसङ्ख्यानि अष्टमगलसञ्ज्ञानि वस्तूनीति । —अभयदेवटीका

हैं। अतएव यह यात्रा अत्यन्त महिमामयी है। जनसाधारण आशीर्वाद के शब्द कहकर अपनी शुभ कामनाए व्यक्त करते है।

कितना भावपूर्ण, कितना सौम्य, कितना गम्भीर रहा होगा वह पावन प्रसग! (३५-६६)

मूलपाठ—तए ण तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो मेह कुमार पुरओ कट्टु जेणामेव समणे भगव महावीरे तेणामेव उवागच्छति। उवागच्छित्ता समणं भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेन्ति। करित्ता वदति नमसति, वंदित्ता नमसित्ता एव वयासी—

"एस ण देवाणुप्पिया! मेहे कुमारे अम्ह एगे पुत्ते इट्ठे कते जाव जीविय ऊसासए हिययणदिजणए उबरपुप्फमिव दुल्लहे सवणयाए, किं पुण दरिसणयाए? से जहानामए उप्पलेइ वा, पउमेइ वा, कुमुदेइ वा, पंके जाए जले सवड्ढिए नोवलिप्पइ पकरएणं, नोवलिप्पइ जलरएण, एवामेव मेहे कुमारे कामेसु जाए भोगेसु सवुड्ढे, नोवलिप्पइ कामरएण, नोवलिप्पइ भोगरएण। एस ण देवाणुप्पिया! ससारभउव्विग्गे भीए जम्मण-जर-मरणाण, इच्छइ देवाणुप्पियाण अतिए मु डे भवित्ता आगाराओ अणगारिय पव्वइत्तए।

अम्हे ण देवाणुप्पियाण सिस्सभिक्ख दलयामो। पडिच्छतु ण देवाणुप्पिया! सिस्सभिक्ख।"

तए ण से समणे भगव महावीरे मेहस्स कुमारस्स अम्मापिऊहिं एव वुत्ते समाणे एयमट्ठ सम्म पडिसुणेइ।

तए ण से मेहे कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतियाओ उत्तरपुरच्छिम दिसिभाग अवक्कमइ। अवक्कमित्ता सयमेव आभरणमल्लालकार ओमुयइ।

तए णं से मेहकुमारस्स माया हंसलक्खणेण पडसाडएणं आभरणमल्लालकारं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता हार-वारिधार-सिंदुवार-छिन्नमुत्तावलिप्पगासाइं अंसूणि विणिम्मुयमाणी २ रोयमाणी २, कंदमाणी २, विलवमाणी २ एव वयासी—

"जइयव्व जाया ! घडियव्वं जाया ! परक्कमियव्वं जाया ! अस्सिं च ण अट्ठे नो पमाएयव्वं । अम्हं पि णं एमेव मग्गे भवउ'त्ति कट्टु मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो समण भगव महावीरं वंदंति, नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसि पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया ।

तए णं से मेहे कुमारे सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ । करित्ता जेणामेव समणे भगवं महावीरे तेणामेव उवागच्छइ । उवागच्छित्ता समणं भगव महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ । करेत्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

आलित्ते णं भंते ! लोए, पलित्ते ण भंते ! लोए, आलित्त-पलित्ते ण भंते ! लोए जराए मरणेण य । से जहा नामए केई गाहावई आगारंसि झियायमाणंसि जे तत्थ भडे भवइ अप्पभारे मोल्लगुरुए तं गहाय आयाए एगंतं अवक्कमइ,—एस मे णित्थारिए समाणे पच्छा पुरा हियाए सुहाए खमाए णिस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ । एवामेव मम वि एगे आयाभंडे इट्ठे कते पिए मणुन्ने मणामे, एस मे णित्थारिए समाणे संसारवोच्छेयकरे भविस्सइ । तं इच्छामि ण देवाणुप्पियाहिं सयमेव पव्वावियं, सयमेव मुंडावियं, सेहावियं, सिक्खावियं, सयमेव आयार-गोयर-विणय-वेणइय-चरण-करण-जाया-मायावत्तियं धम्ममाइक्खियं ।"

तए णं समणे भगवं महावीरे सयमेव पव्वावेइ, सयमेव आयार० जाव धम्ममाइक्खइ—'एवं देवाणुप्पिया ! गंतव्वं चिट्ठियव्वं णिसीयव्वं तुयट्टियव्वं भुंजियव्वं भासियव्व, एवं उट्ठाय उट्ठाय पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेण संजमियव्व, अस्सि च ण अट्ठे णो पमाएयव्व।'

तए ण से मेहे कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए इम एयारूव धम्मिय उवएसं णिसम्म सम्म पडिवज्जइ। तमाणाए तह गच्छइ, तह चिट्ठइ जाव उट्ठाय उट्ठाय पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमइ। (३७–३८)

मूलार्थ—तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता मेघकुमार को आगे करके जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे, वहाँ आते है। आकर श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार दक्षिण तरफ से आरम्भ करके प्रदक्षिणा करते है। प्रदक्षिणा करके वन्दन करते है, नमस्कार करते हैं। वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार कहते है—

हे देवानुप्रिय ! यह मेघकुमार हमारा इकलौता पुत्र है। यह हमे इष्ट है, कान्त है, प्राण के समान और उच्छ्‌वास के समान हैं। हृदय को आनन्द प्रदान करने वाला है। गूलर के पुष्प के समान, इसका नाम श्रवण करना भी दुर्लभ है तो दर्शन की बात ही क्या है? जैसे उत्पल (नील कमल), पद्म (सूर्यविकासी कमल) अथवा कुमुद (चन्द्रविकासी कमल) कीच मे उत्पन्न होता है और जल मे वृद्धि पाता है, फिर भी पंक की रज से अथवा जल की रज (कण) से लिप्त नही होता, इसी प्रकार मेघकुमार कामो मे उत्पन्न हुआ और भोगो मे वृद्धि पाया है। फिर भी काम-रज से लिप्त नही हुआ, भोग-रज से लिप्त नही हुआ। हे देवानुप्रिय ! यह मेघकुमार ससार के भय से उद्विग्न हुआ है और जन्म-जरा-मरण से भयभीत हुआ है। अत देवानुप्रिय ! (आप) के समीप मुंडित होकर, गृह त्याग करके साधुत्व

की प्रव्रज्या अगीकार करना चाहता है। हम देवानुप्रिय को शिष्य-भिक्षा देते है। देवानुप्रिय ! आप शिष्यभिक्षा अगीकार कीजिए।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने मेघकुमार के माता-पिता द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर इस अर्थ (वात) को सम्यक् प्रकार से स्वीकार किया।

तत्पश्चात् मेघकुमार श्रमण भगवान् महावीर के पास से उत्तर-पूर्व अर्थात् ईशान कोण मे गया। जाकर स्वय ही आभूषण, माला, अलकार (वस्त्र) उतार डाले।

तत्पश्चात् मेघकुमार की माता ने हस के लक्षण वाले अर्थात् धवल और मृदुल वस्त्र मे आभूषण, माल्य और अलकार ग्रहण किए। ग्रहण करके जल की धारा, निगुन्डी के पुष्प और टूटे हुए मुक्तावली-हार के समान अश्रु टपकाती हुई, रोती-रोती, आक्रन्दन करती-करती और विलाप करती-करती इस प्रकार कहने लगी—

"हे लाल ! प्राप्त चारित्रयोग मे यतना करना। हे पुत्र ! अप्राप्त चारित्र-योग के लिए घटना करना—प्राप्त करने का प्रयत्न करना। हे पुत्र ! पराक्रम करना। सयम-साधना मे प्रमाद न करना। हमारे लिए भी यही मार्ग हो ! अर्थात् भविष्य मे हमे भी सयम अगीकार करने का सुयोग प्राप्त हो !"

इस प्रकार कहकर मेघकुमार के माता-पिता ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके जिस दिशा से आए थे, उसी दिशा मे लौट गए।

तत्पश्चात् मेघकुमार ने स्वय ही पंचमुष्टि लोच किया। लोच करके जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे वहा आया। आकर श्रमण भगवान् महावीर को दाहिनी ओर से आरम्भ करके प्रदक्षिणा की। फिर वन्दन-नमस्कार किया और कहा—

'भगवन् ! यह ससार जरा और मरण से (जरा-मरण रूप अग्नि से) आदीप्त है। भगवन् ! यह ससार प्रदीप्त है। भगवन् ! यह ससार आदीप्त-प्रदीप्त है। जैसे कोई गाथा-पति घर मे आग लग

जाने पर, उस घर मे जो अल्प भार वाली और बहुत मूल्य वाली वस्तु होती है, उसे ग्रहण करके स्वय एकान्त मे चला जाता है। वह सोचता है कि—अग्नि मे जलने से बचाया हुआ यह पदार्थ मेरे लिए आगे-पीछे हित के लिए, सुख के लिए, क्षमा (समर्थता) के लिए और भविष्य मे उपयोग के लिए होगा। इसी प्रकार मेरा भी यह एक आत्मारूपी भाड (वस्तु) है, जो मुझे इष्ट है, कान्त है, प्रिय है, मनोज्ञ है और अतिशय मनोहर है। इस आत्मा को मैं निकाल लू गा —जरा-मरण की अग्नि मे दग्ध होने से बचा लू गा, तो यह ससार का उच्छेद करने वाला होगा। अतएव मै चाहता हूँ कि देवानुप्रिय, (आप) स्वय ही मुझे प्रव्रजित करें—मुनिवेष प्रदान करे, स्वय ही मुझे मुण्डित करे, स्वय ही प्रतिलेखन आदि सिखावे, स्वय ही सूत्र और अर्थ प्रदान करके शिक्षा दें, स्वय ही ज्ञानादिक आचार, गोचरी, विनय, वैनयिक (विनय का फल), चरणसत्तरी, करणसत्तरी, सयमयात्रा और मात्रा (भोजन का परिमाण) आदि रूप धर्म का प्ररूपण करे।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने मेघकुमार को स्वय ही प्रव्रज्या प्रदान की और स्वय ही यावत् आचार-गोचर आदि धर्म की शिक्षा दी, यथा—हे देवानुप्रिय! इस प्रकार अर्थात् पृथ्वी पर युग प्रमाण दृष्टि रखकर चलना चाहिए, इस प्रकार अर्थात् निर्जीव भूमि पर खडा होना चाहिए, इस प्रकार भूमि का प्रमार्जन करके बैठना चाहिए, इस प्रकार सामायिक का उच्चारण करके, शरीर की प्रमार्जना करके शयन करना चाहिए, इस प्रकार अर्थात् वेदना आदि कारणो से निर्दोष आहार करना चाहिए, इस प्रकार अर्थात् हित, मित और मधुर भाषण करना चाहिए। इस प्रकार अप्रमत्त एव सावधान होकर प्राण (विकलेन्द्रिय), भूत (वनस्पतिकाय), जीव (पचेन्द्रिय) और सत्त्व (शेष एकेन्द्रिय) की रक्षा कर सयम का पालन करना चाहिए।

तत्पश्चात् मेघकुमार ने श्रमण भगवान् महावीर के निकट इस प्रकार का धर्मसबधी यह उपदेश सुनकर और हृदय में धारण करके सम्यक् प्रकार से उसे अंगीकार किया। वह भगवान् की आज्ञा के अनुसार गमन करता, उसी प्रकार बैठता, यावत् उठ-उठ कर अर्थात् प्रमाद और निद्रा का त्याग करके प्राणो, भूतो, जीवो और सत्त्वों की यतना करके सयम का आराधन करने लगा। (३७-३८)

विशेष बोध—मेघकुमार के माता-पिता अपने पुत्र को सप्रेम भेट करने जाते है। प्रथम उसके वैराग्य की परीक्षा की। परीक्षा मे वह सफलतापूर्वक उत्तीर्ण हुआ। तत्पश्चात् वे उसे प्रभु के श्री-चरणो मे ले गए।

साधु के लिए आहार बनाकर कोई सामने ले आवे तो साधु दूषित समझकर वह भिक्षा नही ग्रहण करते। मगर शिष्यभिक्षा के लिए यह बात नही। यदि कोई धर्मप्रिय भावुक ले आवे तो साधु उसे प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण कर लेते हैं।

धारिणी देवी का मेघकुमार ही एकमात्र पुत्र था। अभयकुमार आदि अनेक पुत्र श्रेणिक के थे किन्तु वे अन्य रानियो के अगजात थे। इसी कारण धारिणी ने कहा—मैं अपना इकलौता पुत्र आपको भेट करती हूँ।

'इसका नामश्रवण भी दुर्लभ है तो दर्शन की बात ही क्या ?' इस कथन का आशय संभवत· यही हो सकता है कि मेघ को अपने पुत्र के रूप मे—गृहस्थ-वेश मे देख नही सकू गी। क्योकि मुनि के रूप मे तो पुन. दर्शन होना अशक्य नही है।

जैसे कमल पक मे उत्पन्न होकर और जल मे अवस्थित होकर भी पक और जल से अलिप्त रहता है, उसी प्रकार मेघ भी काम और भोग मे लिप्त नही रहा। इस प्रकार कमल की उपमा जन्मजात वैरागी के लिए दी जाती है। गृहस्थ का घर काम-भोगो की स्थली है, फिर राजघराने का तो कहना ही क्या ! वहा उत्तम से उत्तम

णालं वाइय-पित्तिय-सिभिय-सन्निवाइयविविहे रोगायके उच्चावए गामकंटए वावीसं परीसहोवसग्गे उदिन्ने सम्मं अहियासित्तए ।

भुजाहि ताव जाया ! माणुस्सए कामभोगे, तओ पच्छा भुत्तभोगी समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइस्ससि ।

तए ण से मेहे कुमारे अम्मापिऊहिं एवं वुत्ते समाणे अम्मापियर एव वयासी—तहेव ण त अम्मयाओ ! जं ण तुब्भे मम एवं वयह—'एस णं जाया ! निग्गथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे० पुणरवि त चेव जाव तओ पच्छा भुत्तभोगी समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइस्ससि'—एव खलु अम्मयाओ ! निग्गथे पावयणे कीवाण कायराण कापुरिसाण इहलोगपडिबद्धाण परलोगनिप्पिवासाणं दुरणुयरे, पायप्रजणस्स नो चेव ण धीरस्स, निच्छियववसियस्स एत्थ किं दुक्करं करणयाए ? तं इच्छामि ण अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइत्तए । (३०)

मूलार्थ—तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता जब मेघकुमार को विषयो के अनुकूल आख्यापना (सामान्य रूप से प्रतिपादन करने वाली वाणी) से, प्रज्ञापना (विशेष रूप से प्रतिपादन करने वाली वाणी से) सज्ञापना (सबोधन करने वाली वाणी) से, विज्ञापना (अनुनय-विनय करने वाली वाणी) से, समझाने, बुझाने, सम्बोधन करने और अनुनय करने मे समर्थ न हुए, अर्थात् सफलमनोरथ न हो सके, तव संयम के प्रतिकूल तथा सयम के प्रति भय और उद्वेग उत्पन्न करने वाली प्रज्ञापना से इस प्रकार कहने लगे—

हे पुत्र ! यह निर्ग्रन्थप्रवचन सत्य (सत्पुरुषो के लिए हितकारी) है, अनुत्तर (सर्वोत्तम) है, कैवलिक (सर्वज्ञकथित अथवा अद्वितीय) है, प्रतिपूर्ण अर्थात् मोक्ष प्राप्त कराने वाले गुणो से परिपूर्ण है, नैयायक अर्थात् न्याययुक्त या मोक्ष की ओर ले जाता है, सशुद्ध अर्थात् सर्वथा निर्दोष है, शल्यकर्त्तन अर्थात् माया आदि शल्यो का विनाश करने वाला है, सिद्धि का मार्ग है, मुक्ति का मार्ग (पापो के नाश का उपाय) है, निर्याण (सिद्धि क्षेत्र) का मार्ग है, निर्वाण का मार्ग है और समस्त दु खो का पूर्णरूपेण नष्ट करने का मार्ग है।

जैसे सर्प अपने भक्ष्य को ग्रहण करने मे निश्चल दृष्टि रखता है, उसी प्रकार इस प्रवचन मे दृष्टि निश्चल रखनी पडती है। यह छुरा के समान एक धार वाला है, अर्थात् इसमे दूसरी धार के समान अपवाद रूप क्रियाओ का अभाव है। इस प्रवचन के अनुसार चलना लोहे के जौ चवाना है। यह रेत के कवल के समान स्वादहीन है—विषयसुख से रहित है। इसका पालन करना गगा नामक महानदी के पूर मे सामने तैरने के समान कठिन है। भुजाओ से महासमुद्र को पार करना है। तीखी तलवार पर आक्रमण करने के समान है। महाशिला—जैसे भारी वस्तुओ को सूत्र मे बाधने के समान है। तलवार की धार पर चलने के समान है।

हे पुत्र ! निर्ग्रन्थ श्रमणो को आधाकर्मी, औद्देशिक, क्रीतकृत (खरीद कर बनाया हुआ), स्थापित (साधु के लिए रख छोडा हुआ), रचित (मोदक आदि के चूर्ण को पुन साधु के लिए मोदक रूप मे तैयार किया हुआ), दुर्भिक्षभक्त (साधु के निमित्त दुर्भिक्ष के समय बनाया गया भोजन), कान्तारभक्त (साधु के लिए अरण्य मे बनाया भोजन), वर्दलिकाभक्त (वर्षा के समय उपाश्रय मे आकर बनाया भोजन), ग्लानभक्त (रुग्ण गृहस्थ नीरोग होने की कामना से दे, वह भोजन), आदि दूषित आहार ग्रहण करना नही कल्पता है।

इसी प्रकार मूल का भोजन, कन्द का भोजन, फल का भोजन, शालि आदि बीजो का भोजन और हरित का भोजन करना भी नही कल्पता है।

इसके अतिरिक्त, हे पुत्र! तू सुख भोगने योग्य है, दु ख सहने योग्य नही है। तू शीत को सहन करने मे समर्थ नही है। उष्ण को सहने मे समर्थ नही है। तू भूख नही सह सकता, प्यास नही सह सकता। वात पित्त कफ और सन्निपात के होने वाले विविध रोगो (कुष्ठ आदि) को तथा आतको (अचानक मरण उत्पन्न करने वाले शूल आदि) को, ऊ चे-नीचे इन्द्रिय-प्रतिकूल वचनो को, उत्पन्न हुए बाईस परीषहो और उपसर्गो को सम्यक् प्रकार सहन नही कर सकता। अतएव हे लाल! तू मनुष्यसम्बन्धी कामभोगो को भोग। बाद मे भुक्तभोगी होकर श्रमण भगवान् महावीर के निकट प्रव्रज्या अगीकार करना।

तब माता-पिता के इस प्रकार कहने पर मेघकुमार ने कहा—हे माता-पिता! आप मुझे जो यह कहती हैं, सो ठीक है कि—'हे पुत्र! यह निर्ग्रन्थप्रवचन सत्य है, सर्वोत्तम है, इत्यादि पूर्वकथन यहा दोहरा लेना चाहिए—यावत् बाद मे भुक्तभोगी होकर प्रव्रज्या अगीकार कर लेना— परन्तु हे माता-पिता! यह निर्ग्रन्थप्रवचन क्लीब— हीन सहनन वाले, कायर—चित्त की स्थिरता से रहित, कुत्सित, इस लोकसम्बधी विषयसुख की अभिलाषा करने वाले, परलोक के सुख की अभिलाषा न करने वाले सामान्य जन के लिए ही दुष्कर है। धीर एव दृढ-सकल्प पुरुष को इसका पालन करना कठिन नही है। अतएव हे माता-पिता! आपकी अनुमति पाकर मैं श्रमण भगवान् महावीर के समीप प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहता हूँ। (३०)

विशेष बोध—भोग और योग का विरोध त्रैकालिक है। इनका फल भी एक दूसरे से विरोधी है—

भोगी भमइ संसारे,
अभोगी नोवलिप्पई। —उत्तराध्ययन सूत्र,

विकारी और व्यसनी का ससार अर्थात् जन्म-मरण बढ़ता है, जब कि सयममय एव त्यागमय जीवन निर्मल बनता है। मेघ इस बात को समझ गया था। फिर वह भोगमय जीवन को कैसे अगीकार किये रहता ?

मेघ का मत बदलने के लिए उसके माता-पिता ने कोई कसर बाकी नही रक्खी। प्रज्ञापना, संज्ञापना, विज्ञापना आदि जो भी तरीके हो सकते थे, सभी काम मे लिए। मगर मेघकुमार ने उन सब का युक्तिपूर्वक निरसन कर दिया। वह किसी भी प्रलोभन के पाश मे नही फँसा।

निराश होकर माता-पिता ने सयम के प्रति भय उत्पन्न करने का प्रयत्न किया।

धर्मानुरागी भी जव इसप्रकार मोह-पाश मे फँसकर संयमपालन-जैसे विशुद्ध धर्मकार्य मे रोड़े अटकाते हैं, तव पानी मे आग लगी समझना चाहिए। किन्तु मोह की गति अति गहन है। वह विवेकवान् को भी अविवेकी बना देता है।

आजकल भी कई वैरागियो के सबधी जन उनको कष्ट दे-देकर दीक्षा से रोकने का प्रयत्न करते है। सब ऐसे नही होते, किन्तु ऐसे होते अवश्य है।

बिना सरक्षक की अनुमति प्राप्त किये दीक्षा न देना, यह जैन-परम्परा है। जो सुलभबोधि होते है, वे समय पर सरल भाव से अनुमति दे देते हैं, किंतु दुर्लभबोधि जब लड़ते-झगड़ते थक जाते है, तब विवश होकर आज्ञा देते हैं।

यह ठीक है कि गुरु का पद कुछ सामान्य नही है। उसके लिए गहरा अनुभव, शास्त्रार्थं का तलस्पर्शी ज्ञान और विशुद्ध चारित्र अपेक्षित है। जो अपनी साधना को निर्विघ्न रूप से चालू रखकर

दूसरे की साधना मे सहायक हो सके, वही गुरु पद का अधिकारी है। आज अधिकारी अनधिकारी का विचार नही किया जाता। फिर भी जब कोई मुमुक्षु सच्चे गुरु पद के अधिकारी साधक की शरण मे रह कर आत्मसाधना करना चाहता हो तो उसमें बाधक बनना उचित नही है।

श्रेणिक राजा और धारिणी रानी साधु के आचार से भलीभाति परिचित जान पड़ते है। इसी कारण वे कहते है—पुत्र ! निर्ग्रन्थ-प्रवचन सत्य है, सर्वोत्कृष्ट है, अद्वितीय है, प्रतिपूर्ण है, न्यायसगत है, सशुद्ध है, सब कुछ है, परन्तु उसका पालन करना बहुत कठिन है। मानो लोहे के चने चबाना है।

आधाकर्मी, औद्देशिक, क्रीतकृत, स्थापित, रचित, दुर्भिक्षभक्त, कान्तारभक्त, वर्दलिकाभक्त एव ग्लानभक्त साधु को लेना नही कल्पता।

इतनी सव जानकारी साधु के साथ समागम के बिना उस समय होना कठिन है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि श्रेणिक राजा साधु-सन्तो का भक्त था और उनकी सगति करता था। वह उत्सर्ग-अपवादनीति का ज्ञाता था।

श्रेणिक पहले जैनमार्ग का अनुयायी नही था। बौद्धधर्म पर उसकी आस्था थी। महारानी चेलना के सम्पर्क से उसने जैनधर्म को समझा और उसे अगीकार किया। फिर तो वह जैनधर्म का कट्टर अनुयायी हो गया।

हाँ, तो मेघकुमार के माता-पिता उसे भयभीत करने के लिए कहते हैं—क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण आदि परिषह बाईस है और समय-समय पर साधु को इन्हे सहन करना पडता है। इसके अतिरिक्त नाना प्रकार के उपसर्ग भी सहने पडते है। साधु के शरीर मे नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते है, तो उनकी पीडा भी समभाव से सहन करनी पडती है। हे पुत्र ! तू सुख में पला, सुख मे बढा,

सुख मे रहा और अब तक सुख मे जी रहा है। तूने कभी दु:ख की छाया भी नही देखी। तेरा मृदुल शरीर कष्टसाध्य साधुचर्या का निर्वाह किस प्रकार करेगा ?

मेघकुमार शान्ति के साथ माता-पिता के कथन को सुनता रहा। जब उनका कथन समाप्त हो गया तो बोला—आप स्वीकार करते हैं कि निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य, सर्वश्रेष्ठ, और मुक्ति-प्रापक है, फिर उस प्रवचन की आराधना करने से मुझे रोकते क्यो हैं ? श्रद्धाहीन और शक्तिहीन जनो के लिए ही वह दुरनुचर हो सकता है। कायर नर सयम का पालन नही कर सकते। सयम का आराधन करना आत्मा का मोहादि कर्म शत्रुओ के साथ सग्राम करना है। संग्राम के मैदान से हीजडे भागते है, वीर पुरुष नही।

सूरा चढ़ संग्राम मे, फिर पाछे मत जोय।
उतर पड़ो मैदान मे, होनी हो सो होय ॥

केशलुचन करना, भूख-प्यास सहन करना, वासनाओ का दमन करना, कषायो का उपशम करना, जगत् के समस्त प्राणियो पर आत्मीयता का भाव विकसित करना, इच्छाओ के वशीभूत न होना, तपश्चर्या करना आदि कठिन अवश्य है, मगर शूर वीर धीर पुरुष के लिए कठिन क्या है ? ज्ञानीजन मानव जीवन की सर्वश्रेष्ठ सफलता सयम पालन मे ही मानते है। सयम मे श्रद्धा और रुचि जागृत हो जाने पर ऐसी सुख-शाति की अनुभूति होती है, जो स्वर्ग के देवो को भी प्राप्त नही हो सकती। अतएव माता-पिता ! मुझे अनुमति प्रदान कीजिए। मैं श्रमण भगवान् महावीर के समीप प्रव्रज्या अगीकार करके संयम का पालन करना चाहता हूँ ॥ (३०)

राज्याभिषेक

मूलपाठ—तए ण त मेहं कुमार अम्मापियरो जाहे नो सचाइति बहूहिं विसयाणुलोमाहिं य विसयपडिकूलाहि य आघवणाहि य पन्नवणाहि य सन्नवणाहि य विन्नवणाहि य आघवित्तए वा, पन्नवित्तए वा, सन्नवित्तए वा, विन्नवित्तए वा, ताहे अकामए चेव मेह कुमारं एव वयासी—

इच्छामो ताव जाया! एगदिवसमवि ते रायसिरिं पासित्तए।

तए ण सेणिए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! मेहस्स-कुमारस्स महत्थ महग्घ महरिह विउलं रायाभिसेयं उवट्ठवेह।

तए ण ते कोडुंबियपुरिसा जाव तहेव उवट्ठवेन्ति।

तए ण सेणिए राया बहूहिं गणणायगदडणायगेहिं य जाव संपरिवुडे मेहकुमार अट्ठसएण सोवन्नियाण कलसाण, एव रुप्पमयाण कलसाण, सुवण्णरुप्पमयाण कलसाण, मणिमयाण कलसाणं, सुवण्णमणिमयाण कल-साणं, रुप्पमणिमयाण कलसाणं, सुवण्ण—रुप्प-मणिमयाण कलसाण, भोमेज्जाण कलसाण, सव्वोदएहि, सव्वमट्टियाहिं, सव्व-पुप्फेहिं, सव्वगंधेहिं, सव्वमल्लेहिं, सव्वोसहिहि य सिद्धत्थएहि य, सव्विड्ढोए सव्वज्जुईए सव्वबलेण जाव दुंदुभिनिग्घोसणादियरवेण महया महया रायाभिसेएण अभिसिंचइ, अभिसिंचित्ता करयल जाव कट्टु एवं वयासी—

जय जय णंदा ! जय जय भद्दा ! जय णंदा० ! भद्दं ते, अजियं जिणेहि, जियं पालयाहि, जियमज्झे वसाहि, अजिय जिणेहि सत्तुपक्खं, जिय च पालेहि मित्तपक्ख, जाव भरहो इव मणुयाणं रायगिहस्स नगरस्स अन्नेसिं च बहूणं गामागरनगर जाव संनिवेसाणं आहेवच्चं जाव विहराहि त्ति कट्टु जय-जयसद्द पउजति ।

तए णं से मेहे राया जाए महया जाव विहरइ । (३२)

तए णं तस्स मेहस्स रण्णो अम्मापियरो एवं वयासी—भंण जाया ! कि दलयामो ? किं पयच्छामो ! किं वा ते हियच्छिए सामत्थे (मंते) ?

तए णं से मेहे राया अम्मापियरो एवं वयासी—इच्छामि ण अम्मयाओ ! कुत्तियावणाओ रयहरणं पडिग्गहं च उवणेह, कासवयं च सद्दावेह ।

तए णं से सेणिए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ । सद्दावेत्ता एव वयासी—गच्छह ण तुब्भे देवाणुप्पिया ! सिरिघराओ तिन्नि सयसहस्साइं गहाय दोहि सयसहस्सेहिं कुत्तियावणाओ रयहरणं पडिग्गहगं च उवणेह, सयसहस्सेणं कासवयं सद्दावेह ।

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सेणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा सिरिघराओ तिन्नि सयसहस्साइ गहाय कुत्तियावणाओ दोहिं सयसहस्सेहिं रयहरणं पडिग्गहं च उवणेन्ति, सयसहस्सेणं कासवयं सद्दावेति ।

तए णं से कासवए तेहिं कोडुंबियपुरिसेहिं सद्दाविए समाणे हट्ठे जाव हियए ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउय-

मंगलपायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं वत्थाइं मगलाइ पवरपरिहिए अप्पमहग्घाभरणालकियसरीरे जेणेव सेणिए राया तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सेणियं राय करयलमंजलिं कट्टु एवं वयासी—सदिसह णं देवाणुप्पिया ! जं मए करणिज्ज।

तए ण से सेणिए राया कासवयं एव वयासी—गच्छाहि ण तुम देवाणुप्पिया ! सुरभिणा गधोदएण णिक्के हत्थपाए पक्खालेह। सेयाए चउप्फालाए पोत्तीए मुह बंधेत्ता मेहस्स कुमारस्स चउरंगुलवज्जे णिक्खमण-पाउग्गे अग्गकेसे कप्पेहि। (३२)

मूलार्थ—तत्पश्चात् जव माता-पिता मेघकुमार को विषयो के अनुकूल और विषयों के प्रतिकूल वहुत-सी आख्यापना, प्रज्ञापना, संज्ञापना और विज्ञापना से समझाने, बुझाने, संबोधन करने और विज्ञप्ति करने में समर्थ न हुए, तव इच्छा के विना भी मेघकुमार से इस प्रकार वोले—हे पुत्र ! हम एक दिन भी तुम्हारी राज्य-लक्ष्मी देखना चाहते है, अर्थात् हमारी इच्छा है कि तुम एक दिन के लिए भी राजा बन जाओ।

तत्पश्चात् मेघकुमार माता-पिता (की इच्छा) का अनुसरण करता हुआ मौन रह गया।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों (सेवकों) को बुलवाया और बुलवा कर कहा—हे देवानुप्रियो ! मेघकुमार का महान् अर्थ वाला, बहुमूल्य एवं महान् पुरुषों के योग्य राज्याभिषेक (के योग्य सामग्री) तैयार करो।

तत्पश्चात् कौटुम्बिक पुरुषो ने यावत् उसी प्रकार सब सामग्री तैयार की।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने बहुत-से गणनायको एव दण्डनायको आदि से परिवृत होकर मेघकुमार को एक सौ आठ सुवर्णकलशो से,

इसी प्रकार एक सौ आठ चादी के कलशो से, एक सौ आठ सुवर्ण-रजत के कलशो से, एक सौ आठ मणिमय कलशो से, एक सौ आठ सुवर्ण-मणि के कलशो से, एक सौ आठ रजत-मणि के कलशो से, एक सौ आठ सुवर्ण-रजत-मणि के कलशो से और एक सौ आठ मिट्टी के कलशो से, (कलशो मे भरे हुए) सव (तीर्थों के) जल से, सव प्रकार की मृत्तिका से, सव प्रकार के पुष्पो से, सव प्रकार के गंधो से, सव प्रकार की मालाओ से, सव प्रकार की औषधियो से तथा सरसो से उन्हे परिपूर्ण करके सर्व समृद्धि, द्युति तथा सर्व सैन्य के साथ, दुदुभि के निर्घोष की प्रतिध्वनि के शब्दो के साथ उच्चकोटि के राज्याभिषेक से अभिषिक्त किया। अभिषेक करके श्रेणिक राजा ने दोनो हाथ जोडकर यावत् इस प्रकार कहा—

हे नन्द ! तुम्हारी जय हो, जय हो। हे भद्र ! तुम्हारी जय हो, जय हो। हे जगनन्दन (जगत् को आनन्द देने वाले) तुम्हारा भद्र (कल्याण) हो। तुम न जीते हुए को जीतो और जीते हुए का पालन करो। जित-आचारवानो के मध्य मे निवास करो। नही जीते शत्रु-पक्ष को जीतो। जीते हुए मित्रपक्ष का पालन करो। यावत् मनुष्यो मे भरत चक्री की तरह राजगृह का तथा दूसरे वहुत-से ग्रामो, आकरो, नगरो यावत् सनिवेशो का आधिपत्य करते हुए यावत् विचरण करो।

इस प्रकार कहकर श्रेणिक राजा ने जय-जय शब्द किया।

तत्पश्चात् मेघ राजा हो गया और पर्वतो मे महाहिमवन्त की तरह शोभा पाता हुआ विचरने लगा।

तत्पश्चात् माता-पिता ने राजा मेघ से इस प्रकार कहा—हे पुत्र ! बताओ, तुम्हारे किस अनिष्ट को दूर करें अथवा तुम्हारे इष्ट जनो को क्या दें ? तुम्हे क्या दें ? तुम्हारे चित्त मे क्या चाह-विचार है ?

तव राजा मेघ ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—हे माता-पिता ! मैं चाहता हूँ कि कुत्रिकापण (जिसमे सव जगह की सव

वस्तुए मिलती हैं उस अलौकिक दुकान) से रजोहरण और पात्र मँगवा दो और काश्यप (नापित) को बुलवा दो।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने अपने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा – देवानुप्रियो ! तुम जाओ, श्रीगृह (भडार) से तीन लाख स्वर्ण मोहरे लेकर दो लाख देकर कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र ले आओ तथा एक लाख देकर नाई को बुला लाओ।

तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष राजा श्रेणिक के ऐसा कहने पर हृष्ट-तुष्ट होकर श्रीगृह से तीन लाख मोहरे लेकर कुत्रिकापण से दो लाख से रजोहरण और पात्र लाये और एक लाख से उन्होने नाई को बुलाया।

कौटुम्बिक पुरुषो द्वारा बुलाया गया वह नाई हृष्ट-तुष्ट यावत् आनन्दितहृदय हुआ। उसने स्नान किया, बलिकर्म (गृहदेवता का पूजन) किया, मषी-तिलक आदि कौतुक, दही-दूर्वा आदि मगल एव दु स्वप्न का निवारणरूप प्रायश्चित्त किया। साफ और राजसभा में प्रवेश करने योग्य मागलिक और श्रेष्ठ वस्त्र धारण किए। थोडे और बहुमूल्य आभूषणो से शरीर को विभूषित किया। फिर जहां श्रेणिक राजा था वहाँ आया। आकर दोनो हाथ जोड़कर श्रेणिक राजा से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय ! मुझे जो करना है, उसकी आज्ञा दीजिए।

तब श्रेणिक राजा ने नाई से इस प्रकार कहा - हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ और सुगधित गन्धोदक से अच्छी तरह हाथ-पैर धोओ। फिर चार तह वाले श्वेत वस्त्र से मु ह बाधकर मेघकुमार के बाल दीक्षा के योग्य चार अगुल छोडकर काट दो। (३१-३२)

विशेषबोध—सभवत माता पिता ने सोचा—मेघ ऐसे नही मानेगा। बडे प्रलोभन मे फसाने से उसके विचार मे परिवर्त्तन कदाचित् हो जाय ! सत्ता की भूख सबको होती है। एक बार राज्य प्राप्त कर लेने पर इसका वैराग्य भाग सकता है। ऐसा न हुआ तो उसे राजा के रूप मे देखने की हमारी इच्छा पूरी हो जाएगी।

इस प्रकार विचार कर उन्होंने कहा—एक दिन के लिए ही सही, हम तुझे मगधनरेश के रूप मे देखना चाहते हैं।

मेघकुमार माता-पिता की इस छोटी-सी माग को अस्वीकार न कर सका। उनके हृदय को अधिक और अनावश्यक आघात लगाना उसे अभीष्ट नही था। वह मौन रह गया।

मौनं स्वीकृति लक्षणम्।

इसके मौन को माता-पिता ने स्वीकृति समझ ली। तत्पश्चात् राज्याभिषेक की तैयारियां होने लगीं। राजा ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलवाकर सबको यथायोग्य आदेश दिए।

सोने, चांदी, मणि और मिट्टी के एक-एक सौ आठ कलश मगवाए गए। अनेक कूपो, सरोवरो, नदियों आदि का जल लाया गया। विविध लताओ, वृक्षो आदि के पुष्प मगवाए मालाए एव औषधियाँ लाई गई।

यहा आठ प्रकार के कलशो का और प्रत्येक की १०८ सख्या का उल्लेख किया गया है। भारतवर्ष मे १०८ की सख्या को विशेष मान्यता मिली है। घटों के आठ प्रकार का सम्बन्ध आठ कर्मो के विनाश के साथ जोडना असगत नहीं है। एक सौ आठ की सख्या पच परमेष्ठी के १०८ गुणो का प्रतीक समझी जा सकती है। अरिहन्त के १२, सिद्ध के ८, आचार्य के ३६, उपाध्याय के २४ और साधु के २७ गुण मिलकर १०८ होते है। माला की १०८ मणियां भी इसी हेतु समझी जाती हैं।

एक-एक कर्मशत्रु के उन्मूलन के लिए १०८ गुणो का जाप करना इस सख्या का फलितार्थ होना सभव है।

जो भी हो, सभी कलशो मे उत्तम जल भरा गया। धूमधाम के साथ अभिषेक कार्य सम्पन्न हुआ। पुत्र राजा बना।

विरक्ति और आसक्ति का अन्तर देखिए। मेघकुमार को इच्छा न करने पर अनायास ही राज्य की प्राप्ति हुई किन्तु उसे भी उन्होने

मन से उपादेय न समझा। उसके प्रति उनके चित्त मे लेशमात्र भी आसक्ति नही उत्पन्न हुई। और दूसरा इन्ही का भाई कूणिक था, जिसने राज्यलिप्सा के वशीभूत होकर अपने पिता श्रेणिक को भी कारागार मे ढकेल दिया। विरक्ति और आसक्ति के ये एक ही काल के और एक ही परिवार के दो दृष्टान्त नेत्र खोल देने वाले है।

हिमालय की उपमा तो अन्य राजाओ को भी दी गई है, मगर त्यागमय जीवन होने से मेघ के लिए बहुत फबती है।

मेघकुमार जब विधिवत् राजा बन गया तो माता-पिता बोले—पुत्र! कहो तुम्हारे किस अनिष्ट को दूर करें? तुम्हे क्या चाहिए?

यहा सहज ही प्रश्न हो सकता है कि जब मेघ स्वय राजा बन गया और राजा के समस्त अधिकार उसे प्राप्त हो गए तो उक्त मनुहार की क्या आवश्यकता थी? क्या वह अपने अधिकार का उपयोग नही कर सकता था!

समाधान यह है कि यहाँ मोह-दशा का वास्तविक चित्रण किया गया है। माता-पिता ने मोहावेश मे वही प्रकट किया है जो उनके दिल और दिमाग मे था।

मेघकुमार बुद्धिहीन नही था। चारो प्रकार की बुद्धि उसे प्राप्त थी। उसने भगवान् के उपदेश को हृदयगम किया था। उसकी विरक्ति गहरी और आन्तरिक थी। मोह-ममता उसके मानस से दूर हो चुकी थी। अतएव उसने उत्तर दिया—यह पद तो मैंने आपके सन्तोष के लिए स्वीकार किया है। मुझे तो सयम-जीवन अगीकार करने पर ही सन्तोष होगा। वही मेरा लक्ष्य है। अतएव उस जीवन मे उपयोगी ओघा और पात्र मेरे लिए मगवा दीजिए।

कुत्रिकापण की विशेषता पर विचार करना चाहिए। देवता उस दुकान के अधिष्ठाता होते है। तीनो लोको मे विद्यमान वस्तु वहा मिल सकती है। देवता क्षण भर मे ले आते हैं। ऐसा विवरण

कुत्रिकापण के विषय मे मिलता है ।[1] कौन इस दुकान का मालिक था और कौन किस उद्देश्य से इसे चलाता था, आदि बातो की जानकारी देने का कोई साधन उपलब्ध नही है ।

यहाँ प्रश्न किया जा सकता है कि राजा मेघ ने उपकरण के रूप मे ओघा और पात्र मगवाने के लिए तो कहा, मगर मुहपत्ती के लिए क्यो नही कहा ? क्या उस समय मुखवस्त्रिका साधु का आवश्यक उपकरण नही था ?

इसका उत्तर यह है कि जो वस्तु घर पर तैयार नही मिल सकती, उसी को दुकान से मगवाने की आवश्यकता होती है । मुखवस्त्रिका के लिए थोड़ा-सा श्वेत वस्त्र चाहिए । राजघराने मे उसका मिलना कोई कठिन नही था । इसी कारण साधु-अवस्था मे पहनने योग्य चोलपट्ट आदि भी वहां से नही मंगवाए गए हैं । ऐसी अति सामान्य वस्तुओ के लिए कुत्रिकापण की आवश्यकता नही थी ।

(३१-३२)

मूलपाठ—तए णं से कासवए सेणिएणं रण्णा एव वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ जाव हियए जाव पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता सुरभिणा गंधोदएणं हत्थपाए पक्खालेइ, पक्खालित्ता सुद्ध-वत्थेणं मुहं बधति, बंधित्ता परेणं जत्तेणं मेहस्स कुमारस्स चउरंगुलवज्जे निक्खमणपाउग्गे अग्गकेसे कप्पेइ ।

तए ण तस्स मेहस्स कुमारस्स माया महरिहेणं हस-लक्खणेणं पडसाडएण अग्गकेसे पडिच्छइ, पडिच्छित्ता सुरभिणा गधोदएण पक्खालेति, पक्खालित्ता सुरभिणा सरसेणं गोसीसचंदणेणं चच्चाओ दलयति, दलइत्ता सेयाए

---

१ देवताधिष्ठितत्त्वेन स्वर्ग-मर्त्य-पाताललक्षणभूत्रितयसभविवस्तुसम्पादक आपणो हट्ट कुत्रिकापण, तस्मात् .... —अभयदेव-टीका

पोत्तीए बंधेइ, बंधित्ता रयणसमुग्गयंसि पक्खिवइ, पक्खि-वित्ता मंजूसाए पक्खिवइ, पक्खिवित्ता हार-वारिधार-सिन्धु-वार-छिन्नमुत्तावलिपगासाइं अंसूइं विणिम्मुयमाणी विणि-म्मुयमाणी, रोयमाणी रोयमाणी, कंदमाणी कंदमाणी, विलव-माणी विलवमाणी एवं वयासी—एस णं अम्हं मेहस्स कुमारस्स अब्भुदएसु य उस्सवेसु य पसवेसु य तिहीसु य छणेसु य जन्नेसु य पव्वणीसु य अपच्छिमे दरिसणे भविस्सइ त्ति कट्टु उस्सीसामूले ठवेइ।

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो उत्तरा-वक्कमणं सीहासणं रयावेन्ति। मेहं कुमारं दोच्चंपि तच्चंपि सेय-पीएहिं कलसेहिं ण्हावेन्ति, ण्हावेत्ता पम्हलसुकुमालाए गंधकासाइयाए गायाइं लूहेन्ति, लूहित्ता सरसेणं गोसीस-चन्दणेणं गायाइं अणुलिंपंति, अणुलिंपित्ता नासानीसासवाय-वोज्झं जाव हंसलक्खणं पडसाडगं नियंसेन्ति, नियंसेत्ता हारं पिणद्धंति, पिणद्धित्ता अद्धहारं पिणद्धंति, पिणद्धित्ता एगावलिं मुत्तावलिं कणगावलिं रयणावलिं पालंबं पायपलंबं कडगाइं तुडिगाइं केऊराइं अंगयाइं दसमुद्दियाणंतयं कडि-सुत्तयं कुंडलाइं चूडामणिं रयणुक्कडं मउडं पिणद्धंति, पिणद्धित्ता दिव्वं सुमणदामं पिणद्धंति, पिणद्धित्ता दद्दर-मलयसुगंधिए गंधे पिणद्धंति।

तए णं तं मेहं कुमारं गंठिम-वेढिम-पूरिम-संघाइमेणं चउव्विहेणं मल्लेणं कप्परुक्खगं पिव अलंकियविभूसियं करेन्ति। (३३)

तए णं से सेणिए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया!

अणेगखंभसयसन्निविट्ठं लीलट्ठियसालभंजियागं ईहामिग-उसभ-तुरग-नर-मगर-विहग-वालग-किन्नर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलय-भत्तिचित्तं घंटावलिमहुरमणहरसरं सुभकंतदरिसणिज्जं निउणोचियमिसिमिसंतमणिरयणघंटिया-जालपरिक्खित्तं खभुग्गयवइरवेइया-परिगयाभिरामं विज्जा-हरजमलजंतजुत्तं पिव अच्चीसहस्समालणीयं रूवगसहस्स-कलियं भिसमाणं भिब्भिसमाणं चक्खुलोयणलेस्सं सुहफासं सस्सिरीयरूवं सिग्घं तुरियं चवलं वेइयं पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं उवट्ठवेह।

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा हट्ठतुट्ठा जाव उवट्ठवेन्ति। तए णं से मेहे कुमारे सीयं दुरूहइ, दुरूहित्ता सीहासण-वरगए पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने।

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स माया ण्हाया कयबलि-कम्मा जाव अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा सीयं दुरूहइ, दुरूहित्ता मेहस्स कुमारस्स दाहिणे पासे भद्दासणंसि निसीयति।

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अंबधाई रयहरणं पडि-ग्गहं च गहाय सीयं दुरूहित्ता मेहस्स कुमारस्स वामे पासे भद्दासणंसि निसीयति।

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स पिट्ठओ एगा वरतरुणी सिंगारागारचारुवेसा संगयगय-हसिय-भणिय-चेट्ठिय-विलास-संलावुल्लाव-निउणजुत्तोवयारकुसला आमेलग-जमल-जुयल-वट्टिय-अब्भुन्नय-पीण-रइय-संठियपओहरा. हिम-रयय-कुन्देन्दु-पगासं सकोरंटमल्लदामधवलं आयवत्तं गहाय सलीलं ओहारे-माणी ओहारेमाणी चिट्ठइ।

लावन्नसुन्ननिच्छायगयसिरीया पसिढिलभूसणपडतखुम्मिय-सचुन्नियधवलवलयपब्भट्ठउत्तरिज्जा सूमालविकिन्नकेसहत्था मुच्छावसणट्ठचेयगरुई परसुनियत्तव्व चपगलया निव्वत्त-महिमव्व इदलट्ठी विमुक्कसधिबधणा कोट्टिमतलसि सव्वगेहिं धसत्ति पडिया ।

तए ण सा धारिणी देवी ससभमतुरियं कचणभिगार-मुहविणिग्गयसीयलजलविमलधाराए परिसिंचमाणा निव्वा-वियगायलट्ठी उक्खेवणतालविंट - वीयणगजणियवाएण सफुसिएण अतेउरपरिजणेणं आसासिया समाणी मुत्तावलि-सन्निगासपवडतअसुधाराहिं सिंचमाणी पओहरे कलुण-विमणदीना रोयमाणी कंदमाणी तिप्पमाणी सोयमाणी विलवमाणी मेह कुमारं एवं वयासी । (२७)

मूलार्थ—तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर के पास से मेघकुमार ने धर्म श्रवण करके और उसे हृदय मे धारण करके, हर्षित और सन्तुष्ट होकर भगवान् महावीर को तीन वार दाहिनी ओर से आरम्भ करके प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ, उसे सर्वोत्तम स्वीकार करता हूँ। मैं उस पर प्रतीति करता हूँ। मुझे निर्ग्रन्थ-प्रवचन रुचता है, अर्थात् जिन शासन के अनुसार आचरण करने की मैं अभिलाषा करता हूँ। भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन को अगीकार करना चाहता हूँ। भगवन् ! यह ऐसा ही है (जैसा आप कहते हैं।) यह उसी प्रकार का है, अर्थात् सत्य है। भगवन् ! मैने इसकी इच्छा की है, पुन पुन इच्छा की है। भगवन् ! यह इच्छित और पुन पुन इच्छित है। यह वैसा ही है जैसा आप फरमाते है। विशेष बात यह

है कि, हे देवानुप्रिय ! मैं अपने माता-पिता की आज्ञा ले लूं, तत्पश्चात् मुण्डित होकर दीक्षा ग्रहण करूंगा।

तत्पश्चात् मेघकुमार ने श्रमण भगवान् महावीर का वन्दन किया, अर्थात् उनकी स्तुति की और नमस्कार किया। स्तवन-नमस्कार करके जहाँ चार घण्टा वाला अश्वरथ था, वहाँ आया। आकर चार घंटा वाले अश्वरथ पर आरूढ हुआ। आरूढ होकर महान् सुभटो और विपुल समूह वाले परिवार के साथ राजगृह के बीचो बीच होकर जहाँ अपना भवन था, वहाँ आया। आकर चार घंटा वाले अश्वरथ से उतरा। उतर कर जहा उसके माता-पिता थे, वहा पहुचा। पहुच कर माता-पिता के पैरों मे प्रणाम किया। प्रणाम करके इस प्रकार कहा हे माता-पिता ! मैंने श्रमण भगवान् महावीर के समीप धर्म श्रवण किया है और मैंने उस धर्म की इच्छा की है, बार-बार इच्छा की है। वह मुझे रुचा है।

तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता इस प्रकार बोले—पुत्र ! तुम धन्य हो। पुत्र तुम पूरे पुण्यवान् हो। हे पुत्र ! तुम कृतार्थ हो कि तुमने श्रमण भगवान् महावीर के निकट धर्मश्रवण किया है और वह धर्म भी तुम्हे इष्ट, पुन पुन इष्ट और रुचिकर हुआ है।

तत्पश्चात् वह मेघकुमार माता-पिता से दूसरी बार और तीसरी बार इस प्रकार कहने लगा—हे माता-पिता ! मैंने श्रमण भगवान् महावीर से धर्म श्रवण किया है। उस धर्म की मैंने इच्छा की है। बार-बार इच्छा की है। वह मुझे रुचिकर हुआ है। अतएव हे माता-पिता ! मैं आपकी अनुमति पाकर श्रमण भगवान् महावीर के समीप मुण्डित होकर, गृहवास त्यागकर अनगारिता की प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ।

तत्पश्चात् धारिणीदेवी उस अनिष्ट, अप्रिय, अमनोज्ञ (अप्रशस्त) और अमनाम (मन को न रुचने वाली), पहले कभी न सुनी हुई कठोर वाणी को सुनकर और हृदय मे धारण करके, इस प्रकार मन

ही मन में रहे हुए महान् पुत्रवियोग के दु.ख से पीडित हुई। उसके रोमकूपो मे पसीना आने से अगो से पसीना झरने लगा। शोक की अधिकता से उसके अग कापने लगे। वह निस्तेज हो गई। दीन और विमनस्क हो गई। हथेली से मली हुई कमल की माला के समान हो गई। 'मैं प्रव्रज्या अगीकार करना चाहता हूँ' यह शब्द सुनने के क्षण मे ही वह दु खी और दुर्बल हो गई। वह लावण्यरहित हो गई, कान्तिहीन हो गई, श्रीविहीन हो गई। शरीर दुर्बल होने से उसके पहने हुए अलकार अत्यन्त ढ़ीले हो गए। हाथो मे पहने हुए उत्तम वलय खिसक कर भूमि पर जा पडे और चूर-चूर हो गए। उसका उत्तरीय वस्त्र खिसक गया। सुकुमार केशपाश बिखर गया। मूर्च्छा के वश होने से चित्त नष्ट होने के कारण शरीर भारी हो गया। परशु से काटी हुई चम्पकलता के समान तथा महोत्सव सम्पन्न हो जाने के पश्चात् इन्द्रध्वज के समान (शोभाहीन) प्रतीत होने लगी। उसके शरीर के जोड ढीले पड़ गए। ऐसी वह धारिणी देवी सर्व अगो से धस्—धड़ाम से पृथ्वीतल (फर्श) पर गिर पडी।

तत्पश्चात् वह धारिणी देवी सभ्रम के साथ शीघ्रता से स्वर्ण-कलश के मुख से निकली हुई शीतल जल की निर्मल धारा से सिंचित की गई। अतएव उसका शरीर शीतल हो गया। उत्क्षेपक (एक प्रकार के बास के पखे) तथा बीजनक (जिसकी डडी अन्दर से पकड़ी जाय, ऐसे बास के पखे) से उत्पन्न हुए तथा जलकणो से युक्त वायु से अन्त-पुर के परिजनो द्वारा उसे आश्वासन दिया गया। तब धारिणी देवी मोतियो की लडी के समान अश्रुधारा से अपने स्तनो को सीचने-भिगोने लगी। वह दयनीय, विमनस्क और दीन हो गई। वह रुदन करती हुई, क्रन्दन करती हुई, पसीना एव लार टपकाती हुई, हृदय मे शोक करती हुई और विलाप करती हुई मेघकुमार से इस प्रकार कहने लगी।(२८)

विशेष बोध—मेघकुमार वीतराग प्रभु की वाणी सुनकर अपूर्व आनन्द का अनुभव करने लगा। उसकी अन्तरात्मा दिव्य ज्योति से झलमला उठी। पर्युपासना के पश्चात् उसने प्रभु के समक्ष जो निवेदन किया, वह उसके हृदय की ध्वनि थी। हृदय सत्य-भगवान् का घर है। उस घर का द्वार बन्द करके बोलना ही झूठ है। सन्तों का हृदय सदा और सबके लिए खुला रहता है। इसी कारण मेघ का चित्त अनायास ही भगवान की ओर आकृष्ट हो गया।

मेघ ने कहा—प्रभो ! मैं माता-पिता की आज्ञा प्राप्त करके संयम ग्रहण करूंगा।

अधिकृत जनो की आज्ञा प्राप्त किये विना कोई व्यवहार शुद्ध नही कहलाता और साधना भी शुद्ध नही होती। आज्ञा मे आशीर्वाद की खुशबू रहे, तभी साधना मे मधुर फलो का प्रादुर्भाव होता है।

भगवान् ने मेघकुमार को उत्तर मे कहा—अहा—सुह····।

सामान्य आत्मा लोभी हो सकता है किन्तु महात्मा लोभी नहीं होते। परमात्मा के निकट तो लोभ फटक भी नहीं सकता। इसी कारण प्रभु ने उत्तर दिया—जैसे सुख हो वैसा करो। अभिप्राय यह है कि यदि सयम मे सुख समझा है, उसमे रुचि उत्पन्न हुई है तो, सयम ग्रहण कर सकते हो।

सच्चा सुख संयम मे ही है, असयम मे नही। असयम में जो सुख प्रतीत होता है वह सुखाभास है। विषयवासनाओ के उदयकाल में सुखाभास रहता है। विलासमय जीवन का सुख भविष्य मे दुःख के रूप मे परिणत हो जाता है।

मेघकुमार ने जिन-देशना श्रवण करके ससार के स्वरूप को यथार्थ रूप से समझ लिया है, इस कारण उन्हे संयम मे ही सुख जान पड रहा है। भगवान् से यही उन्होंने निवेदन किया है।

यथाविधि वन्दना-नमस्कार करके मेघ जिस मार्ग से गए थे,

उसी मार्ग से लौटे और माता-पिता के भवन में पहुँचे। माता-पिता के चरणों मे प्रणिपात करके बोले आज मैंने श्रमण भगवान् महावीर का उपदेश सुना और वह मुझे अति प्रिय लगा है। रुचिकर हुआ है। इच्छा होती है कि बार-बार वह उपदेश सुनूँ।

मेघकुमार की आत्मा शुद्ध उपादाम है। उसे प्रभुवाणी का श्रवणरूप निमित्त मिला। उपादान शुद्ध होने पर निमित्त कथचित् अशुद्ध हो, तो भी लाभप्रद हो जाता है। जैसे—गजसुकुमार की आत्मा शुद्ध उपादान होने से सोमिल विप्र—जैसा अशुद्ध निमित्त मिलने पर भी वह कार्यसाधक हो गया, गजसुकुमार को सिद्धि प्राप्त हो गई।

उपादान अशुद्ध हो और निमित्त भी अशुद्ध मिल जाय तो अनर्थ हो जाता है। श्रेणिक अन्तिम समय मे अपने पुत्र कोणिक का निमित्त पाकर नरक का अतिथि बना।

उपादान अशुद्ध हो और उसे शुभ निमित्त मिले तो भी कोई लाभ नही होता। गोशाला को भी वीतराग भगवान् की सगति मिली थी, फिर भी वह जीवन पर्यन्त उन्मार्गी रहा।

उपादान शुद्ध होने पर भी निमित्त कारण मिले बिना फल की उत्पत्ति नही होती। अवन्ध्या विधवा पुत्र को जन्म देने की योग्यता, होने पर भी निमित्त के अभाव मे पुत्र का प्रसव नही कर सकती।

कुमार मेघ की बात सुनकर माता-पिता अतीव आनन्दित हुए, क्योंकि वे स्वयं धर्मात्मा थे। भगवान् महावीर के भक्त थे। धर्मात्मा को धर्म प्रिय लगता है और अधर्मी को अधर्म ही सुहाता है। दोनो अपने स्वभाव मे दृढ होते हैं। अनादि काल से ऐसा होता आ रहा है और अनन्त काल तक यही क्रम चालू रहेगा।

माता-पिता जब मेघ के धर्मश्रवण की सराहना कर चुके तो उसने कहा मैं आपकी अनुमति लेकर सयम अगीकार करना चाहता हूँ।

वास्तविक वैराग्य उत्पन्न होने पर सासारिक वन्धनो के धागे टूटने लगते है। मोह-माया के जाल मे सच्चा वैराग्य उलझता नही। वह ससार-सम्वन्ध से दूर-दूर हटता जाता है।

मोह की लीला देखो! धारिणी देवी एक क्षण पहले पुत्र के धर्मश्रवण की वात सुनकर धन्य-धन्य कह रही थी, किन्तु पुत्र ने जव सयम ग्रहण करने की आज्ञा मागी तो उनको इतना गहरा आघात लगा कि अपने को सभाल न सकी। पुत्र की ममता के समक्ष धर्म, जो पहले उपादेय लग रहा था, हेय-सा प्रतीत होने लगा। वास्तव मे मोह विवेक का प्रवल शत्रु है। जहाँ मोह का प्रसार होता है वहाँ विवेक को स्थान नही रहता।

यही कारण है कि मेघकुमार की संयम ग्रहण करने की इच्छा ज्ञात होते ही पुत्रवियोग की कल्पना से वह सहसा मूर्च्छित हो गई। पसीने से सारा शरीर तर हो गया। कितना कोमल हृदय!

शिथिल और अचेत तन मे जव फिर से मूर्च्छा आई तो आंसू वहाने लगी। दीनतापूर्वक क्रन्दन करने लगी। आकुल-व्याकुल हो गई। आसुओ से कंचुकी भीग गई। दुःख से छाती भर गई। पुत्र के सन्मुख देखती हुई माता धारिणी ने पुत्र से जो कुछ कहा, उसे सूत्रकार ने आगे बतलाया है। (२८)।

मूलपाठ—तुम सि णं जाया! अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कंते पिये मणुन्ने मणामे थेज्जे वेसासिए सम्मुए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे रयणे रयणभूए जीवियउस्सासए हिययाणंदजणणे उंबरपुप्फ व दुल्लभे सवणयाए, किमंग पुण पासणयाए? णो खलु जाया! अम्हे इच्छामो खणमवि विप्पओगं सहित्तए। तं भुंजाहि ताव जाया! विपुले माणुस्सए कामभोगे जाव ताव वयं जीवामो। तओ पच्छा अम्हेहिं कालगएहिं परिणयवए वड्ढियकुल-वंसतंतुकज्जमि निरा-

वयक्खे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडिए भवित्ता-आगाराओ अणगारियं पव्वइस्ससि ।

तए णं से मेहे कुमारे अम्मापिऊहिं एवं वुत्ते समाणे अम्मापियरं एवं वयासी—

तहेव णं तं अम्मयाओ ! जहेवं णं तुम्हे ममं एवं वदह-'तुमंसि णं जाया ! अम्हं एगे पुत्ते, तं चेव जाव निरावयक्खे समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइस्ससि'—एवं खलु अम्मयाओ ! माणुस्सए भवे अधुवे अणियए असासए वसणसउवद्दवाभिभूते विज्जुलयाचंचले अणिच्चे जलबुब्बुय-समाणे कुसग्गजल-बिंदुसन्निभे संझब्भरागसरिसे सुविण-दंसणोवमे सडणपडणविद्धंसणधम्मे पच्छा पुरं च णं अवस्स-विप्पजहणिज्जे । से के णं जाणइ अम्मयाओ ! के पुव्विं गमणाए ? के पच्छा गमणाए ? तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइत्तए ।

तए णं तं मेहं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—

इमाओ ते जाया ! सरिसियाओ सरिसत्तयाओ सरि-सव्वयाओ सरिसलावन्नरूवजोव्वणगुणोववेयाओ सरि-सेहिंतो रायकुलेहिंतो आणियल्लियाओ भारियाओ । तं भुंजाहि णं जाया ! एताहिं सद्धिं विपुले माणुस्सए काम-भोगे । तओ पच्छा भुत्तभोगे समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव पव्वइस्ससि ।

तए णं से मेहे कुमारे अम्मापियरं एवं वयासी—तहेव णं अम्मयाओ ! जं णं तुब्भे ममं एवं वयह—'इमाओ ते जाया ! सरिसियाओ जाव समणस्स भगवओ महावीरस्स

पव्वइस्ससि'—एव खलु अम्मयाओ ! माणुस्सगा कामभोगा असुई असासया वतासवा पित्तासवा खेलासवा सुक्कासवा सोणियासवा दुरुस्सासनीसासा दुरूवमुत्तपुरीसपूय-बहुपडि-पुन्ना उच्चारपासवणखेलजल्लसिघाणगवतपित्तसुक्क-सोणितसभवा अध्रुवा अणियया असासया सडणपडणविद्धं-सणधम्मा पच्छा पुर च णं अवस्सविप्पजहणिज्जा । से के णं अम्मयाओ ! जाणति के पुव्विं गमणाए ? के पच्छा गम-णाए ? त इच्छामि ण अम्मयाओ ! जाव पव्वइत्तए ।

तए ण त मेहं कुमार अम्मापियरो एव वयासी—

इमे ते जाया ! अज्जय-पज्जय-पिउपज्जयागए सुबहु हिरण्ण य, सुवण्णे य, कंसे य, दूसे य, मणिमोत्तिए य, संख-सिल-प्पवाल-रत्त-रयण-सतसारसावतिज्जे य अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवसाओ पगामं दाउ, पगामं भोत्तुं, पगाम परिभाएउं, त अणुहोहि ताव जाव जाया ! विपुलं माणुस्सग इड्ढिसक्कारसमुदय, तओ पच्छा अणुभूयकल्लाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पव्वइस्ससि ।

तए णं से मेहे कुमारे अम्मापियरं एवं वयासी—

तहेव णं अम्मयाओ ! जं ण तं वदह—'इमे ते जाया ! अज्जग-पज्जग- पिउपज्जगागए जाव तओ पच्छा अणुभू-यकल्लाणे पव्वइस्ससि'—एवं खलु अम्मयाओ ! हिरण्णे य सुवण्णे य जाव सावतेज्जे अग्गिसाहिए चोरसाहिए राय-साहिए दाइयसाहिए मच्चुसाहिए, अग्गिसामन्ने जाव मच्चुसामन्ने, सडणपडणविद्धंसणधम्मे पच्छा पुरं च ण अवस्सविप्पजहणिज्जे । से के णं जाणइ अम्मयाओ ! के जाव गमणाए ? तं इच्छामि ण जाव पव्वइत्तए । (२६)

मूलार्थ—हे पुत्र ! तू हमारा इकलौता बेटा है। तू हमे इष्ट है, कान्त है, प्रिय है, मनोज्ञ है, मणाम है तथा धैर्य और विश्वास का स्थान है। कार्य करने मे सम्मत है, बहुत कार्यों मे बहुत माना हुआ है और कार्य करने के पश्चात् भी अनुमत है। आभूषणो की पेटी के समान है। मनुष्य जाति मे उत्तम होने के कारण रत्न है, रत्नरूप है। जीवन के उच्छ्वास के समान है। हमारे हृदय मे आनन्द उत्पन्न करने वाला है। गूलर के फूल के समान तेरा नामश्रवण भी दुर्लभ है तो फिर दर्शन की तो बात ही क्या है !

हे पुत्र ! हम क्षण भर के लिए भी तेरा वियोग नही सहन करना चाहते। अतएव हे पुत्र ! जब तक हम जीवित है तब तक मनुष्य-सम्बन्धी विपुल कामभोगो को भोगो। जब हम कालगत हो जाए, और तू परिपक्व उम्र का हो जाय—तेरी युवावस्था पूर्ण हो जाय, जब सासारिक कार्यों की अपेक्षा न रहे, उस समय तू श्रमण भगवान् महावीर के पास मुण्डित होकर, गृहस्थी का त्याग करके प्रव्रज्या अंगीकार कर लेना।

तत्पश्चात्—माता-पिता के द्वारा इस प्रकार कहने पर मेघकुमार ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—

हे माता-पिता ! आप मुझसे यह जो कहते हैं कि—हे पुत्र ! तू हमारा इकलौता पुत्र है, इत्यादि सब पूर्ववत् कह लेना चाहिए, यावत् सासारिक कार्यो से निरपेक्ष होकर श्रमण भगवान् महावीर के समीप प्रव्रजित होना, सो ठीक है, परन्तु माता-पिता ! यह मनुष्यभव ध्रुव नही है, अर्थात् सूर्योदय के समान नियत समय पर पुन पुन प्राप्त होने वाला नही है, नियत नही है, अर्थात् इस जीवन मे उलट-फेर होते रहते है; आशाश्वत है अर्थात् क्षणविनश्वर है, सैकडो सकटो एवं उपद्रवो से व्याप्त है, बिजली की चमक के समान चचल है, अनित्य है, जल के बुलबुले के समान है, दूब की नोक पर लटकने वाले जलबिन्दु के समान है, सन्ध्यासमय के बादलो के सदृश है,

स्वप्नदर्शन के समान है—अभी है और अभी नही है, कुष्ठ आदि से सडने, तलवार आदि से कटने और क्षीण होने के स्वभाव वाला है तथा आगे या पीछे अवश्य ही त्याग करने योग्य है। हे माता-पिता! कौन जानता है कि पहले कौन जाएगा (मरेगा) और कौन पीछे जाएगा? अतएव हे माता-पिता! मैं आपकी आज्ञा प्राप्त करके श्रमण भगवान् महावीर के निकट यावत् प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ।

तत्पश्चात् माता-पिता ने मेघकुमार से इस प्रकार कहा—

हे पुत्र! ये तुम्हारी भार्याएं समान शरीर वाली, समान त्वचा वाली, समान वय वाली, समान लावण्य, रूप, यौवन और गुणों से युक्त हैं तथा समान राजकुलो से लाई हुई है। अतएव हे पुत्र! इनके साथ विपुल मनुष्यसम्बन्धी भोग भोगो। तदनन्तर भुक्तभोगी होकर श्रमण भगवान् महावीर के समीप यावत् दीक्षा लेना।

तब मेघकुमार ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—हे माता-पिता! आप मुझे यह जो कहते हैं कि—'हे पुत्र, तेरी ये भार्याएं समान शरीर वाली हैं, इत्यादि, यावत् इनके साथ भोग भोगकर (बाद मे) श्रमण भगवान् महावीर के समीप दीक्षा ले लेना', सो ठीक है, किन्तु हे माता-पिता! मनुष्यो के यह कामभोग अर्थात् कामभोग के आधारभूत मनुष्यो के ये शरीर अशुचि हैं, अशाश्वत है, वमन को झराने वाले, पित्त को झराने वाले, कफ को झराने वाले, शुक्र को झराने वाले तथा शोणित को झराने वाले हैं, गदे उच्छ्वास-निश्वास वाले हैं, खराब मूत्र मल और पीव से परिपूर्ण हैं। मल, मूत्र, कफ, नासिकामल, वमन, पित्त, शुक्र और शोणित से उत्पन्न होने वाले हैं। ये ध्रुव नही, नियत नही, शाश्वत नही हैं। सडने, पडने और विध्वस्त होने के स्वभाव वाले हैं और पहले या पीछे अवश्य ही त्याग करने योग्य हैं। हे माता-पिता! कौन जानता है कि पहले कौन

जाएगा और पीछे कौन जाएगा ? अतएव हे माता-पिता ! मैं अभी दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ ।

तत्पश्चात् माता-पिता ने मेघकुमार से इस प्रकार कहा – हे पुत्र ! तुम्हारे पितामह, पिता के पितामह और पिता के प्रपितामह से आया हुआ यह बहुत-सा हिरण्य, स्वर्ण, कासा, दूष्य, मणि, मोती, शख, सिला, मूगा, लाल रत्न आदि सारभूत द्रव्य विद्यमान है। यह इतना है कि सात पीढियो तक भी समाप्त न हो। इसका तुम खूब दान करो, स्वय भोग करो और बटबारा करो। हे पुत्र ! यह जितना मनुष्य-सम्बन्धी ऋद्धि-सत्कार का समुदाय है, उतना सब तुम भोगो। उसके बाद अनुभूत कल्याण होकर तुम श्रमण भगवान् महावीर के समीप दीक्षा ग्रहण कर लेना।

तब मेघकुमार ने माता-पिता से कहा—हे माता-पिता ! आप जो कहते हैं सो ठीक है कि—'हे पुत्र ! दादा, पडदादा और पिता के पडदादा से आया हुआ यावत् उत्तम द्रव्य है, इसे भोगो और फिर अनुभूतकल्याण होकर दीक्षा ले लेना, परन्तु हे माता-पिता ! यह हिरण्य, सुवर्ण यावत् स्वापतेय (द्रव्य) सब अग्निसाध्य है—इसे आग भस्म कर सकती है, चोर चुरा सकता है, राजा अपहरण कर सकता है, हिस्सेदार बँटवारा करा सकता है और मृत्यु आने पर वह अपना नही रहता है। इसी प्रकार यह द्रव्य अग्नि के लिए समान है, अर्थात् द्रव्य जैसे उसके स्वामी का है उसी प्रकार अग्नि का भी है और इसी तरह चोर, राजा, भागीदार और मृत्यु के लिए भी सामान्य है। यह सडने, पडने और विध्वस्त होने के स्वभाव वाला है। (मरण के) पश्चात् या पहले अवश्य त्याग करने योग्य है। हे माता-पिता ! किसे ज्ञात है कि पहले कौन जाएगा और पीछे कौन जाएगा ? अतएव मैं यावत् दीक्षा अगीकार करना चाहता हूँ ॥ (२९)

विशेष बोध—माता-पिता और पुत्र का यह सवाद वस्तुतः राग

पुत्र का मन प्रभु की ओर आकृष्ट हो चुका था। धर्म मे लीन हो गया था। जिनवाणी ने उसकी दृष्टि जागृत कर दी थी। अतएव माता-पिता का अनुरोध और अनुनय उसके सकल्प को बदल न सका। उसने जो टेक पकड ली थी, वह नही छूटी। उसने ससार और शरीर की अनित्यता प्रतिपादित करते हुए यही उत्तर दिया - मैं आपकी आज्ञा प्राप्त कर अभी सयम ग्रहण करना चाहता हूँ।

माता ने कहा—तेरे समानशील वाली ये आठ सुन्दरियां हैं। इनकी ओर देख। इनका जीवन तेरे ऊपर निर्भर है।

पुत्र ने उत्तर दिया—यह नश्वर देह कितना अशुद्ध है। यह अशुचि का अक्षय भडार है। ससार मे इससे अधिक अशुचि और क्या है? सारी गन्दगी इसी से पैदा होती है। इसके मल-द्वार निरन्तर प्रवाहित रहते हैं। यह बात आपसे छिपी नही है। फिर इस शरीर का भरोसा क्या? कभी भी नष्ट हो सकता है। कौन कब मरण-शरण हो जाय, कोई ठिकाना नही।

माता-पिता के पास प्रलोभन के जितने तीर थे, सभी चलाकर उन्होंने देख लिए। कहा—बेटा! तुम्हारे पूर्वजो द्वारा सगृहीत धन का यह अक्षय भडार भरा है। इस भडार के तुम स्वामी हो। इसका भोग करो, दान करो, इससे परोपकार करो। धन के लिए दुनिया दौड़ी-दौडी फिरती है और तुम इसे ठुकराना चाहते हो, यह कौन-सी बुद्धिमत्ता है?

मगर मेघकुमार को धन का प्रलोभन भी आकर्षित नही कर सका। उसने कहा—आप सत्य कहते हैं, किन्तु इस धन के प्रथम तो भागीदार बहुत होते हैं, फिर चोर, अग्नि, पानी आदि अनेक विनाश-हेतु अलग हैं। इससे आत्मा का कोई प्रयोजन सिद्ध नही होता। ऋषि लालचन्द जी कहते हैं—

दमडी के काज वाज दुनिया भी दौडी दौड़ी,
मोड़ी मोड़ी रोटी खावै आछी लागै दमड़ी।

देश से प्रदेश जाय द्रव्य को कमाय लाय,
दौलत न दावे दबै औड घू सा फावडी।
दौलत मे सात सीर धरती अगन नीर,
देवता कुटुम्ब चोर राजा चीरे चामडी।
ऋषि लालचन्द कहै दौलत ने धूल गिनै,
दया दान दम वासे छूटे राड चूंदडी ॥१॥

सभव है मेघकुमार के उल्लिखित वचनो के आधार पर ही लालचन्द जी महाराज ने अपने काव्य का निर्माण किया हो। दोनों जगह भाव एक-सा है।

लक्ष्मी के तीन मार्ग है—दान भोगो नाश। इनमे से श्रेष्ठ मार्ग सुपात्रदान है। जो दान कर दिया जाता है वह व्यर्थ नही जाता। कवि कहता है—

दीन को दीजिए होत दयावन्त,
मित्र को दीजिए प्रीत बढावे।
सेवक को दिए काम करे बहु,
याचक को दिए कीरति गावे।
शत्रु को दीजिए वैर रहै नहिं,
शायर को दिए आदर पावे।
साधु को दीजिए मुक्ति मिले,
पिण हाथ दियो न अकारथ जावे।

निस्सन्देह लक्ष्मी का उपार्जन दान देने से सार्थक होता है किन्तु जो महापुरुष अपने जीवन मे निस्पृह भावना का विकास करके लक्ष्मी का सर्वथा त्याग कर देते हैं और जगत् के अन्यान्य पदार्थों को भी पर-द्रव्य समझ कर ठुकरा देते है, जो अकिंचन होकर ममता पर विजय प्राप्त करते हैं, वे ही पूर्णरूपेण आत्मकल्याण के भागी होते है। मेघकुमार ने धन-दौलत—सबधी ममत्व का त्याग करके सयम ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की। यह उसकी उत्कृष्ट भावना है।

और वैराग का सवाद है। जीव की परिणतियां कितनी विचित्र होती हैं और उन परिणतियो के कारण विचार की दिशाएं कितनी विभिन्न हो जाती है, यह समझने के लिए यह संवाद बहुत सहायक है।

मोह कामभोगो के पक मे फसाना चाहता है, वैराग्य उससे दूर भागने की प्रेरणा देता है।

माता-पिता एक के बाद दूसरे प्रलोभन का जाल फैलाते हैं मगर मेघकुमार उन सब को छिन्न-भिन्न करता जाता है। भगवान् महावीर की देशना ने उसकी दृष्टि बदल दी है। उसकी विचारधारा ने एक नयी ही दिशा पकड़ ली है। उसका वस्तुस्वरूप को समझने का ढग बाहरी नही रहा, भीतरी हो गया है। उसकी दृष्टि मर्म तक पहुंचने लगी है। वह यथार्थवादी दृष्टिकोण को अपना कर अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित कर रहा है।

माता-पिता ने कहा—पुत्र! तुम हमारे नयनो का तारा है, जीवन का एक मात्र सहारा है, तू हमारा कलेजा है। तू ही हमारा सब कुछ है। रत्न है, रत्न के समान है।

'रत्न' का अर्थ, साधारण जन हीरा मोती समझते हैं। किन्तु इसका वास्तविक अर्थ है—उत्तम। जो वस्तु अपनी जाति मे उत्कृष्ट होती है, वह उसमे 'रत्न' कहलाती है। श्रेष्ठतम नारी को नारीरत्न एवं श्रेष्ठतम पुरुष को पुरुषरत्न कहा जाता है। भारत मे श्रेष्ठतम समझे जाने वाले को भारत सरकार 'भारतरत्न' की उपाधि से विभूषित करती है।

अगर इस अर्थ को बराबर ध्यान मे रक्खा जाय तो अनेक स्थलो पर आने वाले रत्नो के कथन से भ्रान्ति न हो।

मेघकुमार को उसके माता ने इसी अर्थ मे रत्न कहा है। इसका अर्थ यह नही कि वह कोई निर्जीव पदार्थ है। मानवजाति में श्रेष्ठ

होने के कारण वह रत्न है और पुत्रो मे उत्तम होने से वह पुत्र-रत्न है।

मेघकुमार को उदुम्बर-पुष्प की भी उपमा दी गई है। ऊमर का वृक्ष प्रसिद्ध है। अजीर के फल जैसे उसके फल लगते है। किन्तु कहा जाता है कि उसके फूल होते ही नही। इस वृक्ष मे फल बहुत होते है और प्रायः सदा लगे रहते है। सभी ऋतुओ मे पुराने फल पकते और गिरते रहते है और नये-नये पैदा होते रहते है। सभवत. इसी कारण ऊमर वृक्ष के सदा सूतक माना जाता है। सार यह कि फलो की बहुतायत होने पर भी फूलो का दिखाई न देना, इस वृक्ष की विशेषता है। इसी विशेषता के कारण मेघकुमार को गूलर के पुष्प की उपमा दी गई है, जिसका दृष्टिगोचर होना कठिन होता है।

मेघकुमार की माता कहती है—बेटा! हमारे जीवित रहते सयम नही अगीकार करना। हम तुझे एक क्षण भर के लिए भी अलग नहीं होने देना चाहते।

ज्ञानियो का कथन है कि जब तक जरा घेरा न डाले, व्याधि न सतावे, इन्द्रिया क्षीण न हो, शरीर सशक्त और सुदृढ हो, तब तक धर्माराधना करलो।[1] बुढापे मे क्या बन पाएगा?

किन्तु मोहग्रस्त माता-पिता इससे उलटा ही कहते हैं—तू अभी दीक्षित न हो, भोग-विलास करते-करते जब तेरा शरीर थक जाय, इन्द्रिया बेकाम हो जाए और जीवन मे जब सन्ध्या फूट पड़े, तब धर्माचरण करना।

---

१ जरा जाव न पीडेइ, वाही जाव न वड्ढइ।
जाविन्दिया न हायन्ति, ताव धम्मं समायरे।

—दशवै० अ० ८

वह कहता है—माता ! तन चचल, मन चचल, धन चचल, भवन चंचल, यहा तक कि जीवन भी चचल है। फिर किसके भरोसे यह गृहवास वसाया जाय ! ससार मे सारभूत तो सयम ही है। यह जीवन का सर्वोत्तम लाभ है। अतएव मुझे अनुमति दीजिए। मैं त्रिलोकीनाथ की शरण मे जाकर साधना करूंगा ।। (२६)

मूलपाठ—तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो जाहे नो सचाएइ मेहं कुमारं वहूहि विसयाणुलोमाहिं आघवणाहि य पन्नवणाहि य सन्नवणाहि य विन्नवणाहि य आघवित्तए वा, पन्नवित्तए वा सन्नवित्तए वा, विन्नवित्तए वा ताहे विसयपडिकूलाहिं संजमभउव्वेयकारियाहिं पन्नवणाहिं पन्नवेमाणा एवं वयासी—

एस णं णिग्गथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवलिए पडिपुण्णे णेयाउए संसुद्धे सल्लगत्तणे सिद्धिमग्गे मुत्तिमग्गे णिज्जाणमग्गे निव्वाणमग्गे सव्वदुक्ख-प्पहीणमग्गे, अहीव एगंतदिट्ठिए, खुरो इव एगंत-धाराए, लोहमया इव जवा चावेयव्वा, वालुयाकवले इव निरस्साए, गंगा इव महाणई पडिसोयगमणाए, महासमुद्दो इव भुयाहिं दुत्तरे, तिक्खं चंकमियव्वं, गरुअं, लबेयव्वं, असिधारव्व संचरियव्वं।

णो य खलु कप्पइ जाया ! समणाणं णिग्गंथाणं आहाकम्मिए वा, उद्देसिए वा, कीयगडे वा, ठवियए वा, रइयए वा, दुब्भिक्खभत्ते वा, कंतारभत्तेवा, बद्दलिया भत्ते वा, गिलाणभत्ते वा, मूलभोयणे वा, कंदभोयणे वा, फलभोयणे वा, बीयभोयणे वा, हरियभोयणे वा, भोत्तए वा पायए वा।

तुमं च णं जाया ! सुहसमुचिए, णो चेव णं दुहसमुचिए, णालं सीयं, णालं उण्हं, णालं खुहं, णालं पिवासं,

संस्कृत भाषा के कवि ने ज्ञान का अनुपम महात्म्य प्रकट करते हुए कहा है—

न ज्ञानतुल्य किल कामकुम्भो,
न ज्ञानतुल्या किल कामधेनुः ।
न ज्ञानतुल्य किल कल्पवृक्षो,
ज्ञानेन चिन्तामणिरप्यतुल्य ॥

ज्ञान का यह महत्व समझकर मेघकुमार के माता-पिता ने उसे ज्ञानार्जन के लिए कलाचार्य को सौपा ।

प्रस्तुत प्रकरण से भासित होता है कि उस युग के कलाचार्य नौकरी नही करते थे और न उस समय पढाई का शुल्क ही लिया जाता था । मगर कलाचार्य या शिक्षक का समाज मे बडा सम्मान था । उसकी आर्थिक आवश्यकताएँ समाज पूर्ण करता था । मेघ कुमार के माता-पिता ने कलाचार्य का खूब सन्मान किया । जीविका-हेतु इतना धन दिया कि वह जीवन-पर्यन्त अपना निर्वाह निश्चिन्त होकर कर सके । राजा का यह दान 'प्रीतिदान' कहा गया है ।

प्रीतिदान मे जो गौरव और आदर्श निहित है वह 'वेतन' में कहाँ ? वेतन मे मजदूरी का भाव निहित है । एक ओर ज्ञानदान है तो दूसरी ओर प्रीतिदान है ! कितना भव्य आदर्श है ! आज इस आदर्श को समझने की आवश्यकता है ।

मेघकुमार ने ७२ कलाए सीखी । उनको तोतारटन्त की तरह नही, अपितु मूलपाठ के अर्थ से भी सीखा और फिर प्रयोग (प्रेक्टिस) से भी । जो विद्या प्रयोग के साथ सीखी जाती है वह विशद रूप मे परिणत होती है और जीवन का अग बन जाती है । इन कलाओं मे जीवनोपयोगी सभी बातो का समावेश हो जाता है ।

७२ कलाएँ सीखने मे कितना काल लगा, यह नही बतलाया गया, फिर भी जान पडता है कि उनकी शिक्षा मे कई वर्ष व्यतीत

हुए होगे। आठ वर्ष की उम्र होने पर शिक्षा प्रारम्भ हुई और नवाग के जागृत होने तक वह चलती रही।

दो कान, दो नयन, दो नासिकाएं, जीभ, त्वचा एव मन, ये नौ अंग यहाँ विवक्षित हैं।[1] ये अग वाल्यकाल मे सुप्त-से रहते हैं। यौवनावस्था का प्रारम्भ होते ही उसी प्रकार जागृत हो जाते हैं जैसे पुगी वजाने से नागराज अपने फन को फुफकार मारता हुआ ऊपर उठाता है। मेघकुमार के ये सव अग सचेतन हो गए।

श्रेणिक ने अपनी भावी पुत्रवधुओं के लिए आठ भवन वनवाए और उन भवनो के मध्य मे मेघकुमार के लिए एक अतिविशाल एव मनोहर भवन वनवाया। इन भवनो की वनावट इतनी भव्य थी कि आजका ताजमहल, दिल्ली का लाल किला एव वम्वई की मरिन लाइन की इमारते भी उनके सामने तुच्छ-सी प्रतीत होती हैं। मेघ-कुमार के इन नौ भवनो का वर्णन पढ़ने से लगता है कि वे आज की इन इमारतो से कई गुणा सुन्दर रहे होगे। मगर आज उनके खण्डहर भी कही दृष्टिगोचर नही होते! यह कालचक्र का प्रभाव है! फिर भी इस वर्णन से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि उस काल मे भवन-निर्माणकला अत्यन्त उन्नत अवस्था मे थी।

अनुभव वतलाता है कि पूर्वापेक्षया बाद के भवनो मे सुविधाए अधिकाधिक वढती जाती हैं, किन्तु मजबूती और वैभव, जो प्राचीन इमारतो मे था, वह आज नही। आज के भवन अपेक्षाकृत कमजोर होते है। (२३)

मूलपाठ—तए ण तस्स मेहकुमारस्स अम्मापियरो मेहं कुमारं सोहणसि तिहि-करण-णक्खत्त-मुहुत्तसि सरिसियाणं

---

१ "नवागानि—द्वे द्वे श्रोत्रे नयने नासिके जिह्वैका त्वगेका मनश्चैक, सुप्तानीव सुप्तानि—वाल्यादव्यक्तचेतनानि, प्रतिवोधितानि—यौवनेन व्यक्त-चेतनावन्ति कृतानि यस्य स.।"

—अभयदेवटीका

सरिसव्वयाण सरिसत्तयाणं सरिसलावण्णरूवजोव्वणगुणोव-वेयाण सरिसएहिन्तो रायकुलेहिन्तो आणिअल्लियाण पसाहणट्ठ गविहवबहुओवयणमगलसुजंपियाहिं अट्ठहि रायवर-कण्णाहिं सद्धि एगदिवसेण पाणि गिण्हाविमु।

तए ण तस्स मेहस्स अम्मापियरो इम एयारूव पीइदाणं दलयइ—अट्ठ हिरण्णकोडीओ, अट्ठ सुवण्णकोडीओ, गाहाणु-सारेण भाणियव्व जाव पेसणकारियाओ। अन्न च विपुल धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-सख-सिल-प्पवाल-रत्तरयण-सतसारसावतेज्ज, अलाहि जाव आसत्तमाओ कुलवसाओ पकामं दाउं, पकामं भोत्तुं, पकाम परिभाएउं।

तए णं से कुमारे एगमेगाए भारियाए एगमेग हिरण्ण-कोडिं दलयति, एगमेग सुवन्नकोडिं दलयति, जाव एगमेगं पेसणकारिं दलयति, अन्न च विपुलं धणकणग० जाव परिभाएउ दलयति।

तए ण से मेहे कुमारे उप्पिं पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइगमत्थएहिं वरतरुणिसपउत्तेहिं वत्तीसइबद्धएहिं नाडएहिं उवगिज्जमाणे उवगिज्जमाणे उवलालिज्जमाणे उवलालिज्ज-माणे सद्द-फरिस-रूव-गधविउले माणुस्सए काममोगे पच्चणु-भवमाणे विहरति। (२४)

मूलार्थ—तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता ने मेघकुमार का शुभ तिथि, करण, नक्षत्र और मुहूर्त्त मे, शरीरपरिमाण से सदृश, समान उम्र वाली, समान त्वचा (कान्ति) वाली, समान लावण्य वाली समान रूप (आकृति) वाली, समान यौवन और गुणो वाली तथा अपने कुल के समान राजकुलो से लाई हुई आठ श्रेष्ठ राजकन्याओ के साथ एक ही दिन, एक ही साथ, आठो अगो मे अलकार धारण

करने वाली सुहागिन स्त्रियो द्वारा किए हुए मगलगान एव दधि अक्षत आदि मागलिक पदार्थो के प्रयोग द्वारा पाणिग्रहण करवाया ।

तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता ने इस प्रकार प्रीतिदान दिया— आठ करोड हिरण्य (चादी), आठ करोड सुवर्ण आदि गाथानुसार समझ लेना चाहिए । यावत् आठ-आठ प्रेक्षणकारिणी (नाटक करने वाली) अथवा पेषणकारिणी (पीसने वाली) तथा और भी विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, शख, मूगा, रक्तरत्न (लाल) आदि उत्तम सारभूत द्रव्य दिया, जो सात पीढी दान देने के लिए, भोगने के लिए, उपयोग करने के लिए और बटवारा करके देने के लिए पर्याप्त था ।

तत्पश्चात् उस मेघकुमार ने प्रत्येक पत्नी को एक-एक करोड हिरण्य दिया, एक-एक करोड़ स्वर्ण दिया, यावत् एक-एक प्रेक्षणकारिणी या पेपणकारिणी दी । इसके अतिरिक्त अन्य विपुल धन, कनक आदि दिया । जो यावत् दान देने, भोगोपभोग करने और बँटवारा करने के लिए सात पीढियो तक पर्याप्त था ।

तत्पश्चात् मेघकुमार श्रेष्ठ प्रासाद के ऊपर रहा हुआ, मानो मृदगो के मुख फूट रहे हो, इस प्रकार उत्तम स्त्रियो द्वारा किए हुए वत्तीस वद्ध नाटको द्वारा गायन किया जाता हुआ तथा क्रीडा करता हुआ, मनोज्ञ शव्द, स्पर्श, रस, रूप और गध की विपुलता वाले मनुष्य-सवधी कामभोगो को भोगता हुआ रहने लगा । (२४)

विशेष बोध—मेघकुमार युवावस्था मे पहुचे । शारीरिक सामर्थ्य जव विकसित हो गया तो आठ राजकन्याओ के साथ उनका विवाह कर दिया गया ।

सूत्र के अगले उल्लेख से जान पडता है कि ये कन्याएं विभिन्न स्थानो से लाकर एकत्र की गई थी । मेघकुमार को उनसे विवाह करने के लिए आठ स्थानो पर दूल्हा वनकर नही जाना पड़ा । अन्य

कथानक भी इस तथ्य को प्रमाणित करते है कि उस समय कन्या वर के यहाँ लाई जाती थी। अरिष्टनेमि इस नियम के अपवाद थे।

मेघकुमार का सम्बन्ध जिन कन्याओ के साथ हुआ, वे सदृश राज कुलो से लाई गई थी। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि सदृश कुलो मे विवाह सम्बन्ध होने से पति-पत्नी के संस्कारो मे समानता की अधिक सभावना रहती है और इससे दाम्पत्यजीवन सुख-शान्तिमय व्यतीत होता है। सस्कारो मे जहाँ विरूपता होती है वहाँ गृहस्थ-जीवन मे मतभेद उत्पन्न होते हैं और कालान्तर मे वे कलह का रूप धारण कर लेते हैं। ऐसी स्थिति मे अन्य कोई भी सुख-सामग्री सुख-शान्ति नही प्रदान कर सकती। राजा श्रेणिक ने मेघकुमार के लिए कन्याओ का चुनाव करते समय इस तथ्य को ध्यान मे रक्खा है।

वे कन्याए समान वय एव समान रूप-लावण्य आदि से अलकृत थी। उनके शरीर की ऊ चाई भी मेघकुमार के शरीर की ऊ चाई के वरावर थी। उनमे मधुरभाषित्व आदि अनेक गुण विद्यमान थे।[1]

वहुपत्नीप्रथा उस समय प्रचलित थी। भारत मे ही नही, अन्य देशो मे भी प्राचीनकाल मे यह प्रथा थी। मगर भ० ऋषभदेव से पूर्व युगलिककाल मे यह प्रथा नही थी। उस समय एक पुरुप और एक स्त्री का ही युगल होता था। सभव है प्रारम्भ मे स्त्रियो की सख्या पुरुषो की सख्या से अधिक होने के कारण इस प्रथा को अपनाना पडा हो और फिर यह रिवाज बन गया हो और फिर अनेक पत्नियो का होना प्रतिष्ठा की कसौटी माना जाने लगा हो। जो भी

---

१ सदृशोना—शरीरप्रमाणतो मेघकुमारापेक्षया परस्परतो वा, सदृग्-वयसा—समानकालकृतावस्थाविशेषाणाम्, सदृक्त्वचा—सदृशच्छवीना, सदृशलावण्यरूपयौवनगुणैरुपेताना, तत्र लावण्य मनोज्ञता, रूपम् आकृति, यौवन युवता, गुणा प्रियभाषित्वादय।

—अभयदेव-टीका

हो, बीच मे तो एक लाख ९२ हजार पत्नियो के होने का भी उल्लेख मिलता है।[1]

चक्रवर्त्ती का एक लाख ९२ हजार रानियो का परिवार होता है! उसमे एक सबसे बड़ी रानी होती है जो श्रीदेवी कहलाती है। श्रीदेवी सन्तान प्रसव नही करती। वह सदा युवती-सी रहती है।

वासुदेव की १६ हजार रानियाँ होती है। शेप ३२ या ८ के साथ विवाह करने वाले सामान्य हैं।

श्रेणिक ने पत्रवधुओ के निमित्त मेघकुमार को प्रीतिदान दिया। वह प्रीतिदान मेघकुमार ने अपनी सब पत्नियो को वरावर-बराबर वाँट दिया। इस प्रीतिदान मे एक-एक स्वर्णकोटि, एक-एक हिरण्य कोटि के साथ गृहस्थी के योग्य सभी सामान था, यहाँ तक कि एक-एक पिसनहारी भी थी। यह उनकी स्वाधीनतापूर्वक सुख-सुविधा के लिए था। भवन उनके पृथक्-पृथक् बन ही चुके थे।

मेघकुमार भोगी भवरा वन गया। मगर यौवन की वह आधी थोडे समय की ही थी।

यौवनकाल जीवन का सर्वोत्तम समय है। बाल्यावस्था मे मस्ती एव निश्चिन्तता होती है तो युवावस्था मे उन्माद होता है। उन्माद की इस अवस्था मे मनुष्य कभी ऐसी भूले भी कर बैठता है जिनका स्मरण करके वृद्धावस्था मे उसे पश्चात्ताप करना पडता है। किन्तु मेघकुमार इसका अपवाद था। वह ऐसे सस्कारो से सम्पन्न था कि समय रहते सावधान हो गया। यौवन का रग उस पर चढा अवश्य, परन्तु वह दीर्घकाल स्थायी नही वन सका। (२४)

---

१ एक लाख ने बाणु हजारो,
ज्यारे राण्यो रो परिवारो जी ॥

मूलपाठ—ते ण कालेणं ते णं समएण समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगाम दूइज्जमाणे सुहं-सुहेण विहरमाणे जेणामेव रायगिहे नगरे गुणसिलए चेइए जाव विहरति ।

तए ण से रायगिहे नयरे सिंघाडग० महया बहुजणसद्दे ति वा जाव बहवे उग्गा भोगा जाव रायगिहस्स नगरस्स मज्झमज्झेणं एगदिसिं एगाभिमुहा निग्गच्छति ।

इम च णं मेहे कुमारे उप्पि पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइगमत्थएहिं जाव माणुस्सए कामभोगे भु जमाणे रायमग्ग च आलोएमाणे आलोएमाणे एव च णं विहरति ।

तए ण से मेहे कुमारे ते बहवे उग्गे भोगे जाव एगदिसाभिमुहे पासति, पासित्ता कचुइज्जपुरिस सद्दावेति, सद्दावित्ता एव वयासी—किं ण भो देवाणुप्पिया ! अज्ज रायगिहे नगरे इदमहेति वा, खदमहेति वा, एव रुद्द-सिव-वेसमण-नाग-जक्ख-भूय-नई - तलाय - रुक्ख - चेतिय—पव्वय उज्जाण-गिरिजत्ताई वा ? जओ णं बहवे उग्गा भोगा जाव एगदिसिं एगाभिमुहा णिग्गच्छति ?

तए ण से कचुइज्जपुरिसे समणस्स भगवओ महावीरस्स गहियागमणपवित्तीए मेह कुमार एव वयासी—नो खलु देवाणुप्पिया ! अज्ज रायगिहे नगरे इदमहेति वा जाव गिरिजत्ताओ वा, ज ण एए उग्गा जाव एगदिसिं एगाभिमुहा निग्गच्छंति, एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगवं महावीरे आइगरे तित्थयरे इहमागते, इह सपत्ते, इह समोसढे इह चेव रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए महापडि० जाव विहरति । [२५]

मूलार्थ—उस काल और उस समय मे श्रमण भगवान् महावीर अनुक्रम से चलते हुए, गांव से दूसरे गाव जाते हुए सुखे-सुखे विहार करते हुए, जहा राज गृह नगर था और जहा गुणसिलक नामक चैत्य था, यावत् वही आकर ठहरते है।

तत्पश्चात् राजगृह नगर मे शृगाटक-सिघाड़े के आकार के मार्ग आदि मे बहुत लोगो का शोर होने लगा। यावत् बहुतेरे उग्र कुल के, भोग कुल के, इत्यादि सभी लोग यावत् राजगृह नगर के मध्य भाग मे होकर एक ही दिशा मे, एक ही ओर मुख करके निकलने लगे।

उस समय मेघकुमार अपने प्रासाद पर था। मानो मृदगो का मुख फूट रहा हो, इस प्रकार गायन किया जा रहा था अर्थात् गाने-बजाने में मस्त था। यावत् मनुष्यसबधी कामभोग भोग रहा था और राजमार्ग का अवलोकन करता-करता विचर रहा था।

तत्पश्चात् वह मेघकुमार उन बहुतेरे उग्रकुलीन भोगकुलीन यावत् लोगो को एक ही दिशा मे मुख किये जाते देखता है। देखकर कचुकी पुरुप को बुलाता है और बुलाकर इस प्रकार कहता है—हे देवानुप्रिय! क्या आज राजगृह नगर मे इन्द्रमहोत्सव है? स्कद (कार्त्तिकेय का महोत्सव है? या रुद्र, शिव, वैश्रमण (कुवेर), नाग, यक्ष, भूत, नदी, तड़ाग, वृक्ष, चैत्य, पर्वत, उद्यान या गिरि की यात्रा है? जिससे बहुत-से उग्रकुल तथा भोग कुल आदि के सब लोग एक ही दिशा मे और एक ही ओर मुख करके निकल रहे हैं।

तव उस कचुकी पुरुष ने श्रमण भगवान महावीर स्वामी के आगमन का वृत्तान्त जानकर मेघकुमार को इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिय! आज राजगृह नगर मे इन्द्रमहोत्सव यावत् गिरि-यात्रा आदि नही है कि जिसके निमित्त यह उग्रकुल के, भोगकुल के तथा अन्य सब लोग एक ही दिशा मे एकाभिमुख होकर जा रहे

है। परन्तु देवानुप्रिय! श्रमण भगवान् महावीर धर्मतीर्थ की आदि करने वाले, तीर्थ की स्थापना करने वाले यहाँ आए है, पधार चुके हैं, समवसृत हुए हैं और इसी राजगृह नगर मे, गुणशील चैत्य मे यथायोग्य अवग्रह की याचना करके यावत् विचर रहे है। (२५)

मूलपाठ–तए ण से मेहे कचुइज्जपुरिसस्स अतिए एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठे कोडुवियपुरिसे सद्दावेति, सद्दावित्ता एव वयासी–

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! चाउग्घट आसरह जुत्तामेव उवट्ठवेह।

तहत्ति उवणेन्ति।

तए ण से मेहे ण्हाए जाव सव्वालकारविभूसिए चाउग्घट आसरह दुरूढे समाणे सकोरटमल्लदामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण महया भडचडगरविंदपरियालसपरिवुडे रायगिहस्स नगरस्स मज्झमज्झेण निग्गच्छति, निग्गच्छित्ता जेणामेव गुणसिलए चेइए तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स छत्तातिछत्त पडागातिपडाग विज्जाहर-चारणे जभए य देवे ओवयमाणे उप्पयमाणे पासति, पासित्ता चाउग्घटाओ आसरहाओ पच्चोरुहति, पच्चोरुहित्ता समण भगव महावीर पचविहेण अभिगमण अभिगच्छति, तजहा–

१ सचित्ताण दव्वाण विउसरणयाए
२. अचित्ताण दव्वाणं अविउसरणयाए
३ एगसाडिय–उत्तरासगकरणेण
४ चक्खुप्फासे अजलिपग्गहेण
५ मणसो एगत्तीकरणेण।

जेणामेव समणे भगवं महावीरे तेणामेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता समणं भगव महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिण करेति, करित्ता वंदइ, णमसइ, वंदित्ता णमंसित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स णच्चासन्ने णाइदूरे सुस्सूसमाणे नमंसमाणे अंजलियउडे अभिमुहे विणएणं पज्जुवासइ।

तए ण समणे भगवं महावीरे मेहकुमारस्स तीसे य महतिमहालियाए परिसाए मज्झगए विचित्तं धम्ममाइक्खइ जहा जीवा वज्झति, मुच्चति जहा य सकिलिस्सति।

धम्मकहा भाणियव्वा जाव परिसा पडिगया। [२६]

मूलार्थ—तत्पश्चात् मेघकुमार कचुकी पुरुष से यह बात सुनकर एव हृदय मे धारण करके हृष्ट-तुष्ट होता हुआ कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाता है और बुलाकर इस प्रकार कहता है—हे देवानुप्रिय ! शीघ्र ही चार घटाओ वाले अश्व-रथ को जोत कर उपस्थित करो।

वे कौटुम्बिक पुरुष 'बहुत अच्छा' कहकर रथ उपस्थित करते है!

तत्पश्चात् स्नात (जो स्नान कर चुका है) और सर्व अलकारो से विभूषित मेघकुमार चार घटा वाले अश्व-रथ पर आरूढ हुआ। उसने कोरट वृक्ष के फूलो की माला वाले छत्र को धारण किया। सुभटो के विपुल समूह वाले परिवार से घिरा हुआ, वह राजगृह नगर के बीचोबीच होकर निकला। निकल कर जहाँ गुणशील नामक चैत्य था, वहा आया। आकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के छत्र पर छत्र और पताकाओ पर पताका आदि अतिशयो को देखा तथा विद्याधरो, चारण मुनियो और जृ भक देवो को नीचे उतरते एव ऊपर उड़ते देखा। यह सब देखकर वह चार घटा वाले अश्व-रथ से नीचे उतरा। उतर कर पाँच प्रकार के अभिगम करके श्रमण

भगवान् महावीर के सन्मुख चला। वे पाच अभिगम इस प्रकार है—

(१) पुष्प, पान आदि सचित्त वस्तुओ का त्याग
(२) वस्त्र-आभूषण आदि अचित्त वस्तुओ का अत्याग
(३) एक शाटिका (दुपट्टे) का उत्तरासग
(४) भगवान् पर दृष्टि पड़ते ही दोनो हाथ जोड़ना
(५) मन को एकाग्र करना।

यह अभिगम करके जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे, वहाँ आया। आकर श्रमण भगवान् महावीर को दक्षिण दिशा से प्रारम्भ करके तीन बार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके भगवान् को स्तुतिरूप वन्दन किया और काय से नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके श्रमण भगवान् महावीर के अत्यन्त समीप नही और अत्यन्त दूर भी नही—ऐसे समुचित स्थान पर बैठकर धर्मोपदेश श्रवण करने की इच्छा करता हुआ, नमस्कार करता हुआ, दोनो हाथ जोडे, सन्मुख रहकर प्रभु की उपासना करने लगा।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने मेघकुमार को और उस महती परिषद् (श्रोताओ के समूह) को, मध्य मे स्थित होकर विचित्र प्रकार के श्रुतधर्म और चारित्रधर्म की देशना की। जिस प्रकार जीव कर्मों से बद्ध होते हैं, जिस प्रकार मुक्त होते हैं और जिस प्रकार सक्लेश को प्राप्त होते है, यह सब धर्मकथा औपपातिक सूत्र के अनुसार कह लेनी चाहिए। यावत् धर्म-देशना सुनकर परिषद् अर्थात् जनसमूह वापिस लौट गया। (२६)

विशेष बोध—सूत्रकार ने यहाँ जिस घटना का वर्णन किया है वह भगवान् महावीर के केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त होने के बाद की है। "तेण कालेण, तेण समएण' यहाँ काल और समय—दो शब्दो का प्रयोग किया गया है। साधारण रूप से दोनो शब्द एकार्थक

माने जाते हैं किन्तु यहाँ दोनो का तात्पर्य भिन्न-भिन्न है। काल का अर्थ है चौथा आरा और समय का अर्थ है—वह वर्ष, मास, दिन या मुहूर्त्त आदि कालविभाग, जब भगवान् राजगृह मे पधारे थे।

जैसे आजकल सवत् के साथ मिति लिखने का या सन् के साथ मास-दिवस लिखने का रिवाज है, वैसे ही उस समय सूत्रों में काल और समय लिखने की प्रथा थी।

चौथा आरा ४२ हजार वर्ष कम एक कोडाकोडी सागरोपम का माना गया है। भगवान् ऋषभदेव के बाद २३ तीर्थंकर इसी आरे मे हुए हैं। भगवान् महावीर चौबीसवे तीर्थंकर थे।

'तेण कालेण तेण समएणं' यह सामान्य पाठ है और अनेक स्थलो पर आता है। इसका सामान्य अर्थ सर्वत्र उल्लिखित ही समझना चाहिए किन्तु घटना के अनुसार उसका विशेष अर्थ पृथक्-पृथक् कहना चाहिए।

प्रत्येक घटना और अन्तर्घटना का कोई काल और काल-विभाग होना निश्चित है किन्तु उसके वर्णन मे उन सब का उल्लेख होना सम्भव नही है। तथापि 'तेण कालेण तेण समएण' कहकर उस स्था की पूर्ति कर दी गई है।

दीनदयाल प्रभु महावीर जब विहार करते तब मार्ग के प्रत्येक ग्राम-नगर को धर्मलाभ देते। प्राय किसी भी ग्राम को छोडकर आगे नही निकलते। आज भी पैदल विचरण करने वाले साधुओ को ग्रामानुग्राम विचरना पडता है। पद-यात्रा की यह भी एक विशिष्टता है।

आज की भाति प्राचीन काल में वर्षावास या शेपकाल के लिए श्रावको द्वारा पहले से प्रार्थना करने की प्रथा थी, ऐसा उल्लेख कही दृष्टिगोचर नही होता। तीर्थंकर हो या अन्य साधु, विचरते-विचरते जहाँ अनुकूलता देखते, चौमासा कर लेते थे। नियमानुसार शेप काल भी इसी प्रकार व्यतीत करते थे।

प्राचीन कथानको से यह भी ध्वनित होता है कि सन्तजन अकस्मात् आते और अकस्मात् ही विहार कर जाते थे। उनके गमनागमन का समय पूर्व निर्धारित नही होता था। अगर होता भी हो, तो भी गृहस्थो को उसका पता नही चलता था। अनेक कथाओ मे उद्यानपाल द्वारा राजा को मुनि-आगमन की सूचना मिलने का उल्लेख है तो कई जगह उनके आगमन के पश्चात् उमडती हुई भीड को देखकर पता चलने का वर्णन आता है। किसी भी जगह के सघ को मुनि-आगमन से पूर्व उनके आने की सूचना मिलने का वर्णन शास्त्रो मे नही है। आधुनिक काल मे यह प्रथाए प्रचलित हैं।

राजगृह नगर के बाहर प्रभु का पदार्पण हो गया। वे गुणशिलक या गुणशील नामक चैत्य मे पधार गए। जनता को यह समाचार विदित हुआ तो चारो ओर से भगवान् की सुधामयी धर्मदेशना सुनने के लिए वह उमड पडी।

मेघकुमार अपनी आठ पत्नियो के साथ विलासमय जीवन का अनुभव कर रहा था! मृदगो की आवाज मे रास-लीला चल रही थी।

देव, दानव मानव और पशु-पक्षी, सभी विषय-वासना मे ग्रस्त होते है, सभी भोगो का सेवन करते है। किन्तु मानव की यह विशेषता है कि वह वासना के जाल को छिन्न-भिन्न कर सकता है। अनेक सत्वशाली महामानव ऐसे हुए हैं जिन्होंने वासना पर विजय प्राप्त करके धर्माचरण किया और अन्त मे मुक्ति प्राप्त की। उन्ही महामानवो मे मेघकुमार भी थे।

महलो मे बैठे मेघकुमार ने जनसमूह को एक ही ओर जाते देखा। तब उसके मन मे आया कि आज कोई विशिष्ट प्रसग होना चाहिए। सही जानकारी प्राप्त करने के लिए उसने कचुकी से पूछा। तब उसने बतलाया कि श्रमण भगवान् महावीर का यहाँ पदार्पण हुआ है।

यह हर्ष-समाचार सुनते ही मेघकुमार भगवान् की सेवा मे पहु-चने को तैयार हुआ ।

भगवान् की धर्मदेशना श्रवण करने के लिए प्रस्थान करने से पूर्व उसने स्नान किया और आभरण धारण किये । फूल-माला वाले छत्र को धारण किया । यह एक लोकाचार है जिसका धर्म के साथ सम्बन्ध नही है। स्नान करना धर्म होता तो मुनियो के लिए आजीवन अस्नानव्रत क्यो वतलाया जाता ?

पूरी तैयारी के साथ मेघकुमार दर्शनार्थ गया। निकट पहुंचने पर पाच अभिगमो का पालन किया। अन्य कथानको मे भी इन अभिगमो के पालन का उल्लेख मिलता है। जैनसघ की यह धार्मिक सस्कृति है, सभ्यता है ।

प्राचीन काल मे तीन वार प्रदक्षिणा करने की प्रणाली थी। सन्मान-वहुमान प्रदर्शित करना, इसका उद्देश्य था। आजकल तीन वार हाथ घुमाकर ही प्रदक्षिणा समझ ली जाती है।

मेघकुमार यथोचित विनय-भक्ति प्रकट करके जिनवाणी सुनने के लिए अपने योग्य स्थान पर वैठ गया।

राजा हो या रंक, वीतराग समान भाव से सवको समान उपदेश देते हैं।[1] भगवान ने मेघकुमार को और उस समय उपस्थित जन-समूह को धर्मदेशना दी। धर्मदेशना मे श्रुतधर्म और चारित्रधर्म का कथन किया। श्रुत है ज्ञान और चारित्र है आचरण। ज्ञान-क्रिया के समीचीन सयोग से ही सिद्धि प्राप्त होती है!

वन्धन क्या है? वन्धन से मुक्ति पाने का उपाय क्या है? वास्त-विक सुख और दु.ख का स्वरूप क्या है? इन प्रश्नो पर विचार करके समाधान पाना ही धर्मकथाश्रवण का सार है।

---

१ जहा पुण्णस्स कत्थइ, तहा तुच्छस्स कत्थइ।

—आचाराग, प्र० श्रु०

दुख की अनुभूति ही वास्तव मे दु ख है। इसी कारण शास्त्रकार उसे 'असाता-वेदन' कहते है। जो दु खो का कारण समझ गया और उससे मुक्त होने का उपाय जान गया, उसका दु.खभार कम हो जाता है। भगवत्कथा मे उपाय मिलता है। दु ख का स्वरूप उससे समझा जाता है।

जम्मदुक्ख, जरादुक्ख,
रोगाणि मरणाणि य।

मेघकुमार ने इन दु खो को समझा।

धर्मदेशना यहाँ सक्षेप मे वतला दी गई है। विस्तारपूर्वक समझने के लिए औपपातिक सूत्र देखना चाहिए। (२५-२६)

मूलपाठ—तए ण से मेहे कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्म सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठे, समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ, करित्ता वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता एव वयासी—

सद्दहामि ण भंते ! णिग्गथ पावयण, एव पत्तयामि णं, रोएमि णं, अब्भुट्ठेमि ण भते ! णिग्गथ पावयण। एवमेयं भंते ! तहमेय भते ! अवितहमेयं भंते ! इच्छियमेय पडिच्छियमेयं भते ! इच्छियपडिच्छियमेयं भंते ! से जहेव त तुब्भे वदह। ज नवर देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आ-पुच्छामि, तओ पच्छा मुंडे भवित्ता णं पव्वइस्सामि।

अहासुह देवाणुप्पिया ! मा पडिबध करेह।

तए णं से मेहे कुमारे समण भगव महावीर वदति नमसति, वंदित्ता नमसित्ता जेणामेव चाउग्घंटे आसरहे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घट आसरह दुरूहइ, दुरूहित्ता महया भडचडगरपहकरेण रायगिहस्स

नयरस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव सए भवणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घटाओ आसरहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणामेव अम्मापियरो तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अम्मापिऊण पायवडण करेइ, करित्ता एव वयासी–

एव खलु अम्मयाओ ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्मे णिसते । से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए ।

तए णं तस्स मेहस्स अम्मापियरो एव वयासी–धन्नो सि तुम जाया ! सपुन्नो सि तुम जाया ! कयत्थो सि तुम जाया ! ज णं तुमे समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्मे णिसते, से वि य ते धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए ।

तए ण से मेहे कुमारे अम्मापियरो दोच्चंपि तच्चंपि एव वयासी–एव खलु अम्मयाओ ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अतिए धम्मे निसते । से वि य ण धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए । त इच्छामिण अम्मयाओ ! तुब्भेहि अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए मुंडे भवित्ता ण अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ।

तए णं सा धारिणी देवी तमणिट्ठं अकंत अप्पियं अमणुन्न अमणामं अस्सुयपुव्व फरुस गिर सोच्चा णिसम्म इमेण एयारूवेण मणोमाणसिएण महया पुत्तदुक्खेणं अभिभूता समाणी सेयागयरोमकूवपगलतविलीणगाया सोयभरपवेवियंगी णित्तेया दीणविमणवयणा करयलमलियव्व कमलमाला तक्खणओलुग्गदुब्बलसरीरा

तए ण से सेणिए राया बाहिरियाए उवट्ठाणसालाए सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने, सइएहि य साहस्सिएहि य सयसाहस्सिएहि य जाएहि य दाएहि य भागेहि य दलयमाणे-दलयमाणे पडिच्छियमाणे-पडिच्छियमाणे एवं च ण विहरति।

तए णं तस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे जातकम्मं करेत्ति, करित्ता बितियदिवसे जागरिय करेत्ति, करित्ता ततियदिवसे चन्दसूरदसणिय करेत्ति, करित्ता एवामेव निव्वत्ते असुइजातकम्मकरणे सपत्ते वारसाहदिवसे विपुल असणं पाण खाइम साइम उवक्खडावेत्ति, उवक्खडावित्ता मित्त-णाइ-णियग-सयण-सबधि-परिजण बल च बहवे गणणायग-दडणायग जाव आमतेति।

तओ पच्छा ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय० जाव सव्वालकारविभूसिया महइमहालयसि भोयणमडवसि त विपुल असण पाण खाइम साइम मित्तणाइ० गणणायग० जाव सद्धि आसाएमाणा विसाएमाणा परिभाएमाणा परिभुंजेमाणा एवं च ण विहरइ।

जिमियभुत्तुत्तरागया वि य णं समाणा आयता चोक्खा परमसुइभूया त मित्तणाइनियगसयणसबधिपरिजण० गणनायग० विपुलेण पुप्फगधमल्लालंकारेण सक्कारेति सम्माणेति, सक्कारित्ता सम्माणित्ता एव वयासी—

जम्हा ण अम्ह इमस्स दारगस्स गब्भत्थस्स चेव समाणस्स अकालमेहलेसु दोहले पाउब्भूए, त होउ ण अम्हं दारए मेहे नामेण मेहकुमारे।

तस्स दारगस्स अयमेयारूवे गोण्णं गुणनिप्फण्ण नामधेज्ज करेति । (२०)

मूलार्थ तत्पश्चात् धारिणीदेवी ने नौ मास परिपूर्ण हो जाने पर और साढे सात दिवस वीत जाने पर अर्धरात्रि के समय अत्यन्त कोमल हाथो-पैरो वाले यावत् सर्वाङ्गसुन्दर शिशु का प्रसव किया ।

तब दासियां धारिणीदेवी को नौ मास पूर्ण हुए यावत् पुत्र उत्पन्न हुआ देखती है । देखकर हर्ष के कारण शीघ्र, मन से त्वरा वाली, काय से चपलतायुक्त एव वेगयुक्त गति से वे दासिया राजा श्रेणिक के पास पहु चती है । पहुँच कर राजा श्रेणिक को 'जय हो' 'विजय हो' शव्द कहकर बधाई देती हैं । बधाकर दोनो हाथ जोड कर एव मस्तक पर आवर्त्तन करके, अजलि करके इस प्रकार कहती है—

देवानुप्रिय ! धारिणी देवी ने नौ मास पूर्ण होने पर यावत् पुत्र का प्रसव किया है । सो हम '(आप) देवानुप्रिय को प्रिय (समाचार) निवेदन करती हैं । आपका प्रिय हो ।

तत्पश्चात् राजा श्रेणिक उन दासियो से यह अर्थ सुनकर और हृदय मे धारण करके हृष्ट-तुष्ट हुआ । उसने उन दासियो का मधुर वचनो से तथा विपुल पुष्प, गन्ध, माला और अलकारो से सत्कार-सन्मान किया । सत्कार-सन्मान करके उन्हे मस्तक धौत किया अर्थात् दासीपन से मुक्त कर दिया । उन्हे ऐसी आजीविका दी, जो उनके पुत्र पौत्र तक चलती रहे । इस प्रकार विपुल आजीविका देकर उन्हे विदा किया ।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा कौटुम्बिक पुरुषो को बुलवाता है और बुलवा कर इस प्रकार आदेश देता है—

देवानुप्रियो ! शीघ्र ही राजगृह नगर मे सुगधित जल छिडको यावत् सर्वत्र (मगल) गान कराओ । कैदियो को कारागार से मुक्त करो । तोल-नाप की वृद्धि करो । यह सव करके आज्ञा वापिस

लौटाओ। यावत् वे कौटुम्बिक पुरुष राजाज्ञा के अनुसार कार्य करके आज्ञा वापिस सौंपते है।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा कुंभकार आदि जातिरूप अठारह श्रेणियो को और उनके उपविभागरूप अठारह प्रश्रेणियो को बुलवाता है। बुलवा कर उनसे इस प्रकार कहता है—देवानुप्रियो ! तुम जाओ और राजगृह नगर के भीतर और बाहर दस दिन की स्थितिपतिका (कुलपरम्परा के अनुसार होने वाली पुत्रजन्मोत्सव की विशिष्ट रीति) कराओ। वह इस प्रकार—दस दिनो तक शुल्क (चुंगी) लेना बन्द किया जाय। कुटुम्बियो-किसानो आदि के घर मे बेगार लेने आदि के लिए राजपुरुषो का प्रवेश रोक दिया जाय। दण्ड (अपराध के अनुसार लिया जाने वाला द्रव्य-जुर्माना) एव कुदंड (अल्प दण्ड—बडा अपराध करने पर भी लिया जाने वाला थोड़ा द्रव्य) न लिया जाय। किसी को ऋणी न रहने दिया जाय अर्थात् राजा की ओर से सबका ऋण चुका दिया जाय। किसी देनदार को पकड़ा न जाय। ऐसी घोषणा कर दो। तथा सर्वत्र मृदग आदि वाद्य बजवाओ। चारो ओर विकसित ताजा फूलो की मालाएं लटकाओ। गणिकाएं जिनमे प्रमुख हैं, ऐसे पात्रो से नाटक करवाओ। अनेक तालाचरो (प्रेक्षाकारियो) से नाटक करवाओ। ऐसा करो कि लोग हर्षित होकर क्रीडा करे।

इस प्रकार यथायोग्य दस दिन की स्थितिपतिका करो, कराओ और मेरी यह आज्ञा मुझे वापिस लौटाओ।

राजा श्रेणिक का यह आदेश सुनकर वे इसी प्रकार करते है और राजाज्ञा वापिस लौटाते हैं।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा बाहर की उपस्थान शाला मे पूर्व की की ओर मुख करके श्रेष्ठ सिंहासन पर आसीन हुआ और सैकडो, हजारो और लाखो के द्रव्य से याग (पूजन) किया, और दान दिया।

अपनी आय मे से अमुक भाग दिया और प्राप्त होने वाले द्रव्य को ग्रहण करता हुआ विचरने लगा।

तत्पश्चात् उस बालक के माता-पिता ने प्रथम दिन जातकर्म (नाल का काटना आदि) किया। दूसरे दिन जागरिका (रात्रि-जागरणा) की। तीसरे दिन चन्द्र-सूर्य का दर्शन कराया। इस प्रकार अशुचि जातकर्म की क्रिया सम्पन्न हुई। फिर बारहवा दिन आया तो विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन तैयार करवाया। तैयार करवा कर मित्रो, बन्धु आदि ज्ञातिजनो, पुत्र आदि निजक जनो, काका आदि स्वजनो, श्वसुर आदि सबधी जनो, दास आदि परिजनो, सेना, बहुत-से गणनायक तथा दण्डनायक आदि को आमन्त्रित किया।

तत्पश्चात् स्नान करके, वलिकर्म करके, मषि तिलक आदि कौतुक करके यावत् समस्त अलकारो से विभूषित हुए। फिर विशाल भोजनमडप मे उस अशन, पान, खादिम और स्वादिम भोजन का मित्र ज्ञाति आदि तथा गणनायक आदि के साथ आस्वादन किया, विशेष रूप से आस्वादन किया परस्पर विभाजन किया और परिभोग किया।

इस प्रकार भोजन करने के पश्चात् शुद्ध जल से आचमन किया। हाथ-मुख धोकर स्वच्छ हुए। परम शुचि हुए। फिर मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सबधी, परिजन आदि का तथा गणनायक आदि का विपुल वस्त्र, गध, माला और अलंकार आदि से सत्कार किया, सम्मान किया। सत्कार-सम्मान करके इस प्रकार कहा—

क्योकि हमारा यह पुत्र जव गर्भ मे स्थित था तव इसे (इसकी माता को) अकालिक मेघ सवंधी दोहद हुआ था, अतएव हमारे इस पुत्र का नाम मेघकुमार होना चाहिए।

इस प्रकार माता-पिता ने इस प्रकार का गौण अर्थात् गुणनिष्पन्न नाम रक्खा। (२०)

विशेष बोध राजा श्रेणिक के पास पहुँच कर दासियो ने उसे वधाई दी। पुत्र जन्म की वधाई सुनकर राजा को अत्यत प्रमोद हुआ। उसने दासियो को इतना पारितोषिक दिया कि खर्च करते-करते सात पीढियो तक भी समाप्त न हो। उन्हे दासीपन के बन्धन से मुक्त कर दिया। अब वे दासी नही रही।

एक पुत्र के जन्म की खुशी मे इतना धन इनाम मे दे दिया तो अन्य प्रसगो पर राजा कितना दान देता होगा, यह कल्पना करना कठिन नही। उस काल मे श्रीमन्तो मे ऐसी उदारता थी। इसी कारण उस समय वर्गसघर्ष नही था, सधन-निर्धन का विवाद नही था। बिना कानून के स्वेच्छा-स्वीकृत समाजवाद था। यही कारण है कि तत्कालीन समाज मे न समाजवाद के नारे लगाए जाते थे और न साम्यवाद के।

ऐसे उन्नत समाज मे दास-दासीप्रथा किस प्रकार सहन कर ली जाती थी, यह आश्चर्य का विषय है।

जन्मोत्सव के सिलसिले मे अठारह श्रेणियो और उपश्रेणियो को बुलवाया गया। मूल पाठ मे 'सेणिप्पसेणिओ' शब्द है जिसका अर्थ है श्रेणिया और प्रश्रेणिया।[1]

दस दिनो तक जन्मोत्सव मनाने की घोषणा की गई। यह लौकिक परम्परा के अनुसार सूतक का समय है। आज भी दस दिन का ही सूतक मनाया जाता है। सूतक के दिनो मे सन्त-सतिया भी उस घर से आहार-पानी नही ग्रहण करते। दसवा दिन दसोटन कहलाता है।

---

१ पण्डित शोभाचन्द्र जी ने कुभार आदि १८ जातियो को बुलवाया, ऐसा अर्थ किया है। उस समय आज की तरह जातिया नही थी, पर जातिशब्द समूह का वाचक है, अतएव १८ प्रकार के कार्यकरो का समूह, ऐसा जाति का अर्थ हो सकता है। प्रश्रेणियाँ, श्रेणियो के अन्तर्गत उपसमूह हैं।

मेघकुमार के जन्म की खुशी मे राजा ने दस दिन चुगी वसूल करना वन्द करा दिया। अन्यान्य सुविधाएँ भी प्रजा को प्रदान की। ऋण-वसूली वद कर दी। आज भी इस प्रकार के अनेक कार्य किये जाते है।

जब तीर्थंकर का जन्म होता है तो नरक के जीवो को भी क्षणिक शाति मिलती है। जन्मोत्सव मनाने के लिए ६४ इन्द्र आते है। यह सव पुण्यराशि का ही प्रशस्त परिणाम है।

मेघकुमार तीर्थंकर के समान तो नही, किंतु प्रबल पुण्य अर्जित करके आया था। इसी कारण उसके जन्म के उपलक्ष मे अनेक प्राणियो को शान्ति प्राप्त हुई।

पुण्यहीन जीव जव किसी दरिद्र घर मे जन्म लेता है तो माता को गुड का पानी भी दुर्लभ होता है। कदाचित् उस घर में जन्म-सूचक थाली वजाने वाला भी नही मिलता। इस प्रकार पुण्य और पाप का परिणाम प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है।

तीसरे दिन सूर्य-चन्द्र के दर्शन कराये जाते है। परभव से आए जीव को दुनियां का सवसे वडा प्रकाशपुंज दिखाकर यह आशा की जाती है कि—हे पुत्र! तू चन्द्र-सूर्य की तरह दीर्घायु वन कर चमकना।

तत्पश्चात् राजा श्रेणिक ने प्रीतिभोज देकर यह आदर्श स्थापित किया कि प्रसन्नता के समय सम्वद्ध व्यक्तियो को स्मरण करना चाहिए और प्रमोद को भी बाँट कर उपभोग करना चाहिए। (२०)

मूलपाठ—तए ण से मेहकुमारे पचधाइपरिग्गहिए, तं जहा खीरधाईए १, मडणधाईए २, मज्जणधाईए ३, कीलावणधाईए ४, अकधाईए ५. अन्नाहि य बहूहिं खुज्जाहिं चिलाइयाहिं वामणि-वडभि-बव्वरि-वउसि-जोणियाहिं पल्हविय—ईसिणिय—धोरुगिणि—लासिय—लउसिय—दमिलि—

सिंहलि-आरबि-पुलिंदि-पक्खणि बहलि-मुरंडिय-सवरि-पार-सीहिं णाणादेसीहिं विदेसपरिमंडियाहिं इंगित-चिंतिय-पत्थियवियाणियाहिं सदेसनेवत्थगहियवेसाहिं निउण-कुसलाहिं विणीयाहिं चेडियाचक्कवाल-वरिसधर-कंचुइअ महयरगवन्द-परिक्खित्ते हत्थाओ हत्थं संहरिज्जमाणे अंकाओ अंकं परिभुंजमाणे परिगिज्जमाणे चालिज्जमाणे उवलालिज्ज-माणे रम्मंसि मणिकोट्टिमतलंसि परिभिज्जमाणे२ णिव्वाय-णिव्वाघायंसि गिरिकंदरमल्लीणेव्व चंपगपायवे सुहं सुहेणं वड्ढइ।

तए णं तस्स मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो अणुपुव्वेण नामकरणं च पज्जेमणं च एवं चंकमणं च चोलोवणयं च महया महया इड्ढी-सक्कारसमुदएणं करिंसु।

तए णं तं मेहकुमारं अम्मापियरो सातिरेगट्ठवासजायगं चेव गब्भट्ठमे वासे सोहणंसि तिहिकरण-मुहुत्तंसि कलायरि-यस्स उवणेति।

तए णं से कलायरिए मेहं कुमारं लेहाइयाओ गणित-प्पहाणाओ सउणरुतपज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ सुत्तओ अ अत्थओ य करणओ य सेहावेति सिक्खावेति। तंजहा—

(१) लेहं (२) गणियं (३) रूवं (४) नट्टं (५) गीयं (६) वाइयं (७) सरगयं (८) पोक्खरगयं (९) समतालं (१०) जूयं (११) जणवायं (१२) पासयं (१३) अट्ठावयं (१४) पोरेवच्चं (१५) दगमट्टियं (१६) अन्नविहिं (१७) पाणविहिं (१८) वत्थविहिं (१९) विलेवणविहिं (२०)

सयणविहि (२१) अज्जं (२२) पहेलियं (२३) मागहियं (२४) गाह (२५) गीइय (२६) सिलोय (२७) हिरण्णजुत्ति (२८) सुवण्णजुत्ति (२६) चुण्णजुत्ति (३०) आभरणविहि (३१) तरुणोपरिकम्म (३२) इत्थिलक्खरण (३३) पुरिस-लक्खण (३४) हयलक्खरण (३५) गयलक्खणं (३६) गोणलक्खरण (३७) कुक्कुडलक्खण (३८) छत्तलक्खरणं (३६) दंडलक्खण (४०) असिलक्खरणं (४१) मणिलक्खणं (४२) कागणिलक्खरण (४३) वत्थुविज्ज (४४) खधारमाण (४५) नगरमाणं (४६) वूहं (४७) पडिवूहं (४८) चारं (४६) पडिचार (५०) चक्कवूहं (५१) गरुलवूह (५२) सगडवूह (५३) जुद्ध (५४) निजुद्धं (५५) जुद्धातिजुद्धं (५६) अट्ठिजुद्धं (५७) मुट्ठिजुद्धं (५८) वाहुजुद्धं (५६) लयाजुद्धं (६०) ईसत्थ (६१) छरुप्पवायं (६२) धणुव्वेय (६३) हिरण्णपाग (६४) सुवण्णपाग (६५) सुत्तखेड (६६) वट्टखेड (६७) नालिकाखेड (६८) पत्तच्छेज्जं (६६) कडगच्छेज्ज (७०) सजीवं (७१) निज्जीवं (७२) सउणरुअमिति । (२१)

मूलार्थ—तत्पश्चात् मेघकुमार पांच धायो द्वारा ग्रहण किया गया अर्थात् पाच धाये उसका पालन-पोषण करने लगी। वे इस प्रकार—(१) क्षीरधात्री-दूध पिलाने वाली धाय (२) मडनधात्री—वस्त्राभूषण पहनाने वाली धाय (३) मज्जनधात्री—स्नान कराने वाली धाय (४) क्रीड़ापनधात्री—खेल खिलाने वाली धाय और (५) अकधात्री—गोद मे खिलाने वाली धाय।

इनके अतिरिक्त वह मेघकुमार अन्यान्य कुब्जा (कुवड़ी), चिलातिका—चिरात-किरात नामक अनार्य देश मे उत्पन्न, वामन

(वौनी), वडभी (वडे पेट वाली), वर्वरी (बर्बर देश मे उत्पन्न), वकुश देश की, यौतक देश की, पल्लविक देश की, ईसनिक-धोरूकिन एव ल्हासक देश की, लकुश देश की, द्रविड़ देश की, सिंहल देश की, पुलिद देश की, पक्कण देश की, वहल देश की, मुरुंड देश की, शबर देश की, पारस देश की, इस प्रकार नाना देशो की, जो विदेश-अपने देश से भिन्न राजगृह को सुशोभित करने वाली, इगित (मुखादि की चेष्टा) चिन्तित (मानसिक विचार) और प्रार्थित (अभिलषित) को जानने वाली, अपने अपने देश के वेश को धारण करने वाली, निपुणो मे भी अतिनिपुण, तथा विनीता दासियो के द्वारा और स्वदेशीय दासियो के द्वारा, वर्षधरो (प्रयोग द्वारा नपुसक बनाये हुए पुरुषो), कचुकियो और महत्तरको (अन्त पुर की चिन्ता करने वालो) के समुदाय से घिरा हुआ रहने लगा।

वह एक के हाथ से दूसरे के हाथ मे जाता, एक की गोद से दूसरे की गोद मे जाता। गा-गा कर वहलाया जाता, उगली पकड कर चलाया जाता, क्रीडा आदि से लालन-पालन किया जाता एव रमणीय मणिजटित फर्श पर चलाया जाता हुआ वायुरहित और व्याघातरहित गिरि-गुफा मे स्थित चम्पकवृक्ष के समान सुखपूर्वक वढने लगा।

तत्पश्चात् मेघकुमार के माता-पिता ने अनुक्रम से नामकरण, पालने मे सुलाना, पैरो से चलाना, चोटी रखना आदि संस्कार बडी ऋद्धि और सत्कारपूर्वक किये।

तत्पश्चात् कुछ अधिक आठ वर्ष हुए अर्थात् गर्भ से आठ वर्ष की आयु मे मेघकुमार को माता-पिता ने शुभ तिथि, करण और मुहूर्त मे कलाचार्य के पास भेजा।

तत्पश्चात् कलाचार्य ने मेघकुमार को गणित जिनमे प्रधान है, ऐसे लेख से लेकर शकुनिरुत (पक्षियो की वोली पहचानना) पर्यन्त

बहत्तर कलाएँ सूत्र से, अर्थ से और प्रयोग से सिद्ध करवाईं तथा सिखलाई । वे इस प्रकार हैं—

(१) लेखन (२) गणित (३) रूप-परिवर्त्तन (४) नाट्य (५) गायन (६) वाद्य वजाना (७) स्वर जानना (८) वाद्य सुधारना (९) समान ताल देना (१०) जूआ खेलना (११) लोगो के साथ वाद-विवाद करना (१२) पासो से खेलना (१३) चौपड़ खेलना (१४) नगर रक्षा करना (१५) जल और मिट्टी के सयोग से वस्तु का निर्माण करना (१६) धान्य निपजाना (१७) नया पानी उत्पन्न करना, पानी शुद्ध करना, गर्म करना (१८) नवीन वस्त्र वनाना, रगना, सीना और पहनना (१९) विलेपन की वस्तुएँ पहचानना, तैयार करना, लेपन करना (२०) शयन विधि—शय्या वनाना एव शयन करने की विधि जानना (२१) आर्या छन्द को पहचानना और वनाना (२२) पहेलियो को बूझना एव निर्माण करना (२३) मागधिका-मगध देश की भाषा मे गाथा बनाना (२४) प्राकृत भाषा मे गाथा बनाना (२५) गीति रचना (२६) श्लोक (अनुष्टुप) वनाना (२७) चादी वनाना (२८) स्वर्ण बनाना (२९) चूर्ण-गुलाल अबीर आदि वनाना और उनका उपयोग करना (३०) आभूषण घड़ना, पहनना आदि (३१) तरुणी की सेवा करना (३२) स्त्री के शुभाशुभ लक्षण पहचानना (३३) पुरुष के लक्षण जानना (३४) अश्व के लक्षण जानना (३५) हाथी के लक्षण जानना (३६) गाय-बैल के लक्षण जानना (३७) मुर्गा के लक्षण जानना (३८) छत्र के लक्षण जानना (३९) दड लक्षण जानना (४० खड्ग-लक्षण जानना (४१) मणियो के लक्षण जानना (४२) काकिणी रत्न के लक्षण जानना (४३) वास्तुविद्या–मकान दुकान आदि इमारतो की विद्या (४४) सेना के पडाव का प्रमाण आदि जानना (४५) नवीन नगर वसाने आदि की कला (४६) व्यूह–मोर्चा बनाना (४७) विरोधी के व्यूह के सामने अपनी सेना का मोर्चा रचना (४८) सैन्य सचालन करना (४९) प्रतिचार–शत्रु सेना के समक्ष अपनी सेना का चलाना

(५०) चक्रव्यूह–चाक के आकार मे मोर्चा बनाना (५१) गरुड के आकार का व्यूह बनाना (५२) शकटव्यूह रचना (५३) सामान्य युद्ध करना (५४) विशेप युद्ध करना (५५) अत्यन्त विशेष युद्ध करना (५६) अट्ठि (यष्टि या अस्थि) से युद्ध करना (५७) मुष्टि युद्ध करना (५८) वाहु युद्ध करना (५९) लता-युद्ध करना (६०) बहुत को थोडा और थोडे को वहुत दिखलाना (६१) खड्ग की मूठ आदि बनाना (६२) धनुष-वाण सवधी कौशल (६३) चादी का पाक बनाना (६४) स्वर्ण पाक बनाना (६५) सूत्र का छेदन करना (६६) खेत जोतना (६७) कमल के नाल का छेदन करना (६८) पत्र-छेदन करना (६९) कटक कुडल आदि का छेदन करना (७०) मृत (मूर्छित) को जीवित करना (७१) जीवित को मृत (मृततुल्य) करना और (७२) काक तथ घूक आदि पक्षियो की बोली पहचानना। (२१)

विशेष बोध—एक करोड़ और अस्सी लाख गावो के अधिपति अर्थात् विशाल मगध के महीपति सम्राट श्रेणिक के पुत्र मेघकुमार को प्राप्त साधनो का यहा उल्लेख किया गया है। यह उल्लेख कितना बोधप्रद है! प्रवल पुण्य से माता-पिता अच्छे मिलते है और पुण्यशाली माता-पिता को पुण्यवान् पुत्र की प्राप्ति होती है।

एक पुण्यहीन भिखारिन माता के उदर से पुण्यहीन सन्तान जन्म लेती है। यद्यपि यह सर्वदेशीय व्याप्ति नही है, कभी गरीब माता की कूख से भाग्यशाली पुत्र भी जन्म ग्रहण करता है और कदाचित् श्रीमन्त एव पुण्यवती माता का पुत्र भाग्यहीन भी हो जाता है। मेघकुमार के माता-पिता पुण्यशाली थे और मेघकुमार स्वय भी प्रकृष्ट पुण्य लेकर आया था। अतएव उसे सब प्रकार की अनुकूल सामग्री प्राप्त हुई। पाच धाये उसका लालन-पालन करती हैं। उनके अतिरिक्त अनेकानेक दास-दासियो का जमघट उसकी सेवा मे सदा सन्निहित और सन्नद्ध रहता है।

गिरि-गुफा के चम्पक वृक्ष के समान वह विना किसी विघ्न-वाधा के वृद्धिगत होने लगा। यहा नन्दन वन या गुलाव वाग के पादप की उपमा नही दी गई। वन के वृक्षो की अपेक्षा गिरि-गुफा का वृक्ष अधिक सुरक्षित रहता है। वन के वृक्ष को दाह का खतरा रहता है, गुफा के वृक्ष को वह खतरा भी नही रहता। वन का वृक्ष आँधी-तूफान से उखड सकता है, गुफा का वृक्ष उससे प्रभावित नही होता।

मेघकुमार की आयु एवं नीरोगता आदि प्रवल पुण्य रूपी गुफा से सुरक्षित थी।

उसका नामकरण सस्कार, पालने मे पोढाने का संस्कार आदि सभी सस्कार अनुक्रम से योजनापूर्वक वडे ठाठ से किए गए। राजा के यहा किस वस्तु की कमी थी! और फिर मेघकुमार परिवार का लाडला था।

आज पांच वर्ष की वय मे वालक को पाठशाला मे भेज दिया जाता है। उस समय आठ वर्ष की उम्र मे उसे कलाचार्य के पास भेज दिया जाता था। आठ वर्ष की उम्र मे उस युग मे शिक्षा का आरम्भ होता था।

मेघकुमार के पाठ्यक्रम मे ७२ कलाओ का उल्लेख किया गया है। अन्य कथाएँ भी यही सूचित करती हैं। ये कलाए सूत्र, अर्थ और प्रयोग द्वारा सिखलाई जाती थी। कलाओ के नामोल्लेख से सहज ही जाना जा सकता है कि इनके अन्तर्गत सभी जीवनोपयोगी ज्ञान समाविष्ट हो जाता था। अगर विस्तार से इनका ज्ञान प्राप्त किया जाय तो वह जीवननिर्वाह के लिए पर्याप्त होने के साथ देश की सुरक्षा के लिए भी पर्याप्त था।

कला कला के लिए ही नही, जीवन के लिए उपयोगी होनी चाहिए। कलात्मक जीवन ही मौलिक जीवन है।

उल्लिखित कलाओ मे जुआ जैसी कलाए भी सम्मिलित है, यह देखकर आश्चर्य हो सकता है, पर जान पडता है कि तत्कालीन समाज मे यह भी एक मनबहलाव का साधन था। (२१)

मूलपाठ—तए ण से कलायरिए मेह कुमार लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणिरुअपज्जवसाणाओ बावत्तरिकलाओ सुत्तओ य अत्थओ य करणओ य सेहावेति सिक्खावेति, सेहावित्ता सिक्खावित्ता अम्मापिऊण उवणेति।

तए ण मेहस्स कुमारस्स अम्मापियरो तं कलायरियं महुरेहि वयणेहि विपुलेणं वत्थगधमल्लालकारेण सक्कारेति सम्माणेति, सक्कारित्ता सम्माणित्ता विपुल जीवियारिह पीइदाण दलयंति, दलइत्ता पडिविसज्जेन्ति। (२२)

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह कलाचार्य मेघकुमार को गणित प्रधान लेखन से लेकर शकुनिरुत पर्यन्त बहत्तर कलाए सूत्र (मूल पाठ) से, अर्थ से और प्रयोग से सिद्ध कराता है तथा सिखलाता है। सिद्ध करवाकर तथा सिखलाकर माता-पिता के पास ले जाता है।

तब मेघकुमार के माता पिता ने कलाचार्य का मधुर वचनों से तथा विपुल वस्त्र, गध, माला और अलकारो से सत्कार किया, सन्मान किया। सत्कार-सन्मान करके जीविका के योग्य विपुल प्रीतिदान दिया। प्रीतिदान देकर उसे विदा किया॥ (२२)

मूलपाठ—तए णं मेहे कुमारे बावत्तरिकलापडिए णवंगसुत्तपडिबोहए अट्ठारसविहिप्पगारदेसीभासाविसारए गीडरई गधव्वनट्टकुसले हयजोही गयजोही रहजोही बाहुजोही बाहुपमद्दी अल भोगसमत्थे साहसिए वियालचारी जाए यावि होत्था।

तए णं तस्स मेहकुमारस्स अम्मापियरो मेह कुमार बावत्तरिकलापडित जाव वियालचारीजाय पासंति, पासित्ता अट्ठ पासायवडेसए करेन्ति अब्भुग्गयमूसियपहसिए विव मणिकणगरयणभत्तिचित्ते, वाउद्धूत—विजयवेजयंती-पडागाछत्ताइछत्तकलिए, तुगे गगणतलमभिलंघमाणसिहरे, जालंतररयणपंजरुम्मिलियव्व मणिकणगथूभियाए, वियसिय-सयपत्तपुंडरीए, तिलयरयणद्धयचदच्चिए नानामणिमय-दामालकिए अंतो बहिं च सण्हे, तवणिज्जरुइलवालुयापत्थडे, सुहफासे, सस्सिरीयरूवे, पासादीए जाव पडिरूवे ।

एगं च णं महं भवणं कारेति—अणेगखंभसयसंनिविट्ठं-लीलट्ठियसालभंजियागं अब्भुग्गयसुकयवइरवेइया तोरणवर-रइयसालभंजियासुसुलिट्ठविसिट्ठलट्ठसंठियपसत्थवेरुलियखंभ-नानामणिरयणखचितउज्जलं बहुसमसुविभत्तनिचियर-मणिज्जभूमिभाग ईहामिय० जाव भत्तिचित्तं खंभुग्गयवइर-वेइयापरिगयाभिरामं विज्जाहरजमलजुयलजंतजुत्त पिव अच्चीसहस्समालणीयं रूवगसहस्सकलियं भिसमाणं भिब्भि-समाणं चक्खुल्लोयणलेसं सुहफासं सस्सिरीयरूवं कंचणमणि-रयणथूभियागं नाणाविहपंचवण्णघंटापडागपरिमंडियग्गसिहरं धवलमरीचिकवयं विणिम्मुयंतं लाउल्लोइयमहिय जाव गंधवट्टिभूयं पासादीयं दरिसणिज्जं अभिरूवं पडिरूवं । (२३)

मूलार्थ—तब मेघकुमार बहत्तर कलाओ मे पण्डित हो गया । उसके नौ अग—दो कान, दो नेत्र, दो नासिका, जिह्वा, त्वचा और मन, बाल्यावस्था के कारण जो सोये हुए से थे—अव्यक्त चेतना वाले थे, वे जागृत-से हो गए । वह अठारह प्रकार की देशी भाषाओ मे कुशल हो गया, वह गीति मे प्रीति वाला एव गीत और नृत्य मे

कुशल हो गया। वह अश्वयुद्ध, गजयुद्ध, रथयुद्ध और बाहुयुद्ध करने वाला बन गया। अपनी बाहुओ से विपक्षी का मर्दन करने मे समर्थ हो गया। भोग भोगने का सामर्थ्य उसमे आ गया। साहसी होने के कारण विकालचारी—आधी रात मे भी चल पड़ने वाला बन गया।

तत्पश्चात् मेघकुमार के माता पिता ने मेघकुमार को बहत्तर कलाओ मे पण्डित यावत् विकालचारी हुआ देखा। देखकर आठ उत्तम प्रासाद बनवाए। वे प्रासाद बहुत ऊ चे थे। अपनी उज्ज्वल कान्ति के समूह से हसते हुए से प्रतीत होने थे। मणि, सुवर्ण और रत्नो की रचना से विचित्र थे। वायु से फहराती हुई और विजय को सूचित करने वाली वैजयन्ती पताकाओ से तथा छत्रातिछत्रो (एक दूसरे के ऊपर रख हुए छत्रो) से युक्त थे। वे इतने ऊ चे थे कि उनके शिखर आकाशतल को उल्लघन करते थे। उनकी जालियो के मध्य मे रत्नो के पजर होने से ऐसे प्रतीत होते थे मानो उनके नेत्र हो। उनमे मणियो और कनक की स्तूपिकाए थी। उनमे साक्षात् अथवा चित्रित किए हुए शतपत्र और पुण्डरीक कमल विकसित हो रहे थे। वे तिलक रत्नो एव अर्द्धचन्द्रो—(एक प्रकार के सोपानो) से युक्त थे या भित्तियो मे चन्दन आदि के आलेख (हाथे) से चर्चित थे। नाना प्रकार की मणिमय मालाओ से अलकृत थे। भीतर और बाहर चिकने थे। उनके आगन मे स्वर्ण की रुचिर वालुका बिछी थी। उनका स्पर्श सुखद था। रूप बड़ा ही शोभन था। उन्हे देखते ही चित्त मे प्रसन्नता उत्पन्न होती थी। यावत् वे महल प्रतिरूप थे-अत्यन्त मनोहर थे।

और एक महान्-भवन (मेघकुमार के लिए) बनवाया। वह कई सौ खभो से बना था। उसमे लीलायुक्त अनेक पुतलिया स्थापित की हुई थी। उसमे ऊ ची एव सुनिर्मित वज्ररत्न की वेदिका थी और तोरण थे। मनोहर निर्मित पुतलियो सहित, उत्तम, मोटे और प्रशस्त

वैडूर्य रत्न के खभ थे। वे विविध प्रकार के मणियो, रत्नो और स्वर्ण से खचित होने के कारण उज्ज्वल दिखलाई देते थे। उनका भूमिभाग विल्कुल सम, विशाल, पक्का और रमणीय था। उस महल मे ईहामृग (भेडिया), वृषभ, तुरग, मनुष्य, मकर आदि के चित्र चित्रित किये हुए थे। स्तम्भो पर वनी वज्ररत्न की वेदिका से युक्त होने के कारण वह रमणीय दिखाई पडता था। समान श्रेणी मे स्थित विद्याधरो के युगल यत्र द्वारा चलते दीख पड़ते थे। वह भवन हजारो किरणो से व्याप्त और हजारो चित्रो से युक्त होने के कारण देदीप्यमान और अतीव देदीप्यमान था। देखते ही दर्शक के नयन उसमे गड़ जाते थे। उसका स्पर्श सुखद था, और रूप शोभासम्पन्न था।

उस महल मे सुवर्ण, मणि एव रत्नो की स्तूपिकाए वनी हुई थी। उसका प्रधान शिखर नाना प्रकार की पांच वर्णो की एव घण्टाओ सहित पताकाओ से सुशोभित था। वह चहु ओर देदीप्यमान किरणो के समूह को फैला रहा था। वह लिपा हुआ था। घुला हुआ था और चदोवे से युक्त था। यावत् वह भवन गध की वर्त्ती जैसा जान पडता था। वह चित्त को प्रसन्न करने वाला, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप था—अतीव मनोहर था। (२३)

विशेष बोध—कलाचार्य ने राजकुमार मेघ को ७२ कलाओ में प्रवीण कर दिया। यह भारत की प्राचीन परम्परा है कि जीवन के प्रारम्भ मे ही वालक को वौद्धिक वल से सम्पन्न कर दिया जाता था। आज भी विश्व मे यही परम्परा प्रचलित है, मगर शिक्षा की प्राचीन पद्धति मे आजकल वहुत परिवर्त्तन हो चुका है। फिर भी शिक्षा की आवश्यकता निर्विवाद है। कवि कहता है—

सवसे प्रथम कर्त्तव्य है, शिक्षा वढाना देश मे,
शिक्षा विना ही पड़ रहे हैं, आज हम सव क्लेश मे।
शिक्षा विना कोई कभी, वनता नही सत्पात्र है,
शिक्षा विना कल्याण की आशा दुराशा मात्र है।

जेणामेव सेणिए राया तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल० अंजलि कट्टु एव वयासी—

एवं खलु ताओ ! मम पुव्वसगइएण सोहम्मकप्प-वासिणा देवेण खिप्पामेव सगज्जिया सविज्जुया पचवण्णमेह-णिणाओवसोहिया दिव्वा पाउससिरी विउव्विया, त विणेउ ण मम चुल्लमाउया धारिणी देवी अकालदोहल ।

तए ण से सेणिए राया अभयस्स कुमारस्स अतिए एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ० कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! रायगिह नयर सिघाड-गतियचउक्क चच्चर० आसित्तसित्त जाव सुगंधवरगधिय गधवट्टिभूय करेह य कारवेह य । करित्ता य कारावित्ता य मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।

तए ण ते कोडु बियपुरिसा जाव पच्चप्पिणति ।

तए ण से सेणिए राया दोच्चं पि कोडु बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! हयगयरहजोहपवरकलियं चउरगिणिं सेन्नं सन्नाहेह, सेयणग च गधहत्थि परिकप्पेह । तेवि तहेव जाव पच्चप्पिणति ।

तए ण से सेणिए राया जेणेव धारिणी देवी तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धारिणि देविं एव वयासी—

एवं खलु देवाणुप्पिए ! सगज्जिया जाव पाउससिरी पाउब्भूया, तुम देवाणुप्पिए ! एयं अकाल दोहलं विणेहि । (१६)

मूलार्थ—तत्पश्चात् दस के आधे अर्थात् पाँच वर्ण के तथा घु घरू वाले उत्तम वस्त्रो को धारण किया हुआ वह देव आकाश मे स्थित होकर अभयकुमार से इस प्रकार बोला—

यह एक प्रकार का गम-पाठ है। इसके स्थान पर दूसरा भी पाठ है। वह इस प्रकार है—

वह देव उत्कृष्ट, त्वरावाली, कायिक चपलता वाली, अति उत्कर्ष के कारण चण्ड, भयानक, दृढता के कारण सिंह जैसी, गर्व की प्रचुरता के कारण उद्धूत, शत्रु को जीतने वाली होने से जय करने वाली, छेक अर्थात् निपुणता वाली एवं दिव्य देवगति से जहाँ जम्बू-द्वीप था, भारतवर्ष था और जहा दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र था, जहाँ राजगृह नगर था और जहा पोषधशाला मे अभयकुमार था, वही आता है। आकर आकाश मे स्थित होकर पाँच वर्ण के तथा घु घरू वाले उत्तम वस्त्रो को धारण किए हुए देव अभयकुमार से इस प्रकार कहने लगा—

हे देवानुप्रिय ! मैं तुम्हारे पूर्वभव का मित्र, सौधर्म-कल्पवासी महान् ऋद्धि का धारक देव हूँ। क्योकि तुम पोषधशाला मे अष्टम-भक्त तप अगीकार करके मुझे मन मे स्मरण कर रहे हो, इस कारण हे देवानुप्रिय ! मैं यहाँ शीघ्र आया हूँ। देवानुप्रिय ! बताओ, तुम्हारा क्या इष्ट कार्य करूँ ? तुम्हे क्या दूँ ? तुम्हारे किसी सम्बन्धी को क्या दूँ ? तुम्हारा मनोवाञ्छित क्या है ?

तब अभयकुमार ने आकाश मे स्थित पूर्वभव के मित्र को देखा। देखकर वह हर्षित और सन्तुष्ट हुआ। पोषध का पारण किया अर्थात् उसे पूर्ण किया। फिर दोनो हाथ मस्तक पर जोडकर उसने इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिय ! मेरी छोटी माता धारिणी देवी को इस प्रकार का अकाल-दोहद उत्पन्न हुआ है कि वे माताएँ धन्य है यावत् मैं भी अपने दोहद को पूर्ण करूँ, इत्यादि सारा कथन पूर्ववत् यहा समझ

लेना चाहिए। तो हे देवानुप्रिय ! तुम मेरी छोटी माता धारिणी देवी के इस प्रकार के दोहद को पूर्ण कर दो।

पश्चात् वह देव अभयकुमार के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट होकर अभयकुमार से बोला—देवानुप्रिय ! तुम निश्चिन्त रहो और विश्वास रक्खो। मैं तुम्हारी लघु माता धारिणी देवी के इस प्रकार के दोहद की पूर्ति कर देता हूँ।

ऐसा कह कर देव अभयकुमार के पास से निकलता है। निकल कर उत्तर-पूर्व दिशा मे वैभारगिरि पर जाकर वैक्रिय समुद्घात करता है। समुद्घात करके सख्यात योजन का दण्ड निकालता है, यावत् दूसरी वार समुद्घात करता है। वह गर्जना से युक्त, बिजली से युक्त और जलविन्दुओ से युक्त पाँच वर्ण वाले मेघो की ध्वनि से शोभित दिव्य वर्षा ऋतु की लक्ष्मी की विक्रिया करता है। विक्रिया करके जहा अभयकुमार था वहाँ आता है। आकर अभयकुमार से इस प्रकार कहता है—

देवानुप्रिय ! इस प्रकार मैंने तुम्हारी प्रीति के लिए गर्जनायुक्त, विद्युत्-युक्त और जलबिन्दु युक्त पचवर्णा प्रावृट्-लक्ष्मी की विक्रिया की है। अत देवानुप्रिय ! तुम्हारी छोटी माता धारिणी देवी इस प्रकार के इस दोहद की पूर्ति करे।

तत्पश्चात् अभयकुमार उस सौधर्मकल्पवासी पूर्व-सागतिक देव से यह वात सुनकर, समझकर हृष्ट-तुष्ट होकर अपने भवन से बाहर निकलता है। निकल कर जहाँ श्रेणिक राजा है वहाँ आता है। आकर मस्तक पर दोनो हाथ जोड़कर इस प्रकार कहता है—

हे तात ! इस प्रकार मेरे पूर्वभव के मित्र सौधर्मकल्पवासी देव ने शीघ्र ही गर्जनायुक्त, विद्युत्-युक्त (और जलबिन्दुओ से युक्त, पाँच रगो के मेघो की ध्वनि से सुशोभित दिव्य वर्षाऋतु की विक्रिया की है। अत मेरी लघु माता धारिणी देवी अपने अकाल दोहद को पूर्ण करे।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा अभयकुमार से यह बात सुनकर और हृदय मे धारण करके हर्षित और सन्तुष्ट हुआ। यावत् उसने कौटुम्बिक पुरुषो (सेवको) को बुलवाया और बुलवाकर इस प्रकार कहा – देवानुप्रियो! शीघ्र ही राजगृह नगर मे शृंगाटक (सिंघाडे की आकृति के मार्ग), त्रिक (जहाँ तीन मार्ग मिले), चतुष्क (चौक) और चत्वर आदि को सींचकर यावत् उत्तम सुगध से सुवासित करके उन्हे गध की वट्टी के समान करो। ऐसा करके मेरी आज्ञा वापिस सौपो।

तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष आज्ञा का पालन करके यावत् उस आज्ञा को वापिस सौपते हैं, अर्थात् आज्ञा के अनुसार कार्य सम्पन्न कर देने की सूचना देते हैं।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा दूसरी बार कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाता है और बुलाकर इस प्रकार कहता है—देवानुप्रियो! शीघ्र ही अश्व-सेना, गजसेना, रथसेना और पदातिसेना अर्थात् चतुरगिणी सेना को तैयार कराओ और सेचनक नामक गन्धहस्ती को भी तैयार कराओ।

वे कौटुम्बिक पुरुष भी आज्ञा का पालन करके यावत् आज्ञा वापिस लौटाते है।

तत्पश्चात् वह श्रेणिक राजा जहाँ धारिणी देवी थी वहाँ आया। आकर धारिणी देवी से उसने इस प्रकार कहा—देवानुप्रिये! इस प्रकार गर्जनाध्वनि से युक्त यावत् प्रावृट् की सुषमा प्रादुर्भूत हुई है, अतएव हे देवानुप्रिये! तुम अपने दोहद की पूर्ति करो। (१६)

विशेष बोध—अभयकुमार की सेवा मे सौधर्म देवलोक का वैमानिक देव आया। वह अतीव सुन्दर और बारीक वस्त्र पहने था।

प्रश्न हो सकता है कि देव ने जिन वस्त्रो को धारण किया था वे देवदूष्य शाश्वत थे या अशाश्वत? वह उन्हे साथ लाया था, या उसने वहीं तैयार किए थे?

देवो के मर्त्यलोक मे आवागमन का उल्लेख आगमो मे अनेक स्थलो पर मिलता है। भगवान् के समवसरण मे सभी प्रकार के देव-

देवियो के समूह आया करते थे। इसके अतिरिक्त भी इन्द्र आदि भगवान् के विभिन्न कल्याणको के अवसर पर आते हैं। लौकान्तिक देव तीर्थङ्कर को दीक्षा के अवसर सबोधित करते हैं। ईशानेन्द्र का राजगृह मे आने का उल्लेख है।

प्राय सभी देवो के वस्त्रो के वर्णन मे 'अरयबरवत्थधरे' पद का प्रयोग देखा जाता है, जिसका अर्थ है–रजोहीन एव आकाश के समान स्वच्छ वस्त्रो को धारण करने वाले।

किन्तु इन वस्त्रो के निर्माण की चर्चा किसी आगम मे नही मिलती। प्रतीत होता है कि वैक्रिय लब्धि के बल से जैसे शरीर का नव निर्माण किया जाता है वैसे ही देव वस्त्रो का भी विक्रिया से ही निर्माण कर लेते हैं। देवलोक मे न कपडाबाजार है, न मिल्स् है। विक्रियालब्धि ही उनका प्रमुख आधार है। उसीसे उनके आभूषणो की भी पूर्ति होती है, यही मानना युक्तिसगत है।

"देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो।"

जिस मानव के निर्मल मानस-मन्दिर मे निरन्तर धर्म की ज्योति जगमगाती रहती है, देव, दानव और मानव, सभी उसके चरणो मे मस्तक झुकाते हैं।

अभयकुमार का बौद्धिक वैभव असाधारण था। फिर भी वह बुद्धि को ही नही, धर्म को भी भारी महत्त्व देता है। जिस निगूढ समस्या का समाधान बुद्धि के द्वारा सभव नही हो सका उसके समाधान के लिए राजकुमार अभय ने धर्म का आश्रय ग्रहण किया।

बुद्धि की अपेक्षा नीति और धर्म की भूमिका पर आनन्द का पौधा अधिक पनपता है।

देव सयम-धर्म का आराधन नही करते। देवगति मे चारित्रधर्म के लिए अवकाश नही है। मगर देवो को धर्म और धर्माराधक अवश्य प्रिय है। पूर्वभव का परिचित होने पर भी देव हर वार मिलने नही आता है, किन्तु धर्माराधना से सन्तुष्ट और प्रसन्न होकर

वह आने को तैयार होता है। अभयकुमार से देव ने कहा—तुमने धर्माराधन करके मुझे स्मरण किया है, अतएव मैं आया हूँ। अर्थात् पाप करके बुलाने पर मै न आता।

चक्रवर्ती भी तेला की तपश्चर्या करके देवो का आह्वान करते हैं।

जो लोग यज्ञ, होम या पशुवलि करके देवो का आह्वान करते हैं वे मूढ हैं। ऐसा करने से कोई उच्च श्रेणी के एव सम्यग्दृष्टि देव सन्तुष्ट या प्रसन्न नही हो सकते।

देवदर्शन होने पर अभयकुमार हर्षित हुआ और सन्तुष्ट भी हुआ, मगर उसने हाथ नही जोडे। उसने पहले पौषधव्रत का पारण किया अर्थात् उसको समाप्त किया। इसका मूल कारण यह है कि व्रती साधक व्रतावस्था मे अव्रती को वन्दन-नमस्कार नही करता।

यदि बुद्धि रूपी छलनी मे छानकर सोचा जाय तो प्रतीत होगा कि अभयकुमार व्रत की अवस्था मे जो हर्षित और सन्तुष्ट हुआ, उसका कारण भी यह था कि उसने दो करण और तीन योग से प्रत्याख्यान किया था। यदि तीन करण और तीन योग से मुनि के समान प्रत्याख्यान किया होता तो वह देवदर्शन होने पर भी समभाव ही धारण करता, हर्ष भी प्रकट न करता। वस्तुत. समभाव ही सच्ची साधना की कसौटी है।

दोहदपूर्त्ति के लिए जैसा अभयकुमार ने कहा वैसा ही देव ने कर दिया। उसने धारिणी की इच्छा के अनुसार विक्रिया द्वारा दिव्य प्रावृट्-श्री की विकुर्वणा कर दी। देव ने अभयकुमार को इसकी सूचना दी और अभयकुमार ने अपने पिता श्रेणिक को वही सूचना दे दी। श्रेणिक ने महारानी धारिणी को सूचित किया। यह है पारस्परिक प्रेम का सहज प्रमाण।

परिवार को स्वर्ग जैसा वनाना अथवा इस भूतल पर स्वर्ग को ले आना पारिवारिक जनो के सद्विवेक पर अवलम्वित है। परिवार

के सदस्य के दु ख को दूर करने का प्रयत्न करना और उसमे सहयोगी वनना, पारिवारिक सुख-शान्ति एव प्रसन्नता के लिए अत्यावश्यक है।

अभयकुमार का उदाहरण सामने है। इसी प्रकार का एक उदाहरण श्रीकृष्ण का जैनागमो मे मिलता है। उन्होने भी तेला की तपस्या करके हरिणगमेषी देव को अपनी माता की अभिलाषा की पूर्त्ति के लिए आहूत किया था।

अभयकुमार के उद्यम से श्रेणिक और धारिणी की खिन्नता दूर हो गई। परिवार मे शान्ति का सचार हुआ। (१६)

मूलपाठ—तए ण सा धारिणो देवो सेणिएणं रण्णा एव वुत्ता समाणो हट्ठतुट्ठा जेणामेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघर अणुपविसइ, अणुपविसित्ता अतो अतेउरंसि ण्हाया कयबलिकम्मा, कयकोउयमगलपायच्छित्ता, कि ते वरपायपत्तणेउर जाव आगासफलिहसमप्पभ असुय नियत्था। सेयणगं गधहत्थि दुरूढा समाणी अमयमहियफेणपुंजमणिगासाहिं सेयचामरवालवोयणीहिं वीइज्जमाणी वीइज्जमाणो सपत्थिया।

तए ण से सेणिए राया ण्हाए कयबलिकम्मे जाव सस्सिरीए हत्थिखधवरगए सकोरटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेण चउचामराहि वीइज्जमाणे धारिणो देवी पिट्ठओ अणुगच्छइ।

तए णं सा धारिणी देवी सेणिएण रण्णा हत्थिखधवरगएण पिट्ठतो पिट्ठतो समणुगम्ममाणमग्गा हय-गय-रह-जोहकलियाए चाउरगिणोए सेणाए सद्धि संपरिवुडा (ए) महया भडचडगरवदपरिक्खित्ता सव्विड्ढीए सव्वजुईए जाव दुदुभिनिग्घोसनादितरवेणं रायगिहे नयरे सिंघाडग-तिग-

चउक्कचच्चर जाव महापहेसु नागरजणेणं अभिनन्दिज्ज-माणा जेणामेव वेभारगिरिपव्वए तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वेभारगिरिकडगतडपायमूले आरामेसु य उज्जाणेसु य काणणेसु य वणेसु य वणसडेसु य रुक्खेसु य गुच्छेसु य गुम्मेसु य लयासु य वल्लीसु य कन्दरासु य दरीसु य चुंढीसु य दहेसु य कच्छेसु य नदीसु य सगमेसु य विवरएसु य अच्छमाणी य पेच्छमाणी य मज्जमाणी य पत्ताणि य पुप्फाणि य फलाणि य पल्लवाणि य गिण्हमाणी य माणे-माणी य अग्घमाणी य परिभुंजमाणी य परिभाए-माणी य वेभारगिरिपायमूले दोहलं विणेमाणी सव्वओ समंता आहिंडति ।

तए ण धारिणी देवी विणीतदोहला सपुन्नदोहला संपन्नदोहला जाया यावि होत्था ।

तए णं सा धारिणी देवी सेयणगगधहत्थि दुरूढा समाणी सेणिएण हत्थिखंधवरगएण पिट्ठओ पिट्ठओ समणुगम्ममाण-मग्गा हयगय जाव रहेणं जेणेव रायगिहे नगरे तेणेव उवा-गच्छइ, उवागच्छित्ता रायगिह नगरं मज्झ मज्झेण जेणामेव सए भवणे तेणामेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता विउलाइ माणुस्सगाइं भोगभोगाइ जाव विहरति । (१७)

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह धारिणी देवी श्रेणिक राजा के इस प्रकार् कहने पर हृष्ट-तुष्ट हुई और जहां स्नानगृह था, उसी ओर आई । आकर स्नानगृह में प्रवेश किया । प्रवेश करके अत पुर के अन्दर स्नान किया । वलिकर्म किया । कौतुक मगल और प्रायश्चित्त किया । फिर क्या किया ? वह कहते हैं—

उसने पैरो मे उत्तम नूपुर धारण किए, यावत् आकाश तथा

स्फटिक मणि के समान स्वच्छ वस्त्रो को धारण किया। वस्त्र धारण करके सेचनक नामक गधहस्ती पर आरूढ होकर अमृत-मन्थन से उत्पन्न हुए फेन के समूह के समान श्वेत चामर के बालो से बीजाती हुई वह रवाना हुई।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने धारिणी देवी का अनुगमन किया। वह स्नान किया हुआ था। उसने वलिकर्म किया था यावत् वह भी सुसज्जित होकर श्रेष्ठ गधहस्ती के स्कध पर आरूढ होकर कोरट वृक्ष के फूलो की माला वाले छत्र को धारण किए था। वह चार चामरो से वीजा जा रहा था।

श्रेष्ठ हाथी के स्कध पर बैठे हुए राजा श्रेणिक धारिणी देवी के पीछे-पीछे चले। धारिणी देवी अश्व, हाथी, रथ और योद्धाओ की चतुरगिनी सेना से परिवृत थी। उसके चारो ओर महान् सुभटो का समूह घिरा हुआ था।

इस प्रकार सम्पूर्ण समृद्धि के साथ, सम्पूर्ण धुनि के साथ यावत् दुदुभि के निर्घोष के साथ राजगृह नगर के शृ गाटक, त्रिक, चतुष्क और चत्वर आदि मे होकर यावत् राजमार्ग मे होकर निकली।

नागरिक जनो ने उसका पुन पुन. अभिनन्दन किया।

इसके पश्चात् वह जहाँ वैभारगिरि पर्वत था वहाँ पहु ची। पहुँच कर वैभारगिरि के कटक तट मे और तलहटी मे, दम्पतियो के क्रीडास्थान आरामो मे, पुष्प-फलो से सम्पन्न उद्यानो मे, सामान्य वृक्षो से युक्त काननो मे, नगर से दूरवर्त्ती वनो मे, एक जाति के वृक्षो के समूह वाले वनखण्डो मे, वृक्षो मे, वृन्ताकी आदि के गुच्छो मे, बांसो की झाडी आदि गुल्मो मे, आम्रादि लताओ मे, नागरवेल आदि की वल्लियो मे, गुफाओ मे, दरी (शृगालादि के रहने के गडहो मे) चुढी (विना खोदे आप वनी हुई जल की तलैया) मे, ह्रदो (तालावो) मे, अल्प जल वाले कच्छो मे, नदियो मे, नदियो के सगमस्थलो मे और अन्य जलाशयो मे अर्थात् इन सब के आस पास

खडी होती हुई, वहाँ के दृश्यो को देखती हुई, स्नान करती हुई, पत्रो पुष्पो फलो और कोंपलो को ग्रहण करती हुई, स्पर्श करके उनका मान करती हुई, पुष्पादि को सू घती हुई, फल आदि को भक्षण करती हुई एव दूसरो को वितरण करती हुई, वैभारगिरि के समीप की भूमि पर अपना दोहद पूर्ण करती हुई चारो ओर परिभ्रमण करने लगी।

इस प्रकार धारिणी देवी ने दोहद को दूर किया, दोहद को पूर्ण किया और दोहद को सम्पन्न किया।

तत्पश्चात् सेचनक नामक गन्धहस्ती पर आरूढ़ धारिणी देवी राजगृह नगर की ओर आई। श्रेष्ठ हाथी के स्कन्ध पर बैठे हुए राजा श्रेणिक उसके पीछे-पीछे चल रहे थे। वह अश्वसेना एव हाथियों आदि की सेना से घिरी थी। इस प्रकार वह राजगृह नगर के बीचोबीच हो कर जहाँ उसका अपना भवन है, वहाँ आती है। वहा आकर मनुष्य-सबधी विपुल भोगती भोग हुई विचरती है। (१७)

विशेष बोध—धारिणी देवी बडी तैयारी के साथ अपने दोहद को सम्पन्न करने चली। उसके पीछे-पीछे मगधसम्राट श्रेणिक चले। यह वर्णन नारीसम्मान का एक सजीव उदाहरण प्रस्तुत करता है। प्राचीनकाल मे नारी का स्थान समाज मे तनिक भी कम महत्त्व-पूर्ण नही था। उसे अर्धांगिनी का पद प्राप्त था। कवि की भाषा मे जहाँ नारी का सन्मान होता है वहाँ देवता—दिव्य पुरुष क्रीडा करते हैं—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते
रमन्ते तत्र देवताः।

श्रेणिक एक करोड़ और अस्सी लाख ग्रामो वाले मगध देश का का अधिपति था। वह राजनीति मे जैसे पारगत था वैसे ही धर्म-

नीति मे भी था। वह पत्नी की छह[1] विशेषताओ से परिचित था। उसने धर्मानुकूला और क्षमाधरित्री समझकर पत्नी को आगे रक्खा।

धारिणी देवी ने अनेक प्रकार के भूप्रदेशो मे सैर की। वह जिन वनप्रदेशो मे क्रीडा करने गई होगी, वे कितने सुन्दर एव नैसर्गिक सुषमा से मडित रहे होगे, यह कल्पना करना आसान नही। वास्तव में वहाँ का प्रकृतिसौन्दर्य असाधारण रहा होगा। देवनिर्मित उस सौन्दर्य का क्या ठिकाना !

रानी के द्वारा पुष्प सू घने, फल खाने, स्नान करने आदि से परिज्ञात होता है कि इस विषय मे रानी की अत्यधिक आसक्ति रही होगी। प्रश्न हो सकता है कि यह आसक्ति स्वय रानी की होगी अथवा गर्भ मे आए जीव की ? दोहद का अर्थ है—दो हृदय। एक माता का और दूसरा गर्भस्थ जीव (भ्रूण) का। लगता है, इन दो मे से भ्रूण की भावना ही अधिक बलवती होनी चाहिए। प्रकृति की गोद मे, वनो में विचरण करने वाले हाथी का जीव धारिणी के गर्भ मे आया था, अत वर्षाऋतु के प्राकृतिक दृश्य को देखने का दोहद उत्पन्न होना, उल्लिखित निष्कर्ष का पोषक है। हाथी को पानी वाले वनस्थल मे जाना सहज प्रिय होता है, इसी कारण यह दोहद उत्पन्न हुआ होगा। पूर्ण सत्य तो पूर्ण ज्ञानी ही जान सकते हैं। (१७)

मूलपाठ—तए ण से अभयकुमारे जेणामेव पोसहसाला तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुव्वसगतिक देव सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिवि-सज्जेति।

---

१ कार्येपु मन्त्री करणेपु दासी,
भोज्येपु माता सदनेपु रम्भा।
धर्मानुकूला क्षमया धरित्री,
भार्या च पाड्गुण्यवतीह दुर्लभा॥ —नीतिशतक

तए णं से देवे सगज्जियं पंचवण्णमेहोवसोहियं दिव्वं पाउससिरिं पडिसाहरति, पडिसाहरित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए। (१६)

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह अभयकुमार जहाँ पोपधशाला है वहाँ पहुँचता है। पहुँचकर पूर्वपरिचित देव का सत्कार-सन्मान करता है। सत्कार एव सन्मान करके उसे विदा करता है।

अभयकुमार द्वारा विदा किया हुआ वह देव गर्जना मे युक्त पंचरगी मेघो से सुशोभित उस दिव्य प्रावृट्-लक्ष्मी का प्रतिसहार करता है अर्थात् उसे समेट लेता है। प्रतिसहरण करके जिस दिशा से प्रकट हुआ था, उसी दिशा मे अर्थात् अपने स्थान पर चला गया। (१८)

विशेष बोध-अभयकुमार ने देव का सत्कार-सन्मान करके कृतज्ञता प्रकट की और जिस उद्देश्य से उसे बुलाया था, उसकी पूर्त्ति होने पर उसे विदा कर दिया। वह देव के मिलन के अवसर का अन्य लाभ भी चाह सकता था। अन्य याचना भी कर सकता था। मगर राजकुमार लोभी नही था। उसने याचना करना उचित नही समझा।

हम देखते हैं कि एक रोगी को देखने के लिए डाक्टर किसी के घर आता है तो आस-पास के रोगी उसको घेर लेते है। उस चौथे आरे मे ऐसा नही था। उस समय मे प्रामाणिकता की भूमिका बहुत ठोस थी। इसी कारण देवो का आगमन भी इतना दुष्कर नही था। इस पचम काल मे देवता मर्त्यलोक की तरफ आँख उठाकर भी नही देखते। कदाचित् कोई देव आ जाय तो लोभी लोग उसका पिण्ड न छोड़े और सैकडो प्रकार की अनुचित मागे उसके सामने पेश कर दे। वे माग भी एक दूसरी से इतनी विरोधी होगी कि देवता भी सोच-विचार मे पड़ जाएगा कि इन सब की पूर्त्ति कैसे की जाए ?

इस कलिकाल मे तो धर्म को ही देवता समझना चाहिए। वह इह-परलोक दोनो मे ही जनजीवन मे सुखशान्ति की सुधामयी मेघवर्षा करता है। (१८)

मूलपाठ—तए ण सा धारिणी देवी तंसि अकाल-दोहलसि विणीयंसि सम्माणियदोहला तस्स गब्भस्स अणुक-पणट्ठाए जय चिट्ठति, जय आसयति, जय सुवति, आहार पि य आहारेमाणी णाइतित्त, णातिकडुय, णातिकसाय, णातिअबिलं, णातिमहुरं, जं तस्स गब्भस्स हिय मियं पत्थय देसे य काले य आहार आहारेमाणी नाइचित, णाइ-सोग, णाइदेण्ण, णाइमोह, णाइभय, णाइपरित्तास, ववगयचिंता-सोग-मोह-भय-परित्तासा, उउभयमाणसुहेहिं भोयण-च्छायण-गंध-मल्ला-लकारेहि गब्भ सुहसुहेण परि-वहति। (१९)

मूलार्थ—तत्पश्चात् धारिणी देवी ने अपने उस अकाल-दोहद के पूर्ण होने पर दोहद को सम्मानित किया। वह उस गर्भ की अनुकम्पा के लिए (गर्भ को बाधा न पहुँचे इस प्रकार) यतना अर्थात् सावधानी से खडी होती, यतना से बैठती, उठती और यतना से शयन करती।

आहार करती हुई ऐसा आहार करती जो अधिक तीखा न हो, अधिक कटुक न हो, अधिक कसैला न हो, अधिक खट्टा न हो और अधिक मीठा भी न हो। देश और काल के अनुसार जो उस गर्भ के लिए हितकारक (वृद्धि एव आयुष्य आदि का कारण) हो, मित (परिमित एव इन्द्रियो को अनुकूल) हो, पथ्य (आरोग्य जनक) हो।

वह अति चिन्ता न करती, अति शोक न करती, अति दैन्य न करती, अति मोह न करती, अति भय न करती और अति त्रास नही करती। अर्थात् चिन्ता, शोक, मोह, भय और त्रास से रहित होकर

सव ऋतुओ मे सुखप्रद भोजन, वस्त्र, माला और अलकार आदि से सुखपूर्वक उस गर्भ का वहन करती है। (१६)

विशेष वोध—दोहद की पूर्त्ति करने को दोहद का सन्मान करना माना गया है। एक प्रकार से यह गर्भस्थ जीव का उपकार करता है।

जगत् मे उपकार करने वालो की अपेक्षा उपकार को उपकार के रूप मे स्वीकार करने वाले कम मिलेगे और उपकार के वदले प्रत्युपकार करने वाले तो और भी कम मिलेगे। किन्तु जो उपकार करके उसके वदले कृतज्ञता की अपेक्षा नही रखता और प्रत्युपकार की कामना नही करता अर्थात् जो निराकाक्ष भाव से, कर्त्तव्य समझ कर पर का उपकार करता है, वही उत्तम पुरुष है।

देवी धारिणी का दोहद अकालिक अर्थात् मौसिम के विरुद्ध होने के कारण ऐसा था कि उसकी पूर्त्ति होना अत्यन्त कठिन था। फिर भी पुण्य जिसके पल्ले होता है, उसकी सभी कामनाएँ सफल हो जाती है। धारिणीदेवी पुण्यशालिनी महिला थी, अतएव उसका मनोरथ पूर्ण हो सका।

रानी धारिणी नारीसमाज मे तप और त्याग की मूर्त्ति है। शक्ति और शोभा वढाने वाली है।

जैसे पनिहारी अपने मस्तक पर रक्खे जल-घट का ध्यान रखती है और मुनिजन अपनी साधना का ध्यान रखते हैं, उसी प्रकार विवेकशील माताएँ नौ मास पर्यन्त गर्भ का ध्यान रखती हैं। वे रात-दिन यह सोचती हैं कि मै अपने अगजात को सुखी वनाए रक्खूँ और किसी प्रकार का कष्ट न होने दूँ।

प्रकृति का यह विधान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि गर्भस्थित शिशु माता के आहार मे से अपने लिए आहार ग्रहण करता है किन्तु मल-मूत्र नही करता है। भगवती सूत्र मे कहा गया है कि गर्भस्थ जीव

आहार तो करता है परन्तु निहार नही करता । वह उतना ही आहार लेता है जितना पचा सके । वह भी रस रूप मे लेता है जिससे मल-मूत्र आदि खलभाग बनता ही नही है ।

माता के खान-पान का गर्भ पर प्रभाव पड़ता है । क्योकि माता द्वारा किये गये आहार का रस ही गर्भ का जीव ग्रहण करता है, अतएव माता को अधिक तीखा, कटुक, कसैला, खट्टा, मीठा आहार नही करना चाहिए । धारिणीदेवी ने इस तथ्य को समझा था और हित, मित एव पथ्य आहार ही किया था ।

भगवती सूत्र मे यह उल्लेख भी मिलता है कि जब माता सोती है तब गर्भ का जीव भी सोता है और जब माता जागती है तब गर्भ का जीव भी जागता है । अतएव माता को निद्रा एव जागरण के विषय मे भी सावधान रहना पडता है ।

अहो आश्चर्य ! उस दुनिया को आज हम भूल गए है । जब हम विचार के पखो से उस दुनिया मे (गर्भ की स्थिति) मे पहुँचते है तो विस्मय-विमुग्ध हो जाते है और इस दुनिया को भूल जाते हैं ।

माता का सन्तति पर कितना उपकार है ! इसीलिए शास्त्र भी उन्हे तीर्थरूप कहते हैं । वास्तव मे माता के उपकार का बदला चुकाना सरल नही, अत्यन्त कठिन है । (१६)

मूलपाठ—तए णं सा धारिणी देवी नवण्ह मासाण बहुपडिपुण्णाण अद्धट्ठमाणराइंदियाण विइक्कताण अद्ध-रत्तकालसमयसि सुकुमालपाणिपायं जाव सव्वंगसु दरग दारय पयाया ।

तए ण ताओ अगपडियारियाओ धारिणिं देविं नवण्ह मासाण जाव दारय पयाय पासति, पासित्ता सिग्घ तुरिय चवल वेइयं जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छन्ति उवा-गच्छित्ता सेणियं राय जएणं विजएण वद्धावेति, वद्धावेत्ता

करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

एवं खलु देवाणुप्पिया ! धारिणी देवी नवण्ह मासाण जाव दारयं पयाया। तं णं अम्हे देवाणुप्पियाणं पियं निवेएमो। पियं भे भवउ।

तए ण से सेणिए राया तासिं अगपडियारियाणं अंतिए एवमट्ठ सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ० ताओ अगपडियारियाओ महुरेहिं वयणेहिं विपुलेण य पुप्फ-गध-मल्ला-लकारेण सक्कारेति सम्माणेति, सक्कारित्ता सम्माणित्ता मत्थय-धोयाओ करेति, पुत्ताणुपुत्तियं वित्ति कप्पेति, कप्पित्ता पडिविसज्जेति।

तए णं से सेणिए राया कोडुंबियपुरिसे सद्दावेति, सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! रायगिहं नयरं आसित्त जाव परिगीय करेह, करित्ता चारगपरिसोहण करेह, करित्ता माणुप्पमाणवद्धणं करेह, एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह, जाव पच्चप्पिणंति।

तए ण से सेणिए राया अट्ठारस सेणीप्पसेणीओ सद्दावेति, सद्दावित्ता एव वयासी—

गच्छह ण तुब्भे देवाणुप्पिया ! रायगिहे नयरे अब्भि-तरबाहिरिए उस्सुक्क उक्कर अभडप्पवेस अदंडिमकुदडिम अधरिम अधारणिज्जं अणुद्धुयमुइंग अमिलायमल्लदामं गणियावरणाडइज्जकलियं अणेगतालायराणुचरित पमुइय-पक्कीलियाभिराम जहारिहं ठिइवडिय दसदिवसिय करेह। करित्ता एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह।

ते वि करेति, करित्ता तहेव पच्चप्पिणंति।

ने उसे शपथ भी दिला दी। तब विवस होकर रानी को अपनी व्यथा निवेदन करनी पडी। उसे अकाल मेघ का जो दोहद उत्पन्न हुआ था, वह रानी ने राजा को सुनाया। राजा ने उसे पूर्ण करने का आश्वासन तो दे दिया और ऐसा करना आवश्यक भी था, पर उसे यह नही सूझ रहा था कि उसकी पूर्ति किस प्रकार की जाय ? चारो प्रकार की बुद्धि मे से कोई भी बुद्धि कारगर नही हुई। तब वह स्वय गहरे सोच-विचार मे पड गया।

मूलपाठ—तयाणंतरं अभयकुमारे ण्हाए कयबलिकम्मे सव्वालंकारविभूसिए पायवन्दए पहारेत्थ गमणाए। तए णं से अभयकुमारे जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सेणियं राय ओहयमणसकप्पं जाव झियायमाणं पासइ, पासित्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—

अन्नया य मम सेणिए राया एज्जमाण पासइ, पासित्ता आढाइ, परिजाणाइ, सक्कारेइ, सम्माणेइ, आलवेइ, सलवेइ, अद्धासणेण उवणिमंतेइ, मत्थयंसि अग्घाइ। इयाणिं मम सेणिए राया णो आढाइ, णो परियाणाइ, णो सक्कारेइ, णो सम्माणेइ, णो इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुन्नाहिं ओरालाहिं वग्गूहिं आलवेइ सलवेइ, नो अद्धासणेण उवणिमंतेइ; णो मत्थयसि अग्घाइ य। किंपि ओहयमणसकप्पे झियायइ, त भवियव्व ण एत्थ कारणेण। त सेयं खलु मे सेणियं राय एयमट्ठं पुच्छित्तए। एवं सपेहेइ, सपेहित्ता जेणामेव सेणिए राया तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहिय सिरसावत्त मत्थए अंजलिं कट्टु जएण विजएण वद्धावेइ, वद्धावित्ता एवं वयासी—

तुब्भे ण ताओ ! अन्नया मम एज्जमाणं पासित्ता आढाह, परिजाणह जाव मत्थयंसि अग्घायह, आसणेणं उवणिमतेह। इयाणि ताओ ! तुब्भे ममं नो आढाह जाव नो आसणेणं उवणिमंतेह, किपि ओहयमणसंकप्पे जाव झियायह। तं भवियव्वं ताओ एत्थ कारणेणं, तओ तुब्भे मम ताओ ! एयं कारणं अगूहेमाणा असंकेमाणा अनिण्हवेमाणा अप्पच्छाएमाणा जहाभूयमवितहमसंदिद्धे एयमट्ठमाइक्खह। तए णं तस्स कारणस्स अंतगमणं गमिस्सामि।

तए णं से सेणिए राया अभएणं कुमारेणं एव वुत्तेसमाणे अभयकुमारं एव वयासी—एव खलु पुत्ता ! तव चुल्लमाउयाए धारिणीए देवोए तस्स गब्भस्स दोसु मासेसु अइक्कतेसु तइए मासे वट्टमाणे दोहलकालसमयंसि अयमेयारूवे दोहले पाउब्भवित्था—

धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ—तहेव निरवसेसं भाणियव्वं जाव विणिति।

तओ णं अह पुत्ता ! धारिणीए देवीए तस्स अकाल-दोहलस्स वहुहिं आएहिं य उवाएहिं जाव उप्पत्ति अवि-दमाणे ओहयमणसंकप्पे जाव झियाएमि, तुमं आगयंपि न जाणामि।

तए णं से अभयकुमारे सेणियस्स रन्नो अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठ जाव हियए सेणियं रायं एवं वयासी—मा णं तुब्भे ताओ ! ओहयमण जाव झियायह। अहण्ण तहा करिस्सामि जहा ण मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए

अयमेयारूवस्स अकालदोहलस्स मणोरहसंपत्ती भविस्सइ त्ति कट्टु सेणिय राय ताहि इट्ठाहि कंताहि जाव समासासेइ।

तए णं सेणिए राया अभएणं कुमारेण एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे जाव अभयकुमार सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता पडिविसज्जेइ। (१४)

मूलार्थ—तदनन्तर अभयकुमार स्नान करके, बलिकर्म (गृह-देवता का पूजन) करके यावत् समस्त अलकारो से विभूषित होकर श्रेणिक राजा के चरणो मे वन्दना करने के लिए रवाना होता है। तत्पश्चात् अभयकुमार जहा श्रेणिक राजा है वहा आता है। आकर के श्रेणिक राजा को अपहृतमन. सकल्प वाला यावत् चिन्तातुर देखता है।

यह देखकर अभयकुमार के मन मे इस प्रकार का आध्यात्मिक अर्थात् आत्मा-सम्बन्धी चिन्तित प्रार्थित (प्राप्त करने को इष्ट) और मनोगत-मन मे ही रहा हुआ विचार उत्पन्न होता है—

अन्य समय श्रेणिक राजा मुझे आता देखते थे, तो देखते ही आदर करते थे। अच्छा अनुभव करते थे, वस्त्रादि से सत्कार करते, आसनादि देकर सम्मान करते और आलाप-सलाप करते थे। आधे आसन पर बैठने के लिए निमत्रण करते थे और मेरे मस्तक को सू घते थे। किन्तु आज श्रेणिक राजा मुझे न आदर दे रहे हैं, न आया जान रहे हैं। न सत्कार करते है, न सम्मान करते है, न इष्ट कान्त प्रिय मनोज्ञ और उदार वचनो से आलाप सलाप करते है, न अर्ध आसन पर बैठने के लिए निमत्रण करते हैं और न मस्तक को सू घते ही है। उनके मन के सकल्पो को कुछ आघात पहु चा है, वे चितातुर हो रहे हैं। इसका कुछ कारण होना चाहिए। राजा श्रेणिक से मुझे यह बात पूछना श्रेय (योग्य) है।

अभयकुमार इसप्रकार विचार करता है और फिर श्रेणिक राजा जहा थे वहाँ पहु चता है। दोनो हाथ जोडकर मस्तक पर आवर्त्तन करके, अजलि करके जय-विजय से वधाता है। वधा कर इस प्रकार कहता है—

हे तात ! आप अन्य समय मुझे आता देखकर आदर करते, भला जानते यावत् मेरे मस्तक को सू घते थे और आसन पर वैठने के लिए निमन्त्रित करते थे, किन्तु तात ! आज आप मुझे आदर नही दे रहे है, यावत् आसन पर वैठने के लिए निमन्त्रित नही कर रहे हैं। अपहतमन· सकल्प होकर चितातुर हो रहे हैं। इसका कोई कारण होना चाहिए। तो, हे तात ! आप इसके कारण को मुझसे छिपाये विना, किसी प्रकार की शंका न करते हुए, उसका अपलाप न न करते हुए, उसे दवाए विना जो हो सो सत्य और सन्देहरहित कहिए। तब मैं उस कारण का पार पाने का प्रयत्न करू गा।

तब अभयकुमार के इस प्रकार कहने पर श्रेणिक राजा ने अभय कुमार से इस प्रकार कहा—पुत्र ! तुम्हारी छोटी माता धारिणीदेवी को गर्भस्थिति हुए दो मास वीत गए और तीसरा मास चल रहा है। इस दोहद-काल के समय उसे इस प्रकार का दोहद उत्पन्न हुआ है—वे माताएँ धन्य है, इत्यादि पूर्ववत् दोहद का वर्णन कह लेना चाहिए, यावत् जो माताए अपने दोहद को पूर्ण करती हैं। पुत्र ! अव मैं धारिणीदेवी के उस अकाल-दोहद के आय, उपाय एव उत्पत्ति को अर्थात् उसकी पूर्ति के उपाय को नही समझ पा रहा हूं। इससे मेरे मन का सकल्प नष्ट हो गया है और मैं चिता कर रहा हूँ। इस कारण मैने तुम्हारा आना भी नही जाना। पुत्र ! इसी कारण मैं नष्ट हुए मन संकल्प वाला हो गया हूँ।

तत्पश्चात् अभयकुमार श्रेणिक राजा से यह अर्थ सुनकर और समझकर हृष्ट-तुष्ट यावत् आनन्दितहृदय हुआ। उसने श्रेणिक

राजा से इस प्रकार कहा—हे तात ! आप भग्नमनोरथ होकर यावत् चिन्ता न करे। मै वैसा (कोई उपाय) करूगा, जिससे मेरी छोटी माता धारिणीदेवी के इस अकाल-दोहद के मनोरथ की पूर्ति होगी। इस प्रकार कहकर (अभयकुमार ने) इष्ट, कान्त यावत् मनोहर वचनो से श्रेणिक राजा को सान्त्वना दी।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा अभयकुमार के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट हुआ। वह अभयकुमार का सत्कार-सन्मान करता है और सत्कार-सन्मान करके उसे विदा करता है। (१४)

विशेष बोध—अभयकुमार कुलदेवता का पूजन करता है और फिर पिता के चरणवन्दन के लिए जाता है। ज्ञात होता है, कुलदेवता का पूजन करना उस काल की कुलपरम्परा रही है। इस पूजन का क्या रूप था, इसका ब्यौरा शास्त्रो मे कही उपलब्ध नही होता। तथापि आधुनिक काल की भाति पूजा की परम्परा उस समय नही थी, यह बात निस्सन्देह कही जा सकती है।

जैन और जैनेतर भारतीय साहित्य मे माता-पिता की बहुत महत्ता स्वीकार की गई है। उसी का एक भव्य चित्र इस सूत्र मे दृष्टिगोचर होता है। राजकुमार अभय, महाराज श्रेणिक के चरणो मे प्रणाम करने के लिए जाते है। यह उसका प्रतिदिन का कर्त्तव्य है, यह बात सूत्र को ध्यानपूर्वक पढने से स्पष्ट हो जाती है।

सुपुत्र वही कहलाता है जो कुलदीपक होने के साथ माता-पिता को सब प्रकार से सन्तुष्ट और सुखी बनाने का यत्न करता है। उनके दु ख मे दुखी होता है, यही नही, वरन् उस दु ख के प्रतीकार की भी चेष्टा करता है। अभयकुमार ने सच्चे सपूत का आदर्श उपस्थित किया है।

पिता को चिन्ताग्रस्त देखकर वह स्वय चिन्तित हो उठता है और उनकी चिन्ता का कारण जानने को आतुर हो जाता है। आखिर

श्रेणिक उसे अपनी मनोव्यथा कह सुनाते हैं और अभयकुमार उस व्यथा को दूर करने का आश्वासन देता है। किसी ने ठीक कहा है—

मा-बाप जे करता हुकम, ते हाथ जोड़ी सांभले,
पछि प्रीति थी ने चित्त थी, आज्ञा चढावे सिर परे।
मा वापना हुकमो वजावे, हृदय थी ते दीकरा,
वाकी वधा भागेल काचा, हांडलाना ठीकरा!
जी जी करी उत्तर वदे ने विनय ने अंगे धरी,
उत्थापनाना वैन कदिये एक पण जाये मरी।
मा-वाप ने लेखे सदा ये देवसम ते दीकरा,
वाकी वधा भागेल काचा हाडलाना ठीकरा।

मूलपाठ—तए णं से अभयकुमारे सक्कारिय-सम्माणिय-पडिविसज्जिए समाणे सेणियस्स रन्नो अंतियाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणामेव सए भवणे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणे निसन्ने। तए णं तस्स अभयकुमारस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—

नो खलु सक्का माणुस्सएणं उवाएणं मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अकालदोहलमणोरहसपत्ती करित्तए, णन्नत्थ दिव्वेण उवाएणं। अत्थि णं मज्झ सोहम्मकप्पवासी पुव्वसंगइए देवे महिड्ढिए जाव महासोक्खे, तं सेयं खलु मम पोसहसालाए पोसहियस्स बंभयारिस्स उम्मुक्कमणिसुवण्णस्स ववगयमालाविलेवणस्स णिक्खित्तसत्थमुसलस्स एगस्स अबीयस्स दब्भसंथारोवगयस्स अट्ठमभत्त परिगिण्हित्ता पुव्वसंगइयं देव मणसि करेमाणस्स विहरित्तए। तए णं पुव्वसगइए देवे मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए

अयमेयारूवं अकालमेहेसु डोहलं विणेहिइ। एव सपेहेइ, सपेहित्ता जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ।

उवागच्छित्ता पोसहसाल पमज्जइ, पमज्जित्ता उच्चार-पासवणभूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता दब्भसथारग दुरूहइ, दुरूहित्ता अट्ठमभत्तं परिगिण्हइ, परिगिण्हित्ता पोसहसालाए पोसहिए बभयारी जाव पुव्वसगइय देव मणसि करेमाणे २ चिट्ठइ।

तए ण तस्स अभयकुमारस्स अट्ठमभत्ते परिणममाणे पुव्वसगइअस्स देवस्स आसण चलइ। तए ण पुव्वसंगइए सोहम्मकप्पवासी देवे आसण चलिय पासइ, पासित्ता ओहिं पउजइ। तए णं तस्स पुव्वसगइअस्स देवस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—एव खलु मम पुव्वसंगइए जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे दाहिणड्ढभरहे वासे रायगिहे णयरे पोसहसालाए पोसहिए अभए नाम कुमारे अट्ठमभत्त परिगिण्हित्ता मम मणसि करेमाणे २ चिट्ठइ। त सेय खलु मम अभयस्स कुमारस्स अतिए पाउब्भूएत्तए। एव सपेहेइ सपेहित्ता उत्तरपुरत्थिम दिसीभाग अवक्कमइ, अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएण समोहणइ, समोहणित्ता संखेज्जाइ जोयणाइ दड निसिरइ, तजहा—

रयणाण (१) वइराण (२) वेरुलियाण (३) लोहियक्खाण (४) मसारगल्लाण (५) हंसगब्भाण (६) पुलगाण (७) सोगधियाण (८) जोइरसाण (९) अकाणं (१०) अजणाण (११) रययाण (१२) जायरूवाण (१३) अजणपुलगाण (१४) फलिहाण (१५) रिट्ठाण (१६)

अहाबायरे पोग्गले परिसाडेइ, परिसाडित्ता अहासुहुमे पोग्गले परिगिण्हइ। परिगिण्हित्ता अभयं कुमारमणुकपमाणे देवे पुव्वभवजणियणेह-पीइ-बहुमाणजायसोगे, तओ विमाणवरपु डरीयाओ रयणुत्तमाओ धरणियलगमणतुरियसजणियगमणपयारे वाघुण्णिय विमलकणगपयरगवडिसगमउडुक्कडाडोवउवदसणिज्जे अणेगमणिकणगरययपहकरपरिमंडियभत्तिचित्तविणिउत्तगमणु गुणजणियहरिसे पेखोलमाणवरललियकु डलुज्जलिय वयणगुणजणियसोम्मरूवे उदितो विव कोमुईनिसाए सणिच्छरंगारउज्जलियमज्झभागत्थणयणाणंदे सरयचदे दिव्वोसहिपज्जलुज्जलियदंसणाभिरामे उउलच्छीसमत्तजायसोहे पइट्ठगंधुद्धुयाभिरामे मेरुविव नगवरे विगुव्वियविचित्तवेसे दीवसमुद्दाणं असंखपरिमाणनामधेज्जाणं मज्झंकारेण वीइवयमाणे उज्जोयंते पभाए विमलाए जीवलोग रायगिहं पुरवरं च अभयस्स य तस्स पासं ओवयइ दिव्वरूवधारी। (१५)

मूलार्थ—तत्पश्चात् (श्रेणिक राजा द्वारा) सत्कारित एव सन्मानित होकर विदा किया हुआ वह अभयकुमार श्रेणिक राजा के पास से निकलता है। निकलकर जहाँ अपना भवन है वहाँ आता है। आकर सिंहासन पर बैठता है।

तत्पश्चात् उस अभयकुमार को इस प्रकार का यह आध्यात्मिक (आन्तरिक) सकल्प उत्पन्न हुआ—दिव्य अर्थात् देव सम्बन्धी उपाय के विना केवल मानवीय उपाय से मेरी छोटी माता धारिणी देवी के अकालदोहद के मनोरथ की पूर्त्ति होना शक्य नही है। सौधर्म कल्प का निवासी देव मेरा पूर्व का मित्र है, जो महान् ऋद्धि का धारक यावत् महान् सुख भोगने वाला है। अतएव मेरे लिए यह श्रेयस्कर

है कि मैं पोषधशाला मे पोषध ग्रहण करके, ब्रह्मचर्य धारण करके, मणि-सुवर्ण आदि के अलकारो का त्याग करके, माला वर्णक एवं विलेपन का त्याग करके, शस्त्र मूसल आदि को अर्थात् समस्त आरभ-समारभ को छोड़कर एकाकी (राग-द्वेष से रहित) और अद्वितीय (सेवक आदि की सहायता से रहित) होकर, डाभ के सथारे पर स्थित होकर, अष्टमभक्त—तेला की तपस्या ग्रहण करके, पहले के मित्र देव का मन मे चिन्तन करता हुआ रहूँ। ऐसा करने से वह पूर्व का मित्र देव (यहाँ आकर) मेरा छोटी माता धारिणी देवी के इस अकाल-मेघ-सबधी दोहद को पूर्ण कर देगा।

अभयकुमार इस प्रकार विचार करता है। विचार करके जहाँ पोषधशाला है वहाँ आता है। आकर पोषधशाला का प्रमार्जन करता है। प्रमार्जन करके उच्चार-प्रस्रवण की भूमि का प्रतिलेखन करता है। प्रतिलेखन करके डाभ के सथारे का प्रतिलेखन करता है। डाभ के सथारे का प्रतिलेखन करके उस पर आसीन होता है। आसीन होकर अष्टमभक्त तप ग्रहण करता है। ग्रहण करके पोषधशाला मे पोषधयुक्त होकर, ब्रह्मचर्य अगीकार करके यावत् पूर्व-मित्र देव का मन मे पुन -पुन चिन्तन करता है।

तत्पश्चात अभयकुमार का अष्टमभक्त तप प्राय पूर्ण होने को आया, तब पूर्वभव के मित्र देव का आसन चलायमान हुआ। तब पूर्व-मित्र सौधर्मकल्पवासी देव अपने आसन को चलित हुआ देखता है और देखकर अवधिज्ञान का उपयोग लगाता है। तब उस पूर्व-मित्र देव को इस प्रकार का आन्तरिक विचार उत्पन्न होता है—

मेरा पूर्वभव का मित्र अभयकुमार जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे, भारतवर्ष के दक्षिणार्ध भरत मे, राजगृह नगर मे, पोषधशाला मे अष्टमभक्त तप ग्रहण करके मन मे बार-बार मेरा स्मरण कर रहा है। अतएव मुझे अभयकुमार के निकट प्रकट होना चाहिए।

देव इस प्रकार विचार करके उत्तर-पूर्व दिग्भाग (ईशान कोण) मे जाता है और वैक्रिय समुद्घात से समवहत होता है, अर्थात् उत्तरवैक्रिय शरीर बनाने के लिए जीवप्रदेशो को बाहर निकालता है। जीव-प्रदेशो को बाहर निकालकर सख्यात योजन का दड बनाता है। वह इस प्रकार है—

(१) कर्केतनरत्न (२) वज्ररत्न (३) वैडूर्यरत्न (४) लोहिताक्षरत्न (५) मसारगल्लरत्न (६) हसगर्भरत्न (७) पुलकरत्न (८) सौगन्धिकरत्न (९) ज्योतिरसरत्न (१०) अंकरत्न (११) अजनरत्न (१२, रजतरत्न (१३) जातरूपरत्न (१४) अजनपुलकरत्न (१५) स्फटिकरत्न, और (१६) रिष्टरत्न।

इन रत्नो के यथाबादर अर्थात् असार पुद्गलो का परित्याग करता है। परित्याग करके यथासूक्ष्म अर्थात् सारभूत पुद्गलो को ग्रहण करता है। ग्रहण करके (उत्तर वैक्रिय शरीर बनाता है।) फिर अभयकुमार पर अनुकम्पा करता हुआ पूर्वभव मे उत्पन्न हुई स्नेहजनित प्रीति के कारण और गुणानुराग के कारण (वियोग का विचार करके) वह खेद करने लगा। फिर उस देव ने रचना से अथवा रत्नो से उत्तम विमान से निकलकर पृथ्वीतल पर जाने के लिए शीघ्र ही गति का प्रचार किया अर्थात् वह शीघ्रतापूर्वक चल पड़ा।

उस समय चलायमान होते हुए निर्मल स्वर्ण के प्रतर जैसे कर्णपूर और मुकुट के आडम्बर से वह दर्शनीय लग रहा था। अनेक मणियो एव स्वर्ण और रत्नो के समूह से शोभित और विचित्र रचना वाले पहने हुए कटिसूत्र से उसे हर्ष उत्पन्न हो रहा था अथवा वह हर्ष उत्पन्न कर रहा था। हिलते हुए श्रेष्ठ और मनोहर कुण्डलों से उज्ज्वल मुख की दीप्ति से उसका रूप बडा ही सौम्य हो गया था। कार्तिकी पूर्णिमा की रात्रि मे शनि और मगल के मध्य मे स्थित

और उदय प्राप्त शारद निशाकर के समान वह देव दर्शको के नयनो को आनन्द दे रहा था।

तात्पर्य यह है कि शनि और मगल ग्रह के समान चमकते हुए दोनो कुण्डलो के बीच मे उसका मुख शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान शोभायमान हो रहा था। दिव्य औषधियो (जडी बू टियो) के प्रकाश के समान मुकुट आदि के तेज से देदीप्यमान रूप से मनोहर समस्त ऋतुओ की लक्ष्मी से वृद्धिगत शोभा वाले तथा प्रकृष्ट गध के प्रसार से मनोहर मेरुपर्वत के समान वह देव अभिराम प्रतीत होता था। उस देव ने ऐसे विचित्र वेश की विक्रिया की। वह असख्यसख्यक और असख्य नामो वाले द्वीपो और समुद्रो मे होकर जाने लगा। अपनी विमल प्रभा से जीवलोक को तथा नगरवर राज-गृह को प्रकाशित करता हुआ दिव्यरूपधारी देव अभयकुमार के समीप आ पहुँचा। (१५)

विशेष बोध—अभयकुमार एकान्त मे बैठकर अपनी निर्मल और विशद बुद्धि से विचार करने लगा। उसके सामने आज एक ऐसी गहन समस्या थी जिसे सुलझाना वहुत कठिन था। विना मौसिम वर्षाऋतु का परिपूर्ण दृश्य उपस्थित कर देना मानवीय सामर्थ्य से बाहर है। फिर भी वह पिता के समक्ष इस समस्या का समाधान करने की प्रतिज्ञा कर चुका है। महापुरुष जो प्रतिज्ञा कर लेते हैं, उससे विचलित नही होते। अपना सर्वस्व निछावर करके भी उसका निर्वाह करना अपना कर्त्तव्य मानते हैं। किन्तु यह प्रतिज्ञा साधारण प्रतिज्ञा नही है। इसका पालन किस प्रकार किया जाय ?

समस्या असाधारण थी तो अभयकुमार के पास वुद्धि-वैभव भी असाधारण था। मनुष्य की वुद्धि क्या नही कर सकती ? फिर अभयकुमार तो वुद्धि का निधान था और साथ ही मातृ-पित भक्ति

एवं कर्त्तव्य भावना उसकी सजीव थी। अतएव एकान्त मे वैठकर वह उसके विषय मे विचार करने लगा।

एकान्त विचारशक्ति को वल प्रदान करता है। चित्त की एकाग्रता मे सहायक होता है! कोलाहलमय वातावरण मे विचार गतिशील नही हो पाते और न उनमे गहराई आ पाती है। एकान्त विचारशील पुरुष के लिए वरदान है। इसी कारण साधक एकान्त का आश्रय लेते है।

एकान्त मे आकर विचार करने पर राजकुमार अभय की वुद्धि का चमत्कार वढ गया। सहसा उसे अपने पूर्वभव के साथी का, जो इस समय देवपर्याय मे सौधर्म देवलोक में था, स्मरण हो आया। वह समझ गया था कि समस्या का समाधान दैविक शक्ति से ही संभव है, अतएव देव की सहायता लेना ही उपयुक्त है।

प्रथम तो स्वर्गवासी मित्र की पहिचान रखना और पता लगाना ही कठिन होता है। किसी प्रकार पता लग भी जाय तो उसके साथ सम्वन्ध स्थापित करना और भी कठिन। मगर अभयकुमार ने यह सव करने की विधि निकाल ही ली।

वह अष्टमभक्त की तपश्चर्या अगीकार करके पोषधशाला मे दर्भ के सस्तारक पर आसीन होकर, एकाग्रमना होकर उस देव का पुन पुन स्मरण करने लगा।

आज तार, टेलीफोन और वेतार के तार द्वारा दूरी पर स्थित व्यक्ति के साथ सम्पर्क स्थापित किया जाता है, किन्तु अभयकुमार ने मनोयोग के द्वारा देव के साथ सम्वन्ध जोडा। भारतवर्ष मे प्राचीन काल मे, आध्यात्मिक शक्ति का विकास किस सीमा तक हो चुका था, उसका यह एक साधारण निदर्शन है।

पुन. पुन. किये गये चिन्तन का प्रभाव देव के मन पर हुआ। तपश्चर्या के अलौकिक तेज से उसका चिन्तन तीव्र प्रभाववान् वन गया था। यथार्थ कहा गया है—

"देवा वि त नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो"

विशुद्ध हृदय से किए गए चिन्तन एव तपश्चरण के प्रभाव से कोटि-कोटि योजन दूर पर रहे हुए देव का आसन भी हिल गया। आसन हिलने पर देव विस्मित होकर इधर-उधर देखने लगा। जब उसे आसन हिलने का कोई कारण दृष्टिगोचर नही हुआ तो उसने अवधि ज्ञान का प्रयोग किया। उससे उसे दूर-दूर तक के रूपी पदार्थ दिखने लगे। उसे अपना वह सच्चा मित्र (अभयकुमार) दिखाई दिया।

देव ने सोचा—मेरा मित्र मर्त्यलोक मे है। मर्त्यलोक यहाँ से वहुत दूर है। वहाँ यहाँ जैसी स्वच्छता और सुन्दरता नही। चमक-दमक नही।

अवधिज्ञान से उसने मानव ससार के अनेक दृश्य और चरित्र देखे। कही मुर्दे जल रहे है, कही दफनाये जा रहे हैं, कही पडे सड रहे हैं। नगरो और ग्रामो मे सन्तति उत्पन्न होने से बदबू फैल रही है। पशुओ के अस्थिपजरो से निकलती हुई दुर्गन्ध वातावरण को गन्दा वना रही है। मानव-शरीर से निकले मल, मूत्र आदि अशुचि पदार्थ अलग ही गन्दगी बिखेर रहे है। ऐसे दुर्गन्धमय अशुचि वायु-मण्डल में असली शरीर से जाना कठिन है।

तब देव अपने आसन से उठा। उसने उत्तर विक्रिया करके अपना दूसरा शरीर बनाने का निश्चय किया। वह ईशान कोण मे गया।

उत्तर वैक्रिय शरीर के निर्माण की प्रक्रिया का सक्षेप मे इस सूत्र मे दिग्दर्शन कराया गया है। यह प्रक्रिया वैज्ञानिको के लिए मननीय है। देव ने सोलह प्रकार के रत्नो के सारभूत पुद्‌गलो को ग्रहण करके वैक्रिय शरीर का निर्माण किया। शरीर-निर्माण की यह प्रक्रिया यदि आज ठीक तरह समझ मे आ सके तो प्रकृति के अनेक गुह्य रहस्य प्रकट हो सकते हैं।

शका—क्या आधुनिक टेलीवीजन और विक्रिया शक्ति मे कोई समानता है ? क्या मानव की वैज्ञानिक दौड देव-गति से होड़ कर सकती है ?

समाधान—आज का मानव विज्ञान के वल पर चाहे जितनी दौड-भाग क्यो न करे, वह देव के समान कार्य-क्षमता प्राप्त नही कर सकता । यदि आज मनुष्य चन्द्रतल पर पहुँच गया तो क्या वड़ी बात है ! चन्द्रमा तो तिर्छेलोक मे ही है ।

जैनशास्त्रो के अनुसार मध्यलोक १८०० योजन का है। इस समतल भूमि से ९०० योजन ऊपर तक और ९०० योजन नीचे तक इसका विस्तार है। ७९० योजन की ऊंचाई पर तारा मण्डल है। तारा मण्डल से दस योजन ऊपर सूर्यविमान है। सूर्यविमान से ८० योजन ऊपर चन्द्रमा है। चन्द्रमा से चार योजन ऊपर नक्षत्र हैं। नक्षत्रो से चार योजन ऊपर ग्रह, उनसे चार योजन ऊपर वुध, उससे तीन योजन ऊपर शुक्र, उससे तीन योजन की ऊंचाई पर मगल और मंगल से तीन योजन ऊपर शनि का तारा है।

चार हजार कोस का एक योजन माना गया है। शनि विमान की ऊंची ध्वजा पर्यन्त मध्यलोक माना गया है ।

वह देवता स्वर्ग से तुरन्त चल पडा। मार्ग मे इतने द्वीप-समुद्र आए कि उनकी संख्या का पार नही ।

जैनदर्शन के अनुसार मध्यलोक मे असख्य द्वीप और असख्य सागर है। जहाँ हमारा निवास है, वह जम्बूद्वीप कहलाता है। यह द्वीप इन सव के मध्य मे है। इसे चारो ओर से घेरे हुए लवण समुद्र है। लवण समुद्र को वेष्टित करके घातकी खण्ड नामक द्वीप स्थित है।[1]

---

१ एक वार पाँच पाण्डवो को रानी द्रोपदी को पद्मोत्तर राजा देवता के द्वारा उठवाकर धातकी खण्ड ले आया था। फिर श्रीकृष्ण जी और ५ पाण्डव जाकर युद्ध मे विजय प्राप्त कर द्रोपदी को वापस ले आये। वह वही धातकी खण्ड है।

धातकी खण्ड के चारो ओर कालोदधि समुद्र है। उसके बाद पुष्कर द्वीप है। यो एक द्वीप और एक समुद्र के क्रम से असख्य द्वीप और समुद्र हैं। सभी द्वीप और समुद्र चूडी की तरह गोलाकार है। उनका विस्तार दुगुना-दुगुना होता चला गया है। उन सबके अन्त मे स्वयभूरमण द्वीप और स्वयभूरमण समुद्र है। इस अन्तिम समुद्र से ११२१ योजन की दूरी से अलोक आरम्भ हो जाता है। इन द्वीप-समुद्रो मे से अनेको को पार करके देव राजगृह नगर मे अभय कुमार के निकट आया। (१५)

मूलपाठ—तए ण से देवे अंतलिक्खपडिवन्ने दसद्धवण्णाइ सखिखिणियाइं पवरवत्थाइ परिहिए एक्को ताव एसो गमो, अण्णो वि गमो—

ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए सीहाए उद्धुयाए जइणीए छेयाए दिव्वाए देवगईए जेणामेव जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे जेणामेव दाहिणद्धभरहे रायगिहे नयरे पोसहसालाए अभये कुमारे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अतलिक्खपडिवन्ने दसद्धवण्णाइ सखिखिणियाइं पवरवत्थाइ परिहिए अभय कुमार एव वयासी—

अहण्ण देवाणुप्पिया! पुव्वसगइए सोहम्मकप्पवासी देवे महिड्ढिए, जण्ण तुम पोसहसालाए अट्ठमभत्त पगिण्हित्ताण मम मणसि करेमाणे चिट्ठसि त एस ण देवाणुप्पिया! अहं इह हव्वमागए। सदिसाहि ण देवाणुप्पिया! कि करेमि? किं दलयामि? किं पयच्छामि? किं वा ते हियइच्छिय?

तए ण से अभयकुमारे त पुव्वसगइय देव अतलिक्खपडिवन्न पासित्ता हट्ठतुट्ठे पोसह पारेइ, पारित्ता करयल-सपरिग्गहिय अजलिं कट्टु एवं वयासी—

एव खलु देवाणुप्पिया ! मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूवे अकालडोहले पाउब्भूए धण्णाओ ण ताओ अम्मयाओ, तहेव पुव्वगमेण जाव विणिज्जति । तण्ण तुम देवाणुप्पिया ! मम चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूव अकालडोहलं विणेहि ।

तए णं से देवे अभएणं कुमारेण एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ० अभयकुमारं एवं वयासी—

तुमण्ण देवाणुप्पिया ! सुणिव्वुय-वीसत्थे अच्छाहि, अहण्ण तव चुल्लमाउयाए धारिणीए देवीए अयमेयारूव दोहलं विणेमि त्ति कट्टु अभयस्स कुमारस्स अंतियाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता उत्तरपुरत्थिमेण वेभार-पव्वएण वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ, समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निस्सरइ । जाव दोच्चंपि वेउव्विय-समुग्घाएणं समोहणइ, समोहणित्ता खिप्पामेव सगज्जियं सविज्जुयं सफुसिय तं पंचवण्णमेहणिणाओवसोहियं दिव्वपाउससिरिं विउव्वेइ, विउव्वित्ता जेणेव अभय कुमारे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अभयं कुमार एवं वयासी—

एव खलु देवाणुप्पिया ! मए तव पियट्ठयाए सगज्जिया सविज्जुया सफुसिया दिव्वा पाउससिरी विउव्विया । तं विणेउ णं देवाणुप्पिया ! तव चुल्लमाउया धारिणी देवी अयमेयारूव अकालडोहलं ।

तए णं से अभयकुमारे तस्स पुव्वसंगइयस्स देवस्स सोहम्मकप्पवासिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठ-तुट्ठे सयाओ भवणाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता

भारतीय प्राचीन साहित्य मे भी स्वप्न के विषय मे अच्छा उल्लेख मिलता है। पहले[1] अनुभव की हुई, देखी हुई, मन से सोची हुई, सुनी हुई वस्तु ही स्वप्न मे दिखाई देती है। वात, पित्त और कफ के विकार के कारण भी स्वप्न आते हैं। पुण्य और पाप भी स्वप्न मे कारण होता है। कुछ स्वप्न दैविक भी होते है।

गृहस्थो को प्राय ससार-सम्बन्धी स्वप्न आते है और सयमी को ज्ञानाचरणसम्बन्धी।

अर्धनिद्रावस्था मे मस्तिष्क के ज्ञानतन्तुओ का जागृत होना स्वप्न कहलाता है। विशेषज्ञो का कथन है कि हमारे मस्तिष्क के पिछले भाग मे कमल-नाल के भीतर के रेशे के समान बहुत बारीक नाडियाँ हैं। उन्ही को ज्ञानतन्तु कहते है। पूर्ण निद्रा के समय वे नाडियाँ भी विश्राम करती हैं। किन्तु अर्धनिद्रा के समय जागृत रहती है। उस समय विभिन्न इन्द्रियो या मन द्वारा जानी-देखी वस्तुओ के ज्ञान का सस्कार प्रवुद्ध हो उठता है। वही स्वप्न बन जाता है।

आहारसज्ञा, भयसज्ञा, मैथुनसज्ञा और परिग्रहसज्ञा का उद्‌बुद्ध होना ही निद्रा मे स्वप्न का आकार धारण करता है।

ये चारो सज्ञाएँ प्रत्येक ससारी प्राणी मे विद्यमान हैं। मगर किसी मे न्यून मात्रा मे तो किसी मे अधिक मात्रा मे होती है। जिसमे आहारसज्ञा की मात्रा अधिक होती है, उसे खाने-पीने का स्वप्न आता है। भयसज्ञा की प्रचुरता वाला भीतिजनक स्वप्न देखता है। मैथुन सज्ञा की अधिकता वाले को निद्रा मे विलास के चित्र दिखाई देते हैं। परिग्रह सज्ञा से ग्रस्त मनुष्य धन-दौलत आदि के स्वप्न देखता है। किन्तु ये स्वप्न प्राय निष्फल होते है।

---

१ अणुहूयदिट्ठचिन्तिय, पयइवियारदेवयाणू वा।
सुविणस्स निमित्ताइ, पुण्ण पाव च नायव्वो॥ —कल्पसूत्र

वात, पित्त और कफ के विकार से जो स्वप्न आते हैं वे भी प्राय फलजनक नही होते। फलदेने वाले स्वप्न अकसर नीरोग अवस्था मे आते है। जिनका जीवन उत्तम होता है, वे उत्तम स्वप्न देखते है।

हमारे जीवन मे स्वप्न मानो पर्वतवत् है। उस शैलराज के सामने वाले भाग मे हम स्वप्नावस्था मे खूब दौड धूप करते हैं। विविध चित्र एव सिनेमा देखते है।

स्वप्न-शैल पर आरूढ होकर परभव देखा जा सकता है। वहाँ शुभाशुभ जीवन के फल नजरो मे आते हैं। अच्छे स्वप्नों के लिए जीवन अच्छा बनाना आवश्यक है। विचार के अनुसार आचार होता है और आचार के अनुसार स्वप्न-ससार का निर्माण होता है।

राजा श्रेणिक और रानी धारिणी ने स्वप्न सुने। विस्तार से शास्त्रपाठ सुना। आदरपूर्वक स्वप्नपाठको को विदाई दी गई। उन्हे प्रचुर मात्रा मे उपहार दिया। वस्त्र दिये, अन्न दिया, धन दिया। स्वप्नपाठक सतुष्ट और प्रसन्न होकर अपने-अपने घर गये।

दाम्पत्यप्रेम की झाकी भी इस सूत्र मे देखने को मिलती है। राजा श्रेणिक सभाभवन से उठ कर रानी के पास गया। उसने स्वप्नपाठको का सारा कथन रानी के समक्ष दोहराया। रानी ने आन्तरिक परितोष और हर्ष प्रकट किया।

मूल—तए ण तीसे धारिणीए देवीए दोसु मासेसु विइक्कंतेसु तइए मासे वट्टमाणे तस्स गब्भस्स दोहलकाल-समयंसि अयमेयारूवे अकालमेहेसु दोहले पाउब्भवित्था—

धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ, सपुन्नाओ ण ताओ अम्मयाओ, कयत्थाओ ण ताओ, कयपुन्नाओ, कयलक्ख-णाओ, कयविहवाओ, सुलद्धे णं तासि माणुस्सए जम्म-जीवियफले, जाओ णं मेहेसु अब्भुग्गएसु अब्भुज्जएसु अब्भु-

न्नएसु अब्भुट्ठिएसु सगज्जिएसु सविज्जुएसु सफुसिएसु सथणिएसु धंतधोतरुप्पपट-अ क-सख-चद-कु द-सालिपिट्ठरासिसमप्पभेसु, चिउर-हरियालभेद-चंपग-सण-कोरट-सरिसव-पउमरयसमप्पभेसु, लक्खारस-सरसरत्त-किंसुय-जासुमणरत्त-बधुजीवग-जाईहिंगुलय-सरस-कु कुम-उरब्भ-सस-रुहिर-इदगोवगसमप्पभेसु, बरहिण-नील-गुलिय-सुग-चासपिच्छभिंगपत्त-सास-नीलुप्पलनियर-णवसिरीसकुसुम-णवसद्दलसमप्पभेसु, जच्चंजण-भिंगभेय-रिट्ठग-भमरावलिगवलगुलिय-कज्जलसमप्पभेसु फुरतविज्जुत-सगज्जिएसु, वायवसविपुलगगणचवल परिसक्करेसु निम्मलवरवारिधारापगलियपयडमारुयसमाहयसमोत्थरत उवरि उवरि तुरियवास पवासिएसु धारापहकरणिवायणिव्वावियमेइणितले हरियगणकंचुए पल्लवियपायवगणेसु वल्लिवियाणेसु पसरिएसु उन्नएसु सोभग्गमुवागएसु नगेसु नएसु वा वेभारगिरिप्पवायतडकडगविमुक्केसु उज्झरेसु तुरियपहावियपलोट्टफेणाउलसकलुस जल वहतीसु गिरिनदीसु सज्जज्जुण-नीव-कुडय-कदल-सिलिंधकलिएसु उववणेसु मेहरसियहट्ठतुट्ठचिट्ठिय-हरिसवसपमुक्क-कठकेकारव मुयतेसु वरहिणेसु, उउवसमयजणियतरुणसहयरिपणच्चिएसु, नवसुरभिसिलिंध-कुडय-कु दल-कलब-गधद्ध णिं मुयंतेसु उववणेसु परहुयरुयरिभितसकुलेसु, उद्दायंतरत्तइदगोवय थोवयकासन्न विलविएसओणयतणमडिएसु, दद्दु रपयपिएसु, संपिडियदरिय-भमर-महुकरि - पहकरपरिलित-मत्तछप्पय-कुसुमासव-लोलमहुरगुंजंतदेसभाएसु उववणेसु, परिसामियचंदसूर-गहगणपणट्ठनक्खत्त-तारगपहे, इंदाउहवद्ध-चिंध-

पट्टंसि अबरतले उड्डीणबलागपंतिसोभंत-मेहविदे, कारंडग-चक्कवाय-कलहंसउस्सुयकरे सपत्तपाउसम्मि काले ण्हायाओ कयबलिकम्माओ कयकोउयमंगलपायच्छित्ताओ कि ते ? वरपायणत्तणेउरमणिमेहल-हार-रइयकडगखुड्डयविचित्तवरवलय-थभियभुयाओ, कुंडलउज्जोवियाणणाओ, रयणभूसियंगाओ, नासानीसासवायवोज्झं चक्खुहर वण्णफरिस-सजुत्त हयलालापेलवाइरेयं धवल-कणयखचियंतकम्मं आगासफलिहसरिप्पभं अंसुयं पवरपरिहियाओ, दुगुल्लसुकुमालउत्तरिज्जाओ सव्वोउयसुरभि कुसुमपवरमल्लसोभियसिराओ कालागरु-धूवधूवियाओ सिरिसमाणवेसाओ सेयणगगंधहत्थिरयणं दुरूढाओ समाणीओ सकोरिंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं चदप्पभवइरवेरुलियविमलदंड-संखकुंद-दगरय-अमयमहियफेणपुंजसन्निगास चउचामरवालवीजियगाओ सेणिएणं रण्णा सद्धिं हत्थिखधवरगएणं पिट्ठओ समणुगच्छमाणीओ चाउरंगिणीए सेणाए महया (१)हयाणीएणं, (२) गयाणीएणं, (३) रहाणीएणं, (४) पायत्ताणीएणं। सव्विड्ढीए सव्वज्जुईए जाव णिग्घोसणादियरवेणं रायगिहं णयरं सिंघाडक-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु आसित्तसित्त-सुचियसंमज्जिओवलित्त जाव सुगंधवरगधियं गधवट्टीभूय अवलोएमाणीओ नागरजणेणं अभिणंदिज्जमाणीओ, गुच्छ-लया-रुक्ख-गुम्म-वल्लि-गुच्छ-ओच्छाइय सुरम्मं वेभारगिरि-कडगपायमूलं सव्वओ समता आहिंडेमाणीओ २ दोहल विणियति। तं जइ णं अहमवि मेहेसु अब्भुवगएसु जाव दोहलं विणिज्जामि। (१२)

मूलार्थ—तत्पश्चात धारिणी देवी के दो मास व्यतीत हो जाने पर जब तीसरा मास चल रहा था। तब उस गर्भ के दोहद-काल के अवसर पर इस प्रकार का अकालमेघ का दोहद उत्पन्न हुआ—

जो माताएँ अपने अकाल-मेघ के दोहद को पूर्ण करती हैं, वे माताएँ धन्य है, वे पुण्यवती हैं, वे कृतार्थ है, उन्होने पूर्व जन्म मे पुण्य का उपार्जन किया है, वे कृतलक्षण है अर्थात् उनके शारीरिक लक्षण सफल है, उनका वैभव सफल है। उन्हे मनुष्यजन्म और मनुष्य जीवन का फल प्राप्त हुआ है, अर्थात् उनका जन्म और जीवन सफल है।

आकाश मे मेघ उत्पन्न होने पर, क्रमश. वृद्धि को प्राप्त होने पर, उन्नति प्राप्त होने पर, बरसने की तैयारी होने पर, गर्जनायुक्त होने पर, विद्युत् से युक्त होने पर, छोटी-छोटी बरसती हुई बूदो से युक्त होने पर, मन्द-मन्द ध्वनि से युक्त होने पर।

अग्नि को तपा कर धोये हुए चादी के पतरे के समान, अक नामक रत्न, शख, चन्द्रमा, कुन्दपुष्प और चावल के आटे की राशि के समान शुक्ल वर्ण वाले, चिकुर नामक रग, हरताल के खण्ड, चम्पा के फूल, सन के फूल (अथवा स्वर्ण), कोरट पुष्प, सरसो के फूल, और कमल के रज के समान पीत वर्ण वाले, लाख के रस, सरस रक्तवर्ण किशुक के पुष्प, जासु के पुष्प, लाल रग के बन्धुजीवक के पुष्प, उत्तम जाति के हिंगलू, सरस कुकुम, बकरा एव शशक के रक्त और इन्द्रगोप (सावन की डोकरी) के समान लाल वर्ण वाले, मयूर, नील गुटिका, तोते के पख, चास पक्षी के पख, भ्रमर के पख, सासक नामक वृक्ष या प्रियगुलता, नील कमलो के समूह, ताजा शिरीष कुसुम और घास के समान नील वर्ण वाले, उत्तम अजन, काले भ्रमर या कोयला, रिष्ट रत्न, भ्रमरसमूह, भैस के सीग और कज्जल के समान काले वर्ण वाले, इस प्रकार पाचो वर्ण के

मेघ हो, बिजली चमक रही हो, गर्जना की ध्वनि हो रही हो, विस्तीर्ण आकाश मे वायु के कारण चपल बने हुए बादल इधर-उधर चल रहे हो।

निर्मल एव श्रेष्ठ जलधाराओ से गलित, प्रचड वायु से आहत, पृथ्वीतल को भिगोने वाली वर्षा निरन्तर हो रही हो। जलधारा के समूह से भूतल शीतल हो गया हो। पृथ्वी रूपी रमणी ने घास रूपी कंचुकी धारण की हो। वृक्षो का समूह नवीन पल्लवो से सुशोभित हो गया हो। बेलो का समूह विस्तार को प्राप्त हुआ हो।

उन्नत भूप्रदेश सौभाग्य को प्राप्त हुए हो अर्थात् पानी से घुल कर साफ-सुथरे हो गए हो। अथवा पर्वत और कुण्ड सौभाग्य को प्राप्त हुए हो। वैभारगिरि के प्रपात-तट से निर्झर निकल कर बह रहे हो। पर्वतीय नदियो मे तेज बहाव के कारण उत्पन्न हुए फेनो से युक्त जल बह रहा हो।

उद्यान सर्ज, अर्जुन, नीप और कुटज नामक वृक्षो के अकुरो से और छत्राकार (कुकरमुत्ता) से युक्त हो गया हो। मेघ की गर्जना के कारण हृष्ट-तुष्ट होकर नाचने की चेष्टा करने वाले मयूर हर्षवश मुक्त कण्ठ से केकारव कर रहे हो और वर्षाऋतु के कारण उत्पन्न हुए मद से तरुण मयूरियाँ नृत्य कर रही हो। उपवन (घर के समीपवर्ती बाग) शिलिन्ध्र, कुटज, कदल और कदम्ब वृक्षो के नवीन पुष्पो की सौरभयुक्त गध समूह को फैला रहे हो। नगर के बाहर के उद्यान कोकिलाओ के स्वर से व्याप्त हो और रक्तवर्ण इन्द्रगोप नामक कीडो से सौभाग्यवान् हो रहे हो। वे झुके हुए तृणों से मडित हो। मेढक उच्च स्वर से आवाज कर रहे हो। मदोन्मत्त भ्रमरो और भ्रमरियो के समूह एकत्र हो रहे हो तथा उस उद्यानप्रदेश मे पुष्परस के लोलुप एव मधुर गुजार करने वाले मदोन्मत्त भ्रमर लीन हो रहे हो। चन्द्र, सूर्य और ग्रहगणो, नक्षत्र और तारे मेघो से आच्छादित होने

के कारण श्यामवर्ण दृष्टिगोचर हो रहे हो। इन्द्रधनुष रूपी ध्वजपट फरफरा रहा हो और आकाश में मेघपटल बगुलो की पक्तियो से शोभित हो रहा हो।

इस भाति कारण्डक, चक्रवाक और राजहस पक्षियो को मानसरोवर की ओर जाने के लिए उत्सुक बनाने वाला वर्षाऋतु का समय हो!

ऐसे वर्षाकाल मे जो माताएँ स्नान करके, बलिकर्म करके, कौतुक, मगल रूप प्रायश्चित्त करके (वैभारगिरि के प्रदेशो मे अपने पति के साथ विहार करती हैं, वे धन्य हैं।)

धारिणी देवी ने इसके पश्चात् क्या विचार किया, सो बतलाते है—

वे माताएँ धन्य हैं जो पैरो मे उत्तम नूपुर धारण करती हैं। कमर मे करधनी पहनती हैं। वक्षस्थल पर हार धारण करती हैं। हाथो मे कडे तथा अगुलियो मे अगूठिया पहनती हैं। अपनी बाहुओ को विचित्र और श्रेष्ठ बाजूबन्दो से शोभित करती हैं, जिनका मुख कुण्डलो से चमक रहा है। अग रत्नो से भूषित हो रहा है। जिन्होने ऐसा बारीक वस्त्र पहना हो जो नासिका के निश्वास से भी उड जाए, अर्थात् अत्यन्त बारीक हो, नेत्रो को हरण करने वाला हो, उत्तम वर्ण एव स्पर्श वाला हो, घोडे के मुख से निकलने वाले फेन से भी कोमल और हल्का हो, उज्ज्वल हो, जिसके किनारे सुवर्ण के तारो से बने हो, श्वेत होने के कारण जो आकाश एव स्फटिक के समान कान्ति वाला हो और श्रेष्ठ हो।

जिन माताओ ने सुकुमार उत्तरीय दुकूल धारण किया हो, जिनका मस्तक समस्त ऋतुओ के सुगन्धित पुष्पो की श्रेष्ठ मालाओ से सुशोभित हो, जो कृष्ण अगर आदि उत्तम धूप से धूपित हो, लक्ष्मी के समान वेश वाली हो, सेचनक नामक गधहस्तीरत्न पर आरूढ हो, एव कोरट पुष्पो की माला से सुशोभित छत्र को धारण करती हो,

चन्द्रमा की प्रभा, वज्र और वैडूर्यमणि के निर्मल दड वाले एवं शख, कुन्दपुष्प, जलकण और अमृत के मथन से उत्पन्न हुए फेन के समूह के समान उज्ज्वल चार चामर जिनके ऊपर ढोले जा रहे हो, जो हस्तीरत्न के स्कन्ध पर (महावत के रूप मे) राजा श्रेणिक के साथ वैठी हो,उनके पीछे-पीछे चतुरगिणी सेना चल रही हो,अर्थात् विशाल अश्वसेना, गजसेना, रथसेना और पैदल सेना हो, जो सव प्रकार की ऋद्धि तथा आभूषणो आदि की कान्ति के साथ एव वाद्यो की ध्वनि के साथ, राजगृह नगर के शृङ्गाटक (सिंघाडे के आकार के मार्ग) त्रिक (जहा तीन मार्ग मिलते हो), चतुष्क (चौक), चत्वर (चबूतरा) चतुर्मुख (चारो ओर द्वार वाले देवकुल आदि), महापथ (राजमार्ग) तथा सामान्य मार्ग मे एक वार और अनेक वार गन्धोदक छिड़का गया हो, उन्हे शुचि किया गया हो, झाडा हो, गोवर आदि से लीपा हो, यावत् उत्तम गन्ध के चूर्ण से सुगन्धित किया हो, गन्धद्रव्य की गुटिका जैसा वनाया हो। इस प्रकार के राजगृह नगर का निरीक्षण करती जा रही हो। नागरिक जन उनका अभिनन्दन कर रहे हो। इस प्रकार गुच्छो, लताओ, वृक्षो, गुल्मो (झाडियो) एव वेलो के समूह से व्याप्त मनोहर वैभारगिरि के निचले भागो के समीप चारो ओर सर्वत्र भ्रमण करती हुई अपने दोहद को पूर्ण करती हैं (वे माताएं धन्य हैं।) मैं भी इसी प्रकार मेघो के उन्नत होने पर यावत् अपने दोहद को पूर्ण करू ॥ (१२)

विशेष बोध—गर्भ के तीसरे मास मे माता को दोहद उत्पन्न होना कहा जाता है। दोहद का अर्थ है—गर्भवती माता के चित्त मे उत्पन्न होने वाली विशिष्ट कामना।

दोहद अनेक प्रकार के होते हैं—कोई शुभ और कोई अशुभ। इस की शुभता और अशुभता गर्भस्थ शिशु के व्यक्तित्व पर निर्भर है। गर्भ मे उत्पन्न होने वाला शिशु यदि पुण्यशाली और सुसंस्कारी होता है तो माता के अन्त करण मे शुभ इच्छाए उत्पन्न होती है

और यदि वह पापी एव कुसस्कारी होता है तो उसे अशुभ दोहद उत्पन्न होता है। अनेक कथाओ से इस तथ्य की पुष्टि होती है: कहा जा सकता है कि माता का दोहद शिशु के भावी व्यक्तित्व के स्वरूप का सूचक होता है।

गर्भिणी के दोहद की पूर्ति करना आवश्यक समझा जाता है। यदि ऐसा न किया जाय तो गर्भ पर उसका दुष्प्रभाव पडता है। वह दुर्बल, रुग्ण और विकलाग हो जाता है।

महारानी धारिणी को जो दोहद उत्पन्न हुआ, वह नैसर्गिक सौन्दर्य को निहारने से सम्बन्ध रखता है। उस दोहद का वर्णन सूत्रकार ने विस्तारपूर्वक किया है। यह वर्णन बडा ही मनोरम है। वर्षाकालिक प्रकृति-सौन्दर्य का हूबहू चित्र खीच दिया है। प्राकृतिक सौन्दर्य मे जो सजीवता होती है वह बनावटी सौन्दर्य मे सभव नही।

धारिणी देवी का दोहद इस तथ्य का सूचक है कि गर्भ मे रहा हुआ शिशु प्रकृति-प्रेमी होगा। जगत का नकली सौन्दर्य उसे विमोहित करने मे समर्थ नही हो सकेगा।

जिन माताओ ने पुण्य का सचय किया है, उनके दोहद पूरे होते हैं। जो पुण्यहीन हैं, उनके मनोरथ हृदय मे उत्पन्न होकर हृदय मे ही विनष्ट हो जाते है।

मूलपाठ—तए ग सा धारिणीदेवी तसि दोहलसि अविणिज्जमाणसि असपन्नदोहला असंपुन्नदोहला असमाणियदोहला सुक्का-भुक्खा णिम्मंसा ओलुग्गा ओलुग्गसरोरा पमइलदुब्बला किलंता ओमथिय वयणनयणकमला, पंडुइयमुहा करयलमलियव्व चपगमाला णित्तेया दीणा विवण्णवयणा जहोचियपुप्फगधमल्लालकारहार अणभिलसमाणी कीडारमणकिरियं च परिहावेमाणी दीणा दुम्मणा णिराणदा भूमिगयदिट्ठोया ओहयमणसकप्पा जाव झियायइ।

याओ, जाव वेभारगिरिपायमूलं आहिंडमाणाओ डोहलं विणिति, तं जइ णं अहमवि जाव डोहलं विणिज्जामि, तए णं हं सामी ! अयमेयारूवंसि अकालदोहलंसि अविणिज्जमाणंसि ओलुग्गा जाव अट्टज्झाणोवगया झियायामि।

तए णं से सेणिए राया धारिणीए देवीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म धारिणि देविं एवं वयासी-मा णं तुमं देवाणुप्पिए, ओलुग्गा जाव झियाहि, अहं णं तहा करिस्सामि जहा णं तुब्भं अयमेयारूवस्स अकालदोहलस्स मणोरहसंपत्ती भविस्सइ, त्ति कट्टु धारिणिं देविं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुन्नाहिं मणामाहिं वग्गूहिं समासासेइ, समासासेत्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणामेव उवागच्छेइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने, धारिणीए देवीए एवं अकालदोहलं बहूहिं आएहि य, उवाएहि य, ठिईहि य, उप्पत्तीहि य, वेणइयाहि य, कम्मियाहि य, पारिणामियाहि य, चउव्विहाहिं बुद्धीहिं अणुचिंतेमाणे २ तस्स दोहलस्स आयं वा उवायं वा, ठिइं वा उप्पत्तिं वा अविंदमाणे ओहयमणसंकप्पे जाव झियायइ। (१३)

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह धारिणीदेवी उस दोहद के पूर्ण न होने के कारण, दोहद के सम्पन्न न होने के कारण, मेघ आदि का अनुभव न होने से दोहद के सम्मानित न होने के कारण, मानसिक सन्ताप द्वारा रक्त का शोषण हो जाने से शुष्क हो गयी, भूख से व्याप्त हो गई, मांस से रहित हो गई, जीर्ण एवं जीर्णशरीर वाली होगई। स्नान का त्याग करने से मलीन शरीर वाली, भोजन त्यागने से दुबली तथा थकी हुई हो गयी। उसने अपने मुख और नयनरूपी कमल नीचे कर लिए। उसका मुख फीका पड गया। वह हथेलियों द्वारा मसली हुई चम्पक पुष्पों की माला के समान निस्तेज हो गई।

उसका मुख दीन और विवर्ण हो गया। वह यथोचित पुष्प गन्ध माला अलकार और हार के विषय मे रुचिरहित हो गई। अर्थात् उसने इन सब का त्याग करदिया। वह दीन दुखी मन वाली आनन्द-हीन एव भूमि की तरफ दृष्टि किए हुए बैठी रही। उसके मन का सकल्प नष्ट हो गया। वह यावत् आर्तध्यान करने लगी।

तत्पश्चात् धारिणीदेवी की अगपरिचारिकाए -शरीर की सेवा शुश्रूषा करने वाली आभ्यन्तर दासिया धारिणीदेवी को जीर्ण-सी एव जीर्ण शरीर वाली यावत् आर्तध्यान करती हुई देखती है। देखकर इस प्रकार कहती है — हे देवानुप्रिये ! तुम जीर्ण जैसी तथा जीर्ण शरीर वाली क्यो हो रही हो ? यावत् आर्तध्यान क्यो कर रही हो ?

तब धारिणीदेवी अगपरिचारिका-आभ्यन्तर दासियो द्वारा इस प्रकार कहने पर (अन्यमनस्क होने से) उनका आदर नही करती है। वह मौन ही रहती है।

तत्पश्चात् अगपरिचारिका आभ्यन्तर दासिया, दूसरी बार और तीसरी बार यह कहने लगी — हे देवानुप्रिये ! क्यो तुम जीर्ण-सी एव जीर्ण शरीर वाली हो रही हो ? यावत आर्तध्यान कर रही हो ?

तब धारिणीदेवी उन अगपरिचारिका आभ्यन्तर दासियो द्वारा दूसरी बार और तीसरी बार भी इस प्रकार कहने पर न आदर करती है, न उनके कथन को स्वीकार करती है, अर्थात् उनकी बात पर ध्यान नही देती। वह मौन ही बनी रहती है।

तत्पश्चात् वे अगपरिचारिका आभ्यन्तर दासियाँ धारिणी देवी द्वारा आनादृत एव अपरिज्ञात की हुई उसी प्रकार सभ्रान्त (व्याकुल) होती हुई धारिणीदेवी के पास से निकलती है और निकल कर जहा श्रेणिक राजा था वहा आती हैं। आकर दोनो हाथ जोडकर यावत् मस्तक पर अ जलि करके जय-विजय से बधाती है। बधा कर इस

तए णं तीसे धारिणीए देवीए अंगपडियारियाओ अब्भि-तरियाओ दासचेडियाओ धारिणिं देविं ओलुग्ग जाव झिया-यमाणिं पासंति, पासित्ता एव वयासी—किण्ण तुमे देवाणुप्पिए! ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा जाव झियायसि ?

तए ण सा धारिणी देवी ताहिं अंगपडियारियाहिं अब्भितरियाहिं दासचेडियाहिं एवं वुत्तासमाणी ताओ दासचेडियाओ नो आढाइ, णो परियाणाइ, अणाढाय-माणी अपरियाणमाणी तुसिणीया सचिट्ठइ ।

तए णं ताओ अंगपडियारियाओ अब्भितरियाओ दास-चेडियाओ धारिणिं देविं दोच्चपि तच्चंपि एवं वयासी—किन्नं तुमे देवाणुप्पिए! ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा जाव झिया-यसि ?

तए णं सा धारिणीदेवी ताहिं अंगपडियारियाहिं अब्भि-तरियाहिं दासचेडियाहिं दोच्चंपि तच्चपि एव वुत्तासमाणी णो आढाइ, णो परियाणाइ, अणाढायमाणी अपरिजाणमाणी तुसिणीया सचिट्ठइ ।

तए ण ताओ अगपडियारियाओ दासचेडियाओ धारि-णीए देवीए अणाढाइज्जमाणीओ अपरिजाणिज्जमाणीओ तहेव सभंताओ समाणीओ धारिणीए देवीए अंतियाओ पडिणिक्खमंति, पडिणिक्खमित्ता जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहिय जाव कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति, वद्धावित्ता एव वयासी—एवं खलु सामी! किंपि अज्ज धारिणीदेवी ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा जाव अट्टझाणोवगया झियायइ ।

तए ण से सेणिए राया तासिं अगपडियारियाण अतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म तहेव संभते समाणे सिग्घ तुरिय चवल वेइयं जेणेव धारिणीदेवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धारिणिं देविं ओलुग्गं ओलुग्ग-सरीर जाव अट्ट-झाणोवगय झियायमाणिं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—किण्णं तुमे देवाणुप्पिए! ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा जाव अट्ट-झाणोवगया झियायसि ?

तए ण सा धारिणी देवी सेणिएणं रण्णा एव वुत्ता समाणी नो आढाइ जाव तुसिणीया संचिट्ठइ।

तए ण से सेणिए राया धारिणिं देविं दोच्चपि तच्चपि एव वयासी—किन्न तुमे देवाणुप्पिए! ओलुग्गा जाव झियायसि ?

तए ण सा धारिणीदेवी सेणिएणं रण्णा दोच्चपि तच्चपि एव वुत्तासमाणो णो आढाइ, णो परिजाणाइ, तुसिणीया सचिट्ठइ।

तए ण सेणिए राया धारिणि देवि सवहसाविय करेइ, करित्ता एव वयासी—किण्ण तुम देवाणुप्पिए! अहमेयस्स अट्ठस्स अणरिहे सवणयाए, ताण तुम मम अयमेयारूव मणोमाणसिय दुक्ख रहस्सीकरेसि ?

तए णं सा धारिणीदेवी सेणिएण रण्णा सवहसाविया समाणी सेणिय राय एव वयासी—एव खलु सामी! मम तस्स उरालस्स जाव महासुमिणस्स तिण्ह मासाण बहु-पडिपुण्णाण अयमेयारूवे अकालमेहेसु दोहले पाउब्भूए—धन्नाओ ण ताओ अम्मयाओ, कयत्थाओ ण ताओ अम्म-

प्रकार कहती है— स्वामिन् ! आज धारिणी देवी जीर्ण-सी और जीर्ण शरीर वाली यावत् आर्तध्यान युक्त हो रही हैं।

तव राजा श्रेणिक उन अगपरिचारिकाओ से यह वात सुनकर तथा मन मे धारण करके उसी प्रकार सभ्रम के साथ शीघ्र ही जहा धारिणी रानी थी वहा आता है। आकर धारिणीदेवी को जीर्ण-सी जीर्ण शरीर वाली यावत् आर्तध्यान से युक्त—चिन्ता करती देखता है। देखकर इस प्रकार कहता है—हे देवानुप्रिये! किस कारण तुम जीर्ण-सी जीर्ण देह वाली यावत् आर्तध्यान से युक्त होकर चिन्ता कर रही हो ?

तब धारिणीदेवी श्रेणिक राजा के इस प्रकार कहने पर आदर नही करती—उत्तर नही देती, यावत् चुप रहती है।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने दूसरी वार और फिर तीसरी वार इसी प्रकार कहा—यावत् क्यो चिन्ता कर रही हो ?

धारिणीदेवी श्रेणिक राजा के द्वारा दूसरी और तीसरी बार भी इस प्रकार कहने पर न उस कथन का आदर करती है और न उसे स्वीकार करती है। वह मौन ही रहती है।

तत्पश्चात् राजा श्रेणिक धारिणीदेवी को शपथ दिलाता है और शपथ दिलाकर कहता है—देवानुप्रिये ! क्या तुम्हारे मन की वात सुनने के लिए मैं अयोग्य हूँ, जिससे तुम अपने मन मे रहे हुए मानसिक दु ख को छिपाती हो ?

तदनन्तर श्रेणिक राजा के द्वारा शपथ दिलाने पर धारिणी देवी ने श्रेणिक राजा से कहा—स्वामिन् ! मुझे वह उदार आदि विशेषणो वाला महास्वप्न आया था। उसे आये तीन माह पूरे हो चुके हैं। अतएव इस प्रकार का अकाल-मेघ सम्बन्धी दोहद उत्पन्न हुआ है कि वे माताए धन्य हैं और वे माताए कृतार्थ है, यावत् जो वैभार गिरि की तलहटी मे भ्रमण करती हुई अपने दोहद को पूर्ण करती है। अगर मैं भी अपने दोहद को पूर्ण करू तो धन्य होऊ। स्वामिन् ! मैं

इस प्रकार के इस दोहद के पूर्ण नही होने के कारण उदास और चिन्तातुर हो गई हूँ।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने धारिणी देवी की यह बात सुनकर और समझ कर धारिणी देवी से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिये ! तुम उदास एव चिन्तातुर मत होओ। मै वैसा करूँगा अर्थात् कोई ऐसा उपाय करूगा जिससे तुम्हारे अकाल-मेघ सम्बन्धी दोहद की पूर्ति हो जायगी। इस प्रकार कहकर धारिणीदेवी को इष्ट (प्रिय), कान्त (इच्छित), प्रिय (प्रीति उत्पन्न करने वाली), मनोज्ञ मन के अनुकूल और मणाम (मन को प्रिय) वाणी से आश्वासन देता है।

आश्वासन देकर वह जहा बाहर की उपस्थानशाला थी वहा आता है ! आकर श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठता है। धारिणीदेवी के उस अकाल मेघ सम्बन्धी दोहद की पूर्ति के लिए बहुत से आयो से, उपायो से, औत्पत्तिकी बुद्धि से, वैनयिक बुद्धि से, कार्मिक बुद्धि से और पारिणामिक बुद्धि से, इस प्रकार चारो प्रकार की बुद्धि से बार-बार विचार करता है, परन्तु विचार करने पर भी उस दोहद के आय-लाभ को, उपाय को, स्थिति को ओर उत्पत्ति को समझ नही पाता, अर्थात् उसे दोहद पूर्ति का कोई उपाय नही सूझता। इस कारण उसके मन का सकल्प नष्ट हो गया और वह यावत् चिन्ताग्रस्त हो जाता है। (१३)

विशेष बोध— आर्तध्यान चार प्रकार का है—

(१) मनोज्ञ वस्तु की प्राप्ति के लिए बार-बार चिन्तन करना

(२) अमनोज्ञ वस्तु का सयोग होने पर उसके वियोग के लिए सतत चिन्ता करना।

(३) वेदना होने पर उससे पिण्ड छूटने के लिए चिन्तन करना।

(४) पारलौकिक सुख की प्राप्ति के लिए निदान (नियाणा) करना।

आर्तध्यान के चार लक्षण हैं—

(१) चिन्ता करना।
(२) अश्रुपात करना।
(३) जोर-जोर से रुदन करना।
(४) सिर पीट-पीट कर रोना।

धारिणीदेवी की यही स्थिति हो गयी। आर्तध्यान के कारण वह जीर्ण सी हो गयी। मानसिक सन्ताप से उसका खून तक सूख गया, मास सिकुड गया। दमकता-चमकता चेहरा फीका पड़ गया। उसे भारी झटका लगा। जीवन जैसे झुलस गया।

दासियो ने यह स्थिति देखी तो वे हैरान परेशान हो गयी। उन्होने कारण जानना चाहा, मगर धारिणी बोली नही। उसने पलक उठाकर उनकी ओर देखा तक नही। वे दौडी-दौड़ी राजा के पास पहु ची। राजा ने देखा, दासिया घबराई हुई है। उनका चेहरा उतरा हुआ है। नेत्रो मे पानी आरहा है। गदगद् स्वर मे वे बोली-स्वामिन्! महारानी जी आज किसी चिन्ता मे डूबी हैं। पूछने पर बोलनी भी नही।

महारानी की चिन्ता की बात सुनते ही श्रेणिक द्रुत गति से चल कर धारिणी के पास पहु चा। रानी की हालत देखकर श्रेणिक स्वय चिन्ता मे पड़ गया।

यहा दाम्पत्य प्रेम का चित्र सजीव हो उठा है। रानी की चिन्ता राजा की चिंता बन गई है। एक के दुःख से दूसरा दु खी हो उठा है। वास्तव मे आदर्श दम्पती वही हैं जिनका सुख-दुःख एक होता है।

राजा अत्यन्त व्यग्र होकर रानी की चिन्ता का कारण जानना चाहता है परन्तु चिन्ता में आकण्ठ निमग्न रानी मौन ही रहती हैं। शायद वह सोचती है कि मेरी अभिलाषा ऐसी असामयिक एव अप्राकृतिक है कि उसका निवारण नही हो सकता। फिर उसे व्यक्त करके पति को क्यो परेशानी मे डाला जाय? मगर उसे व्यक्त न करने से पति की चिन्ता कम होने वाली नही थी और फिर राजा

एक करोड बहत्तर लाख ग्रामों का अधिपति राजा श्रेणिक मगध देश की प्रजा का पालन करता था। उस विशाल राज्य का कार्यभार अभयकुमार के हाथो में था। इस कारण उसे 'मेढीभूत' कहा गया है। खलिहान के वीच एक खभा गाडा जाता है। गेहूँ आदि के सूखे पौधे खेत मे से काट कर जव खलिहान मे लाये जाते है तब उनमे से गेहूँ आदि को अलग करने के लिए बैलो से उन्हे कुचलवाया जाता है। बैल उस खभे के इर्दगिर्द ही घूमते है। मेढी उनका केन्द्र होती है। अभयकुमार भी सारी राज्यव्यवस्था का केन्द्र था।

अभयकुमार को जो असाधारण बुद्धि वैभव प्राप्त हुआ था वह पूर्वोपार्जित प्रबल पुण्य का परिपाक था। उस वैभव का अभयकुमार ने राज्य, राष्ट्र और प्रजा के हित मे उपयोग करके सदुपयोग किया। दुरुपयोग कही नही होने दिया। यही कारण है कि आज भी उसकी कीर्ति भूमण्डल मे व्याप्त है और उसे आदर के साथ स्मरण किया जाता है।

मूल—तस्स णं सेणियस्स रण्णो धारिणी नाम देवो होत्था। जाव सेणियस्स रण्णो इट्ठा जाव विहरइ। (५)

मूलार्थ—उस श्रेणिक राजा की धारिणी नामक रानी थी। वह सुकुमार शरीर वाली यावत् श्रेणिक राजा की इष्ट थी यावत् श्रेणिक राजा के साथ मानवीय सुखो का उपभोग करती हुई रहती थी। (५)

विशेष वोध—धारिणी के जीवन मे यें लक्षण पाये जाते थे जो कवि ने अपनी भाषा मे व्यक्त किए है—

कार्येषु मन्त्री करणेषु दासी, भोज्येषु माता सदनेषु रम्भा।
धर्मानुकूला क्षमया धरित्री, भार्या च षाड्गुण्यवतीह दुर्लभा॥

अर्थात्-कार्यो मे मत्री के समान, भोजन मे दासी के समान, घर मे रंभा के समान, धर्मानुकल और क्षमागुण मे पृथ्वी के

समान—इन छह गुणो को धारण करने वाली पत्नी ससार मे दुर्लभ होती है।

अथवा—

रम्या सुरूपा सुभगा विनीता,
प्रेमाभिमुख्या सरलस्वभावा ।
सदा सदाचार - विचारदक्षा,
सम्प्राप्यते पुण्यवशेन पत्नी ।

पुण्य के उदय से ही ऐसी पत्नी की प्राप्ति होती है, जो रमणीय हो, सुन्दर रूप वाली, सौन्दर्यशालिनी, विनीता, प्रेम-परायणा, सरल स्वभाववाली एव सदैव सदाचार एवं सद्विचार मे कुशल हो।

हिन्दी-कवि कहता है—

अंग आख मुख आकृति, चेष्टा चाल ज बोल ॥
जोतां समझी चतुर नर, तुरत करी ले मोल ॥

धारिणी उल्लिखित सब गुणो की धारिणी थी। (५)

मूल—तए ण सा धारिणीदेवी अन्नयाकयाइ तसि तारिसगसि सुसिलिट्ठ छक्कट्ठगलट्ठमट्ठसठिय खभुग्गय-पवरवरसालभजिया उज्जलमणिकणगरयणथूभिय विडं-वकजालद्धचंदणिज्जूहकंतरकणियालि

विभत्तिकलिए सरसच्छ धाउवलवण्णरइए वाहिरओ दूमियघट्ठमट्ठे अब्भिंतरओ पसत्थसुविलिहियचित्तकम्मे णाणाविहपचवण्णमणिरयणकुट्टिमतले पउमलया फुल्ल-वल्लिवरपुप्फजाइ उल्लोय चित्तियतले वन्दणवरकणगकलस सुविणिम्मियपडिपु जियसरसपउमसोहतदारभाए पयरगालं-वतमणिमुत्तदाम सुविरइयदारसोहे सुगधवरकुसुममउय-पम्हलसयणोवयारे मणहिययनिव्वुइयरे कप्पूर-लवग-

मलय चदण-कालागुरु-पवरकु दुरुक्क-तुरुक्क-धूवडज्झंत सुरभिमघमघतगधुद्धु याभिरामे सुगधवरगधिए गंधवट्टि-भूए मणिकिरणपणासियधयारे किं बहुणा, जुईगुणेहिं वेल-बिय सुरवरविमाणे वरघरए—

तसि तारिसगसि सयिणज्जसि सालिगणवट्टिए, उभओ विव्वोयणे, दुहओ उन्नए, मज्झेण य गभीरए गगापुलिणवा-लुया उद्दालसालिसए उवचिय खोमदुगुल्ल परपडिच्छण्णे अच्छरयमलयनयतय कुसत्तलिंबसिहकेसर पच्चथुए

सुविरइयरयत्ताणे रत्तसुयसबुए सुरम्मे आइणग-रूय-वूर-णव णीयतुल्लफासे—

पुव्वरत्तावरत्तकालसमयसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी-ओहीरमाणी एग मह सत्तुस्सेह रययकूडसन्निह सोमागार लीलायत-जंभायमाण गगणयलाओ ओयरत मुहमतिगय गय पासित्ताणं पडिबुद्धा। (६)

मूलार्थ—उसके पश्चात् धारिणी देवी ने किसी समय अपने उत्तम महल मे उत्तम शय्या पर सोते समय अर्धनिद्रावस्था मे, स्वप्न मे एक हाथी देखा। यहाँ महल और शय्या का जो वर्णन किया गया है वह इस प्रकार है।

महल को दृढ बनाने के हेतु उनमे श्लेषद्रव्य से लकडी के छह-छह खण्ड बने हुए थे। वे घिसे हुए सोने के समान सुन्दर एवं पुतलियो से शोभा दे रहे थे।

छोटी-छोटी छतरियाँ उज्ज्वल मणियो से बनी थी। वे मरकत, वज्र, इन्द्रनील, वैडूर्य आदि रत्नो से जटित थी। इन छतरियो के कबूतर-पक्षियो के चित्रयुक्त गवाक्ष बने हुए थे। सोपानो तथा द्वार के दोनो ओर सुन्दर घोडले बने थे। रत्नजटित घोडलो मे से पानी

निकलने की नालिया थी। भीतर शयनागार में सिंह, मीन, मकर आदि के चित्र थे।

मकान की पुताई गेरु आदि धातुओ से हुई थी। खडी से श्वेत बनाया गया था। भीतर बहुत-से चित्र बने थे। सुगधमय पुष्पो की सजावट थी। वह सुख देने वाला था।

कर्पूर, लवङ्ग, मलयचन्दन, कालागुरु प्रवरकुन्दुरुष्कगन्ध तुरुष्क (लोबान) धूप से वह महक रहा था, मानो नानाविधपुष्पो से सम्पादित द्रव्यो से वह सुवासित हो रहा है। एतदर्थ वह गन्ध द्रव्य की गोली जैसा बना हुआ जान पडता है। वह नानाविध मणियो से प्रकाशित है। अधिक क्या, वह शयनागार अपने सर्व दिशाओ को गुणो द्वारा तिरस्कार कर रहा था। ऐसे शयनागार मे प्रशंसा करने जैसी शय्या पर शरीर की लम्बाई के बराबर लम्बे तकिया से युक्त, तथा दोनो तरफ शिर और पैरों की ओर छोटे-छोटे तकिये रखे हैं इसलिए वह दोनो ओर से कुछ ऊँची बनी हुयी है। बीच मे गहराई लिये हुए है, गंगा नदी की बालू की तरह पैर रखते ही नीचे जाती है। अनेक प्रकार के चित्र शोभा दे रहे हैं, ऐसे सुन्दर कपड़े से ढकी हुयी है। मलय नामक वस्त्र से ढाँकी जाती है। सीहकेसर वस्त्र का नाम है, जिस पर धूली न टिके अर्थात् गलीचा, गलीचा पर और एक वस्त्र लगाया जाता है। मच्छरो की रक्षा करने के लिए लाल रग की मच्छरदानी टंगी हुयी थी।

मृगादि के चर्म से बना वस्त्र का नाम आजिनक, कपास का नाम रुत्त, चीकनी विशेष वनस्पति का नाम बुर, नवनीत-मक्खन आकडाकी रुई तुल्य है। शय्या का स्पर्श इन सब के समान कोमल था, उस शय्या पर धारिणी देवी सोई हुयी थी।

रात्रि के प्रथम प्रहर के बाद के समय मे कुछ नीद और कुछ जागती थी। ऐसी अवस्था मे निद्रा के झोको का अनुभव कर रही

थी, उसी समय राणी ने एक हाथी का स्वप्न देखा। वह हाथी सात हाथ का ऊँचा था, चाँदी के पर्वत जैसा था, श्वेत, शुभ सर्व अङ्गो में सुन्दर था, क्रीड़ा करते हुये तथा जभाते हुये आकाश मार्ग से उतरते हुये हाथी को मुँह मे प्रवेश करते हुए देखा। ऐसा स्वप्न देखकर राणी जागृत हो गई।

विशेष बोध—प्राचीन संस्कृति की एक झलक यहाँ दिखाई देती है। भगवान् महावीर के समय राजा-महाराजाओ के भी भवनो में लकड़ी का उपयोग किया जाता था। खडी चूना से उनकी पुताई होती थी। स्वास्थ्य और सादगी के लिहाज से वे भवन अतीव लाभ-दायक होगे।

शयनागार की सजावट खूब की जाती थी। शय्या अधिक से अधिक सुखद होती थी। फिर भी प्रतीत होता है कि उन पर खर्च कम किया जाता था और सुख-सुविधा अधिक हो, इस बात का पूरा लक्ष्य रखा जाता था। उस युग के मनुष्य कम खर्च मे भी पूर्ण सन्तोष अनुभव करते थे। सादगी और सन्तुष्टि उस समय की विशेपता थी। यही कारण था कि आज के समान आकुलता और असन्तोष उस समय नही था। उस समय की जनता अपरिमित आकाक्षाओ का शिकार नही थी।

क्षोम और दुकूल बारीक वस्त्र कहे हैं। इससे स्पष्ट है कि उस समय भी आज के जैसे बारीक वस्त्र बनते थे और वे भी विविध प्रकार के होते थे।

स्वप्न के विषय मे कहा जाता था—

रात्रे प्रथमे यामे दृष्ट स्वप्नश्च फलति वर्षेण,
स्वप्नो द्वितीययामे फलति च मासाष्टकेन नियमेन।
जातस्तृतीययामे षण्मासात्तुर्ययामसन्दृष्ट.,
पक्षेण फलति प्रातः दृष्टः स्वप्नश्च तत्कालम्॥

—श्री घासीलालजी महाराज

रात्रि के प्रथम प्रहर में देखा स्वप्न एक वर्ष मे फल देता है। दूसरे प्रहर मे देखा हो तो आठ मास मे, तीसरे प्रहर का छह मास मे, चौथे प्रहर का एक पक्ष मे और प्रात काल देखा स्वप्न तत्काल फल देता है।

कारण के आधार पर स्वप्न नौ प्रकार का कहा गया है—

१—अनुभूत—पहले अनुभव की हुई वस्तु का स्वप्न,

२—दृष्ट—देखी हुई वस्तु संबन्धी

३—श्रुत—कानो से सुनी हुई वस्तु सबन्धी

४—प्रकृति विकारज—वात पित्त या कफ के विकार से उत्पन्न होने वाला।

५—स्वभावत—स्वभाव से आने वाला।

६—चिन्ता समुद्भूत—जागृत अवस्था की चिन्ता से होने वाला।

७—दैविक—देवता के निमित्त से आने वाला।

८—धर्मकर्मप्रभावतः—धर्म-कर्म के प्रभाव से होने वाला।

९—पापोद्रेकसमुत्थ—पाप के उदय से आने वाला।

इनमे से ६ स्वप्न प्राय. निरर्थक होते हैं। अशुभ स्वप्न मल-मूत्र का त्याग करने से निष्फल हो जाते है। शुभ स्वप्न देखने के पश्चात् भगवत्-भजन एव धर्म-चिन्तन करते हुए जागते रहना उचित है। (६)

मूल—तए ण सा धारिणी देवी अयमेयारूव उरालं कल्लाणं सिव धन्न मगल्ल सस्सिरीयं महासुमिण पासित्ताणं पडिबुद्धा समाणी हट्ठतुट्ठा चित्तमाणंदिया पीइमणा परम-सोमणस्सिया हरिसवसविसप्पमाणहियया धाराहयकलंबपुप्फग पिव समूससियरोमकूवा त सुमिण ओगिण्हई ओगिण्हित्ता सय-णिज्जाओ उट्ठेइ, उट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चो रुहित्ता अतुरियमचवलमसभंताए अवलंबियाए रायहससरि-सीए गईए जेणामेव सेणिए राया तेणामेव उवागच्छइ, उवाग-

च्छित्ता सेणियं रायं ताहिं इट्ठाहिं कताहिं पियाहि मणुन्नाहि मणामाहि उरालाहि कल्लाणाहिं सिवाहि हिययगमणिज्जाहिं हिययपल्हायणिज्जाहिं मियमहुररिभियगभीर सस्सिरोयाहि गिराहि सलवमाणी २ पडिबोहेइ, पडिबोहित्ता सेणिए ण रण्णा अब्भणुन्नाया समाणी नाणामणिकणगरयणभत्ति-चित्तसि भद्दासणसि निसीयइ, निसीइत्ता आसत्था वीसत्था सुहासणवरगया करयल परिग्गहिय सिरसावत्त मत्थए अजलिं कट्टु सेणिय राय एवं वयासी—

एवं खलु अह देवाणुप्पिया ! अज्ज तसि तारिसगसि सयणिज्जसि सालिगणवट्टिए जाव नियगवयणमइवयत गयं सुमिणे पासित्ताण पडिबुद्धा। त एयस्स ण देवाणुप्पिया ! उरालस्स जाव सुमिणस्स के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ? (७)

मूलार्थ – धारिणी देवी इस प्रकार के प्रधान, कल्याणकारी, शान्तिकारी, प्रशसनीय, मगलकारक, सुशोभन, महास्वप्न को देखकर जागी। उसका हृदय हर्षित और सतुष्ट हुआ। चित्त आनन्दित हुआ। मन प्रसन्न हुआ। अत्यन्त सौमनस्य हुआ। हर्ष के कारण उसका हृदय फूल उठा। मेघ की धारा से आहत कदम्ब पुष्प की तरह वह रोमांचित हो गई। उसने अपने स्वप्न को समझा।

धारिणी स्वप्न को समझ कर शय्या से उठी और पाद-पीठ से नीचे उतरी। फिर त्वरा रहित एव चपलता-रहित असम्भ्रान्त राजहस के समान गति से चल कर अपने पति राजा श्रेणिक के पास पहुंची। वहाँ पहुँचकर उसने इष्ट कमनीय प्रिय मनोज्ञ, अतिमनोहर उदार कल्याणमय, शिवमय, धन्य, मागलिक, सश्रीक, हृदयहारी, हृदय मे

अतीव आह्लाद उत्पन्न करने वाली मित मधुर एव मीठी वाणी बोल कर राजा को जगाया।

श्रेणिक ने जागकर रानी को बैठने की आज्ञा दी। तब रानी धारिणी नानाविध मणियो, रत्नो और स्वर्ण से जटित होने के कारण चित्र-विचित्र भद्रासन पर बैठी। विश्राम लेने के पश्चात् सुखद आसन पर आसीन रानी ने दोनों हाथ जोडकर और मस्तक पर अजलि करके श्रेणिक राजा से कहा—

देवानुप्रिय! आज रात्रि मे शरीर प्रमाण पूर्ववर्णित शय्या पर सोते समय मैंने आकाश से उतरते हुए हाथी को अपने मुख मे प्रवेश करते देखा है। स्वप्न देखते ही मैं जाग उठी। देवानुप्रिय! इस उदार-शुभ स्वप्न से किस फल की प्राप्ति होगी? (७)

विशेष बोध—मंगलमय महास्वप्न देखने वाली धारिणी एक ओर शृंगार का घर थी तो दूसरी ओर त्याग-तप की मोहक मूर्ति थी। श्रेणिक की यह प्रिया शान्ति और सयम की शोभा थी। इन्ही गुणो के प्रभाव से उसने कल्याणकारी गज का स्वप्न देखा।

"रायहंस सरिसीए गईए जेणामेव सेणिए राया तेणामेव उवागच्छइ" इस पाठ से स्पष्ट है कि राजा और रानी के शयनकक्ष पृथक्-पृथक् थे। दम्पती के शयनगृह अलग-अलग रहने से विकार-वासना मर्यादित रहती है और सात्त्विक भाव की सुरक्षा होती है।

पत्नी को पति के साथ किस प्रकार का विनम्रतापूर्ण व्यवहार करना चाहिए, यह तथ्य भी इस पाठ से भली-भांति प्रकट होता है। पति को पत्नी का आदर करना चाहिए, यह बात श्रेणिक के व्यवहार से प्रकट होती है। (७)

मूल—तए णं सेणिए राया धारिणीए देवीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठ जाव हियए धाराहयनीवसुरभिकुसुमचंचुमालिसयतणू ऊससियरोमकूवे तं सुमिणं ओ-

गिण्हइ, ओगिण्हित्ता ईहं पविसइ, पविसित्ता अप्पणो साभाविएणं मइपुव्वएणं बुद्धि विण्णाणेणं तस्स सुमिणस्स अत्थोग्गह करेइ, करित्ता धारिणिं देवि ताहिं जाव हिययपल्हायणिज्जाहिं मिउमहुररिभियगभीरसस्सिरीयाहि वग्गूहिं अणुवूहेमाणे २ एव वयासी—

उराले ण तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणे दिट्ठे !

कल्लाणे णं तुमे देवाणुप्पिए सुमिणे दिट्ठे !

सिवे धन्ने मगल्ले सस्सिरीए णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणे दिट्ठे !

आरुग्ग-तुट्ठि-दीहाउय-कल्लाण-मंगलकारए ण तुमे देवी सुमिणे दिट्ठे !

अत्थलाभो ते देवाणुप्पिए !

पुत्तलाभो ते देवाणुप्पिए !

रज्जलाभो भोग-सोक्खलाभो ते देवाणुप्पिए !

एवं खलु तुमं देवाणुप्पिए ! नवण्ह मासाण पडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण य राइ दियाण विइक्कताण अम्ह कुलकेउं, कुलदीव, कुलपव्वयं कुलवडिसय कुलतिलकं कुलकित्तिकरं कुलवित्तिकर कुलणदिकरं कुलजसकर कुलाधारं कुलपायवं कुलविवद्धणकर सुकुमाल पाणिपाय जाव दारयं पयाहिसी ।

से वि य ण दारए उम्मुक्कबालभावे विन्नाय परिणयमेत्ते सूरे वीरे विक्कते वित्थिन्नविपुलबलवाहणे रज्जवती राया भविस्सइ ।

त उराले णं तुमे देवी सुमिणे दिट्ठे जाव आरोग्गतुट्ठिदीहाउयकल्लाणकारए ण तुमे देवी ! सुमिणे दिट्ठे त्ति कट्टु, भुज्जो २ अणुवूहेइ ॥ (८)

मूलार्थ—धारिणी देवी के मुख से स्वप्न की बात सुनकर और समझकर राजा श्रेणिक हर्षित हुए। जैसे वृष्टि की धारा पडने से कदम्ब का पुष्प विकसित हो जाता है। उसी प्रकार श्रेणिक का हृदय भी खिल उठा। उसे रोमांच हो आया।

राजा ने स्वप्न को समझने का प्रयत्न किया। उस पर विचार किया और फिर अपने स्वाभाविक बुद्धि वैभव से उसका निर्णय भी कर लिया। तत्पश्चात् उसने बड़े ही मीठे मधुर और मृदुल शब्दो मे रानी से कहा–"देवानुप्रिये! तुमने उदार-प्रधान स्वप्न देखा है, देवानुप्रिये! तुमने कल्याण स्वप्न देखा है। देवानुप्रिये! तुमने शिव धन्य मांगलिक एवं शोभन स्वप्न देखा है। देवि! तुमनें आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण और मगलकारी स्वप्न देखा है। देवानुप्रिये! अर्थलाभ होगा, पुत्रलाभ होगा, राज्यलाभ होगा, भोग-सुख का लाभ होगा। देवानुप्रिये! तुम्हे नौ मास और साढ़े सात दिन व्यतीत होने पर पुत्र की प्राप्ति होगी।

देवानुप्रिये! वह पुत्र कुल का केतु (ध्वज), कुल का दीपक, कुल के लिए पर्वत के समान, कुल का भूषण, कुलतिलक, कुल की कीर्ति बढाने वाला, कुल की वृत्तिरूप, कुल को आनन्द प्रदान करने वाला, कुल का यश वर्धन करने वाला, कुल का आधार, कुल के लिए वृक्ष के सदृश, कुल की वृद्धि करने वाला और सुकुमार शरीर वाला होगा। वह बालक जब बाल्यावस्था को पार कर लेगा और समझदार होगा तो शूर, वीर, पराक्रमी तथा विपुल बल-वाहनो से सम्पन्न राज्यपति राजा होगा।

इस कारण, महारानी! तुमने उदार स्वप्न देखा है यावत् आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु कल्याण करने वाला स्वप्न देखा है।

इस प्रकार बार-बार कह कर राजा ने देवी धारिणी के हृदय को बढावा दिया (८)

विशेष वोध—महाराजा श्रेणिक ने जिन शब्दो मे स्वप्न का फलादेश किया, वह वहुत प्रभावशाली है। कल्याणकारी मगलमय स्वप्न पुण्यशाली नर-नारियो को आते है। स्वप्न के निमित्त से राजा और रानी को अपार हर्ष हुआ और उनकी सुन्दर शिशु की प्राप्ति की सभावना साकार हो उठी।

राजा श्रेणिक राजनीति मे निपुण तो थे ही, ज्योतिर्विद् भी थे। उन्होने स्वप्न के फल को स्वय समझ कर महारानी को सन्तोष प्रदान किया।

सन्तान की कामना नारी जाति की बडी से बडी साध है। एक महिला को पुत्रवती बन कर जो आनन्द प्राप्त होता है वह त्रिलोकाधीश्वरी बनने के आनन्द से भी कदाचित् बढकर है।

यहाँ यह सब भाव बडी सुन्दरता के साथ व्यक्त किए गए हैं। (८)

मूल—तए ण सा धारिणी देवी सेणिएण रण्णा एवं वुत्ता समाणी हट्ठतुट्ठ जाव हियया करयलपरिग्गहिय जाव अजलिं कट्टु एव वयासी-एवमेयं देवाणुप्पिया! तहमेय देवाणुप्पिया! अवितहमेय देवाणुप्पिया! असदिद्धमेय देवाणुप्पिया! इच्छियमेय देवाणुप्पिया! पडिच्छियमेय देवाणुप्पिया! सच्चे ण एसमट्ठे ज ण तुब्भे वदह त्ति कट्टु तं सुमिणं सम्म पडिच्छइ, पडिच्छित्ता सेणिएण रण्णा अब्भणुन्नाया समाणी नाणामणि-कणगरयण भत्ति-चित्ताओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयसि सयणिज्जंसि निसीयइ, निसीइत्ता एव वयासी-मा मे से उत्तमे पहाणे मगल्ले सुमिणे अन्नेहिं पावसुमिणेहिं पडिहम्महि त्ति कट्टु देवय

गुरुजणसंबद्धाहिं पसत्थाहिं धम्मियाहिं कहाहि सुमिणजागरियं पडिजागरमाणी विहरइ ॥ (६)

मूलार्थ—तत्पश्चात् श्रेणिक राजा के ऐसा कहने पर अत्यन्त हृष्ट-तुष्ट हुई धारिणी देवी ने हाथ जोड़कर और मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार कहा—"देवानुप्रिये ! आपने जैसा कहा वैसा ही है। देवानुप्रिय ! वह असत्य नही है। देवानुप्रिय ! उसमे सन्देह के लिए अवकाश नही है। देवानुप्रिय ! वह इष्ट है। देवानुप्रिय ! वार-वार इष्ट है। आपने जो कहा वह सब सत्य है।"

इस प्रकार कह कर धारिणी ने उस स्वप्न को भली-भाँति अंगीकार किया। फिर श्रेणिक राजा से अनुमति लेकर विविध मणियो, कनक और रत्नो से जटित भद्रासन से उठी। उठ कर जहाँ अपनी शय्या थी वहाँ पहुँची। उस पर बैठी। बैठकर (मन ही मन बोली) मेरा उत्तम प्रधान मांगलिक स्वप्न कही दूसरे अशुभ स्वप्नो से नष्ट न हो जाय। इस प्रकार विचार करके वह देव और गुरुजनो सम्बन्धी प्रशस्त वार्त्ताओ द्वारा स्वप्न-जागरिका करने लगी, अर्थात् शेष रात्रि उसने जागृत रह कर ही व्यतीत की ॥ (६)

विशेष वोध—धारिणी देवी ने जैन धर्म के मौलिक सिद्धान्तो को विधिपूर्वक समझा था। केवल समझा ही नही था, उनका यथाशक्ति वह पालन भी करती थी। उसे धर्म क्रिया करने की कला प्राप्त थी। अवसर के महत्त्व को वह जानती थी।

स्वप्न प्राय अर्धनिद्रावस्था मे आया करते हैं। उनमे कोई शुभ का और कोई अशुभ का सूचक होता है, किन्तु उनके शुभ-अशुभ होने का ज्ञान सव को नही होता। शुभ स्वप्न देखने के पश्चात् यदि कोई अशुभ स्वप्न आ जाय तो शुभ स्वप्न का फल विनष्ट हो सकता है। धारिणी देवी इस तथ्य से परिचित थी। इस कारण

रात्रि का शेष समय उसने जागृत रह कर ही व्यतीत किया—नीद नही ली।

धारिणी का जागरण स्वप्न की रक्षा के निमित्त था, अतएव इसे 'स्वप्न जागरिका' कहा है, यह धर्म जागरण नही था।

धारिणी देवी अरिहत धर्म पर श्रद्धा रखती थी। उसके आराध्य देव अरिहन्त थे—राग-द्वेष आदि आन्तरिक अरियो (रिपुओ) पर पूर्ण विजय प्राप्त करने वाले जिनेन्द्र देव। जिनेन्द्र देव सर्वज्ञ और वीतराग होते है। जो भी महापुरुष इन गुणो को प्राप्त कर लेता है वही देव पद को प्राप्त करता है।

देव की दो श्रेणिया हैं—अरिहन्त और सिद्ध। जो सशरीर परमात्मा हैं, जिन्होने चार घातिया कर्मों का क्षय किया है, वे अरिहंत या अर्हन्त कहलाते है। जिन्होने विदेह मुक्ति प्राप्त कर ली है और आठो कर्मों का अन्त कर दिया है, वे सिद्ध परमात्मा कहलाते है। यही दो प्रकार के देव मुमुक्षुजनो के लिए आदर्श एव आराधनीय होते हैं।

नरदेहधारी कोई भी जीव धर्म की आराधना द्वारा सिद्धि प्राप्त कर सकता है।

धारिणी के गुरु वे निर्ग्रन्थ साधक थे, जो संयम, तप और त्याग की प्रतिमूर्ति होते है। जो सम्पूर्ण रूप से अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की साधना करके स्वाध्याय और ध्यान मे समय व्यतीत करते हैं। जो आत्मस्वरूप मे रमण करते हैं, आत्मानन्द मे विभोर रहते हैं और आत्मिक वैभव की वृद्धि मे दत्तचित्त रहते है। केशलुचन, अनशन, पैदल और उघाडे पांवो गमन, भिक्षा भोजन उनकी बाह्यचर्या है। प्राणिमात्र के प्रति उनके अन्त करण मे मैत्रीभाव जागृत हो जाता है, इस कारण वे पृथ्वीकाय, जलकाय,

अग्निकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय का भी आरम्भ-समारम्भ नही करते। यही कारण है कि वे अस्नान व्रत धारण करते है। जैन सन्त के विषय मे कहावत प्रसिद्ध है—

जाये थे तब नहाये थे,
जायेगे तब नहाएँगे।

लोभ-लालच, आशा-तृष्णा सच्चे साधु को स्पर्श नही कर सकती। वह आत्मकल्याण के लिए जगत् के जीवो का महान उपकार करता है। उनका प्रथप्रदर्शन करता है, मगर किसी पर भार नही बनता।

धारिणी देवी ने ऐसे देव और गुरु के चिन्तन मे ही रात्रि का शेष समय व्यतीत किया। इस प्रकार का चिन्तन आत्मा मे निर्मलता उत्पन्न करता है। विषय-वासना की आग को शान्त करता है। अन्तःकरण को प्रशमभावना से परिपूरित कर देता है। निर्बल आत्मा मे भी संयम साधना की स्पृहा उत्पन्न करता है और उस साधना को अपनाने की प्रेरणा तथा शक्ति भी प्रदान करता है।

धारिणी ने इस तथ्य को भली-भांति समझ लिया था, इस कारण वह देव तथा गुरु सम्बन्धी चिन्तन मे तत्पर हो सकी। (६)

मूल—तए णं सेणिए राया पच्चूसकालसमयंसि कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! बाहिरियं उवट्ठाणसालं अज्ज सविसेसं परमरम्म गंधोदगसित्त सुइय संमज्जिओवलित्त पचवन्नसरससुरभिमुक्कपुप्फपु जोवयारकलिय कालागुरुपवरकुंदरुक्क तुरक्कधूवडज्झतमघमघतगधुद्धुयाभिरामं सुगधवर गंधिय गधवट्टिभूयं करेह, कारवेह; करित्ता कारवित्ता य एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह।

तए ण ते कोडु बियपुरिसा सेणिएण रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा जाव पच्चप्पिणति ।

तए ण सेणिए राया कल्लं पाउप्पभाए रयणीए फुल्लुप्पलकमल कोमलुम्मिलियंमि अहापडुरे पभाए रत्तासोगपगास सुयमुह-गु जद्धराग-बंधुजीवग-पारावयचलण-नयणपरहुयसुरत्तलोयरा जासुमिणकुसुम-जलियजलण-तवणिज्जकलसहिंगुलयनिगर-रुवाइरगरेहन्तसस्सिरीए दिवागरे अहक्कमेण उदिए तस्स दिणयरपरपरावयारपारद्धमि अंधयारे बालातवकुंकुमेण खइयव्व जीवलोए लोयण विसआणुआस विगसतविसद दसियमि लोए कमलागरसडबोहए उट्ठियमि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलते सयणिज्जाओ उट्ठेइ, उट्ठित्ता जेणेव अट्टणसाला तेणेव उवागच्छइ,उवागच्छित्ता अट्टणसाल अणुपविसइ, अणुपविसित्ता अणेगवायामजोग वग्गणवामद्दणमल्लजुद्धकरणेहिं सते परिसते सयपागेहिं सहस्सपागेहि सुगधवरतेल्लमादिएहि पीणणिज्जेहिं दीवणिज्जेहिं दप्पणिज्जेहि मदणिज्जेहिं विहणिज्जेहि सव्विदियगायपल्हायणिज्जेहिं अब्भगेहि अब्भगिए समाणे तेल्लचम्मसि पडिपुण्णपाणि-पायसुकुमाल कोमलतलेहिं पुरिसेहिं छेएहिं दक्खेहि पट्ठेहि कुसलेहिं मेहावीहिं निउणसिप्पोवगतेहिं जियपरिस्समेहि अब्भगण-परिमद्दणु-व्वलण करणगुणनिम्माएहि अट्ठिसुहाए मससुहाए तयासुहाए रोमसुहाए चउव्विहाए सबाहणाए सबाहिए समाणे अवगयपरिस्समे नरिंदे अट्टणसालाओ पडिणिक्खमइ—

पडिणिक्खमित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघर अणुपविसइ, अणुपविसित्ता समत

जालाभिरामे विचित्तमणिरयण कोट्टिमतले रमणिज्जे ण्हाण-मंडवंसि णाणामणिरयणभत्तिचित्तंसि ण्हाणपीढंसि सुह-निसन्ने । सुहोदएहि पुप्फोदएहि गंधोदएहिं सुद्धोदएहिं य पुणो पुणो कल्लाणगपवरमज्जणविहीए मज्जिए । तत्थ कोउयसएहि बहुविहेहिं कल्लाणगपवरमज्जणावसाणे पम्ह-लसुकुमाल गंधकासाइयलूहियंगे अहयसुमहग्घदूसरयणसुसंवुए सरससुरभिगोसीसचंदणाणुलित्तगत्ते सुइमालावण्णग-विलेवणे आविद्धमणिसुवण्णे कप्पियहारद्धहार तिसरयपालंब-पलंबमाणकडिसुत्तकयसोहे पिणद्धगेविज्जंगुलेज्जगललिय कयाभरणे णाणामणिकडगतुडियथंभियभुए अहिय-रूवसस्सिरीए, कुंडलुज्जोइयाणणे, मउडदित्तसिरए, हारो-त्थयसुकयरइयवच्छे, पालंबपलंबमाणसुकयपडउत्तरिज्जे मुद्दियापिंगलंगुलीए णाणामणिकणगरयणविमलमहरिहनिउ-णोविय मिसमिसंत विरइयसुसिलिट्ठविसिट्ठलट्ठसंठिय पसत्थ-आविद्धवीरवलए, कि बहुणा, कप्परुक्खए चेव सुअलंकिय-विभूसिए नरिंदे सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धारिज्जमाणेणं उभओ चउचामरवालवीइयंगे मंगलजयसद्दकयालोए मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ—

पडिणिक्खमित्ता अणेगगणनायग-दंडणायग-राई-सरतल-वर-माडंबिय-कोडुंबिय-मति-महामंतिगण-दोवारिय-अमच्च-चेड-पीढमद्द-नगर-निगम-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाह-दूय-संधि-वालसद्धि सं परिवुडे धवल-महामेहनिग्गए विव गह-गणदिप्पंत रिक्ख तारागणाणमज्झे ससिव्व पियदंसणे नरवई, जेणेव वाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छई, उवागच्छित्ता सीहासण-वरगए पुरत्थाभिमुहे सन्निसण्णे । (१०)

मूलार्थ—तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने भोर होते ही कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! आज वाहर की उपस्थानशाला (सभाभवन) को विशेष रूप से परम रमणीय, गधोदक से सिंचित, साफ-सुथरी, लिपी-पुती, पाचो वर्णो के सरस, सुगधित पुष्पो के उपचार से युक्त, काले अगर, उत्तम कु दरुक्क, लोवान एवं धूप की मघमघाती गंध के समूह से सुगवमय तथा गध की गुटिका के समान करो और करवाओ। ऐसी करके और करवाकर मेरी आज्ञा वापिस सोपो अर्थात् आज्ञानुसार कार्य हो जाने की सूचना दो।

तब वे कौटुम्बिक पुरुप श्रेणिक राजा के इस प्रकार कहने पर हर्पित और सन्तुष्ट हुए। यावत् उन्होने आज्ञानुसार कार्य हो जाने की सूचना दी।

तदनन्तर रात्रि व्यतीत हुई। प्रभात होने पर कमल खिल उठे। रक्त अगोक, किंशुकपुष्प, शुक की चोच, चिरमी के अर्धभाग, वन्धुजीवक, कवूतर के पैर एव नेत्र, कोयल के सुरक्त लोचन तथा जासुमन के कुसुम, जाज्वल्यमान अग्नि, स्वर्णकलश, हिंगलू की राशि के वर्ण सदृश एव सश्रीक सूर्य का उदय हुआ। अन्धकार विलीन हुआ। उस समय ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे समस्त जीव-लोक कु कुम की लालिमा से व्याप्त हो गया हो। अनुक्रम से सूर्य ऊपर उठा। नेत्र अपना कार्य करने लगे। जब दिवाकर तेज से ज्वलित हो गया तब राजा अपनी शय्या से उठ कर व्यायामशाला की ओर गया।

उसने व्यायामशाला मे प्रवेश किया। प्रवेश करके अनेक प्रकार के व्यायाम-योग्य (भारी पदार्थों को उठाना) वल्गन (कूदना) व्यामर्दन (भुजा आदि अगो को मरोडना) कुश्ती तथा करण (बाहु को विशेष प्रकार से मोडना) करके श्रेणिक राजा ने श्रम किया और खूब श्रम

किया अर्थात् सामान्यतः शरीर का और विशेषत. प्रत्येक अगोपाग का व्यायाम किया।

तत्पश्चात शतपाक और सहस्रपाक तेलो से शरीर की मालिश की, जो प्रीति उत्पन्न करने वाले अर्थात् रुधिर आदि धातुओ को सम करने वाले, जठराग्नि को दीप्त करने वाले, दर्पणीय (शरीर का बल वढाने वाले), मदनीय (कामवर्द्धक), वृंहणीय (मासवर्द्धक) तथा समस्त इन्द्रियो को और शरीर को आह्लादित करने वाले थे।

फिर श्रेणिक ने परिपूर्ण हाथो-पैरो वाले, कोमल तलुवे वाले, छेक (अवसर के ज्ञाता), दास (चटपट काम करने वाले), पट्ठ। कुशल (मर्दन करने मे चतुर) मेधावी (नवीन कला को ग्रहण करने मे समर्थ), निपुण (क्रीड़ा मे कुशल), निपुण (मर्दन करने के सूक्ष्म रहस्यो के ज्ञाता), परिश्रम को जीतने वाले तथा अभ्यगन मर्दन उद्वर्त्तन एव उद्वलन करने के गुणो मे परिपूर्ण पुरुषो द्वारा अस्थियो को सुखकारी, मास को सुखकारी, त्वचा को सुखकारी तथा रोमो को सुखकारी, चार प्रकार की सबाधना से श्रेणिक के शरीर का मर्दन किया गया। इस मालिश और मर्दन से राजा का परिश्रम दूर हो गया। थकावट मिट गई। वह व्यायामशाला से वाहर निकला।

व्यायामशाला से वाहर निकल कर श्रेणिक राजा जहाँ मज्जनगृह है, वहाँ आता है। आकर मज्जनगृह मे प्रवेश करता है। प्रवेश करने के पश्चात् चारो ओर मोतियो की जाली से सुन्दर, चित्र-विचित्र मणियो एव रत्नो से जटित फर्श वाले तथा रमणीय स्नानमडप मे, नाना प्रकार के मणि-रत्नो की रचना से विचित्र स्नानपीठ (नहाने के पीढे) पर सुखपूर्वक वैठा।

तत्पश्चात् राजा ने (पवित्र स्थानो से लाये गये) शुभ जल से,

पुष्पमिश्रित जल से, सुगधित जल से तथा शुद्ध जल से वार-बार कल्याणकारी उत्तम स्नानविधि से स्नान किया।

स्नान के अन्त मे रक्षापोटली आदि सैकडो कौतुक किए। फिर रुएदार, अत्यन्त नरम, सुगधित एव कषाय-रग से रगे हुए वस्त्र से शरीर को पौछा। कोरे और वहुमूल्य उत्तम वस्त्रो से शरीर को आच्छादित किया। सरस और सुगन्धित गोशीर्ष चन्दन का उसके शरीर पर लेपन किया गया। शुचि-पवित्र पुष्पमाला धारण की। केसर आदि का लेपन किया। मणियो और स्वर्ण के अलकार धारण किए। अठारह लडो के हार, नौ लडो के अर्धहार, तीन लडो के छोटे हार तथा लम्वे लटकते हुए कटिसूत्र से शरीर की शोभा बढाई। कंठ मे कठा पहना। उ गलियो मे अगूठियाँ धारण की। नाना मणियो के कडो और त्रुटितो से उसकी भुजाएँ दीपित हो गई। अतिशय रूप के कारण राजा अत्यन्त सुशोभित हुआ।

कु डलो की चमक-दमक से उसका मुख-मण्डल उद्दीप्त हो उठा। मुकुट से मस्तक प्रकाशित होने लगा। वक्षस्थल हार से सुशोभित होने के कारण अतिशय प्रीति उत्पन्न करने लगा।

लम्वे लटकते हुए दुपट्टे से उसने सुन्दर उत्तरासग किया। मुद्रिकाओ से उसकी अगुलियाँ पीली दिखाई देने लगी। उसने नाना प्रकार की मणियो एव सुवर्ण के बने, उज्ज्वल, महापुरुषो के योग्य, निपुण कलाकारो द्वारा निर्मित, चमचमाते हुए, भलीभाति मिली हुई सधियो वाले, विशिष्ट प्रकार के मनोहर सुन्दर आकार के और प्रशस्त वीर-वलय धारण किए।

अधिक क्या कहा जाय? भलीभाति मुकुट आदि आभूषणो से अलकृत और वस्त्रो से विभूषित राजा श्रेणिक कल्पवृक्ष के समान दिखाई देने लगा।

कोरट (कनेर) के पुष्पो की माला वाला छत्र उसके मस्तक पर

धारण किया गया। दोनो ओर चार चामरो से उसका शरीर वीजा जाने लगा। राजा पर दृष्टि पडते ही लोगों ने जय-जय का मगलघोप किया। अनेक गणनायक (गणों के अधिपति), दण्डनायक, राजा (माडलिक राजा), ईश्वर (युवराज या ऐश्वर्यशाली), तलवर (राजा द्वारा प्रदत्त स्वर्णपट्ट से विभूपित), माडविक (मडव नामक वस्ती के अधिपति), कौटुम्बिक (वडे कुटम्वों के मुखिया) मत्री, महामत्री, दौवारिक, अमात्य, चेट, (सेवक) पीठमर्द (सभा के समीप रहने वाले सेवक-मित्र), नगरनिवासो, निगमवासी, सेठ, इभ्य, सेनापति, सार्थवाह, दूत, सधिपाल आदि के साथ—इनसे घिरा हुआ प्रियदर्शन राजा श्रेणिक ऐसा प्रतीत होने लगा जैसे ग्रहगणो से शोभायमान नक्षत्रो और तारागणो के मध्य मे महामेघ से वाहर निकला हुआ चन्द्रमा हो। वह वाहर की उपस्थानशाला (सभाभवन) मे आया और पूर्वदिशा की ओर मुख करके उत्तम सिंहासन पर आसीन हुआ। (१०)

विशेष वोध—इस सूत्र मे राजा श्रेणिक की प्रभातकालिक दिनचर्या का विवरण दिया गया है। अन्य वातो पर भी प्रकाश डाला गया है।

स्वप्न का फल पूछने के लिए तैयारी करनी थी। उसके लिए वे कर्मचारियो को बुलाते हैं तो कितने मधुर शब्दो का प्रयोग करते हैं! मगध का यह प्रभावशाली सम्राट् अपने कर्मचारियो को 'देवानुप्रिय' अर्थात् देवो के वल्लभ कहकर सबोधित करता है। उनको 'कौटुम्बिक पुरुष' की सज्ञा देना तो भारतीय संस्कृति की ऐसी गरिमा का द्योतक है जिसकी तुलना विश्व का कोई भी देश नही कर सकता। अढाई हजार वर्ष पूर्व की उच्च भारतीय सस्कृति यहाँ चमक उठी है।

सम्राट् जव सभाभवन की सफाई और सजावट करने की आज्ञा देते हैं तो वे देवानुप्रिय कौटुम्बिक पुरुष एकदम हर्षित हो उठते है!

इससे स्वामी और सेवक मे कितने मधुर सम्बन्ध थे, इस बात का सहज ही पता लग जाता है।

श्रेणिक उदार हृदय दातार थे। दातारो के सन्तुष्ट और सुखी कर्मचारी सहर्ष आज्ञापालन करते है। इसके विपरीत, जो स्वामी कृपण और अनुदार होता है, उसके सेवक दुखी रहते हैं और वे जैसा-तैसा काम करते भी है तो मन मारकर। गिरिधर कवि ने कृपण स्वामी की मनोवृत्ति का सुन्दर चित्रण किया है—

नौकर ऐसा होय नित्य उठ चने चबावे,
हरदम हाजिर रहे कभी ना घर को जावे।
तन मन धन से काम सदा मालिक का सेवे,
मालिक पैसा देय मगर वो कभी न लेवे।
कह गिरिधर कविराय चाहिए नाकर ऐसा,
लघन कर मर जाय मगर मागे नहिं पैसा।

यह है कलियुगी स्वामी-सेवकभाव! राजा श्रेणिक की मनोवृत्ति ऐसी नही थी। वह युग भी ऐसा नही था। इस कारण उस युग के कौटुम्बिक पुरुष थे, "इगियागार सम्पन्ने"—अर्थात् स्वामी के इशारे पर नाचते थे। उन्होने आज्ञानुसार कार्य सम्पन्न करके पुन राजा को सूचना दी कि आदेशानुसार कार्य सम्पन्न किया जा चुका है।

प्रभात का समय कितना मनोहर होता है! इसी कारण ब्राह्म-मुहूर्त का महत्त्व है। सूर्य जगत् के जीवो का प्राणाधार है। इसी से शास्त्रकारो ने उसे इतनी महिमा प्रदान की है।

मगलमय प्रभात-वेला मे राजा श्रेणिक उठ कर व्यायामशाला मे जाते है। राजा की दिनचर्या यह प्रमाणित करती है कि बुद्धिजीवी मानवो को नित्यक्रिया मे व्यायाम, आसन अथवा भ्रमण करना

आवश्यक है। ऋतु के अनुकूल किया गया समुचित शारीरिक श्रम जीवन मे अमृत का कार्य करता है, किन्तु किया जाना चाहिए वह नियमित रूप से।

पुरातन उल्लेखो से प्रतीत होता है कि प्राचीन युग मे भारतवर्ष मे आभूषणो का खूब उपयोग किया जाता था। उस समय नाना प्रकार के बहुमूल्य आभूषणो से देह-मन्दिर की सजावट की जाती थी। जब पुरुष इतने आभूषण पहनते थे तो अन्त पुर की सुन्दरियाँ कितना शृंगार सजती होगी! यह कल्पना करना कठिन नही है।

राजा श्रेणिक अतीव-अतीव सुशोभन होकर अपने सामन्तों आदि से परिवृत हो सभा-भवन मे जाकर सिंहासन पर आसीन होते है। उसका मुख पूर्वदिशा की ओर रहता है।

भारतीय साहित्य मे पूर्व और उत्तर दिशा को अधिक महत्त्व दिया गया है। फिर ईशानकोण का, जहाँ इन दोनो दिशाओं का मिलाप है, और अधिक महत्त्व माना गया है। धर्मकार्य तथा अन्य कोई भी शुभ कार्य करने के लिए इन्ही दिशाओ मे मुख करके बैठा जाता है। राजा श्रेणिक भी इसी कारण 'पुरत्थाभिमुहे' अर्थात् पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठा था। (१०)

मूल—तए णं से सेणिए राया अप्पणो अदूरसामंते उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए अट्ठ भद्दासणाइं सेयवत्थपच्चत्थुयाइं सिद्धत्थमंगलोवयारकयसंतिकम्माइं रयावेइ, रयावित्ता णाणामणिरयणमंडियं अहियपेच्छणिज्जरूवं महग्घवरपट्टणुग्गयसण्ह बहुभत्तिसयचित्तट्ठाणं ईहामिय-उसभ-तुरय-णर-मगर-विहग-वालग-किन्नर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलयभत्ति चित्तं, सुखचियवरकणगपवर पेरंतदेसभागं अब्भिंतरियं जवणियं अंछावेइ, अंछावित्ता अत्थरयमउअम-

सूरगउच्छइयं धवलवत्थपच्चत्थुयं विसिट्ठं अंगसुहफासयं सुमउय धारिणीए देवीए भद्दासणं रयावेइ, रयावित्ता कोडुंबिय पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—

'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अट्ठंगमहानिमित्त-सुत्तत्थपाढए विविहसत्थकुसले सुमिणपाढए सद्दावेह, सद्दावित्ता एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणह ।'

तए ण ते कोडुंबियपुरिसा सेणिएणं रण्णा एव वुत्ता समाणा हट्ठ जाव हियया करयलपरिग्गहिय दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं देवो तहत्ति आणाए विणएण पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता सेणियस्स रण्णो अतियाओ पडिणिक्खमति, पडिणिक्खमित्ता रायगिहस्स नगरस्स मज्झं मज्झेणं जेणेव सुमिण-पाढगगिहाणि तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सुमिणपाढए सद्दावेंति ।

तए ण ते सुमिणपाढगा सेणियस्स रण्णो कोडुंबिय पुरिसेहिं सद्दाविया समाणा हट्ठ जाव हियया ण्हाया कयबलिकम्मा जाव पायच्छित्ता अप्पमहग्घाभरणालंकिय सरीरा हरियालिय सिद्दत्थकय मुद्धाणा सएहिं सएहिं गिहेहिं पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता राजगिहस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव सेणियस्स रण्णो भवण-वडेसगदुवारे तणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता एगयओ मिलति, मिलित्ता सेणियस्स रण्णो भवणवडेसगदुवारेण अणुपविसति, अणुपविसित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता सेणिय रायं जएणं विजएणं वद्धावेंति ।

सेणिएण रण्णा अच्चिय-वंदिय-पूइय-माणिय-सक्कारिय-

सम्माणिय समाणा पत्तेय पत्तेयं पुव्वन्नत्थेसु भद्दासणेसु निसीयंति ।

तए ण सेणिए राया जवणियंतरियं धारिणिं देविं ठवइ, ठवित्ता पुप्फफलपडिपुण्णहत्थे परेणं विणएण ते सुमिणपाढए एवं वयासी—

एवं खलु देवाणुप्पिया! धारिणीदेवी अज्जतसि तारिसगंसि सयणिज्जसि जाव महासुमिण पासित्ताण पडिबुद्धा। तं एयस्स णं देवाणुप्पिया! उरालस्स जाव सस्सिरीयस्स महासुमिणस्स के मन्ने कल्लाणे फलवित्ति विसेसे भविस्सइ ?

तए णं ते सुमिणपाढगा सेणियस्स रण्णो अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठ जावहियया तं सुमिणं सम्मं ओगिण्हंति, ओगिण्हित्ता ईहं अणुपविसंति, ईहं अणुपविसित्ता अन्नमन्नेणं सद्धिं संचालेति, संचालेत्ता तस्स सुमिणस्स लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा विणिच्छियट्ठा अहिगयट्ठा सेणियस्स रण्णो पुरओ सुमिणसत्थाइं उच्चारेमाणा उच्चारेमाणा एवं वयासी—

एवं खलु सामी! सुमिणसत्थंसि बायालीसं सुमिणा, तीसं महासुमिणा, बावत्तरिं सव्वसुमिणा दिट्ठा! तत्थ णं सामी! अरहंत मायरो वा चक्कवट्टि मायरो वा अरहंतंसि वा चक्कवट्टिंसि वा गब्भं वक्कममाणंसि एएसि तीसाए महासुमिणाणं इमे चोद्दसमहासुमिणा पासित्ताणं पडिबुज्झंति, तंजहा—

गय-उसभ-सीह-अभिसेयं,
दाम-ससि-दिणयरं झयं कुंभं,

पउमसर-सागर-विमाण-
भवण-रयणुच्चय-सिहं च ॥१॥

वासुदेवमायरो वा वासुदेवंसि गब्भ वक्कममाणसि एएसिं चोद्दसण्हं महासुमिणाणं अन्नयरे सत्त महासुमिणे पासित्ताणं पडिबुज्झंति।

बलदेवमायरो वा बलदेवंसि गब्भं वक्कममाणसि एएसिं चोद्दसण्हं महासुमिणाण अण्णतरे चत्तारि महासुमिणे पासित्ताणं पडिबुज्झंति।

मंडलियमायरो वा मंडलियंसि गब्भं वक्कममाणंसि, एएसिं चोद्दसण्ह महासुमिणाण अन्नतर एग महासुमिणं पासित्ताणं पडिबुज्झंति।

इमे य ण सामी! धारिणीए देवीए सुमिणे दिट्ठे जाव आरोग्ग-तुट्ठि-दीहाउ-कल्लाण-मगल्लकारए णं सामी! धारिणीए देवीए सुमिणे दिट्ठे। अत्थलाभो सामी! सोक्खलाभो सामी! भोगलाभो सामी! पुत्तलाभो रज्जलाभो। एव खलु सामी! धारिणी देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं जाव दारगं पयाहिइ।

से वि य णं दारए उम्मुक्कबालभावे विन्नायपरिणयमित्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते सूरे वीरे विक्कंते विच्छिन्न विउलबलवाहणे रज्जवई राया भविस्सइ, अणगारे वा भावियप्पा।

त ओराले ण सामी! धारिणीए देवीए सुमिणे दिट्ठे जाव आरोग्ग-तुट्ठि जाव दिट्ठे त्ति कट्टु भुज्जो-भुज्जो अणुबूहंति।

तए णं सेणिए राया तेसिं सुमिणपाढगाणं अंतिए

एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठ जाव हियए करयल जाव एव वयासी—

एवमेयं देवाणुप्पिया ! जाव जण्णं तुब्भे वयह त्ति कट्टु तं सुमिण सम्मं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता ते सुमिणपाढए विउ-लेण असणपाण खाइम-साइमेण वत्थ-गंध-मल्ला-लंकारेण य सक्कारेई सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता विउल जीवि-यारिहं पीइदाणं दलयइ, दलइत्ता पडिविसज्जइ ।

तए णं से सेणिए राया सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भु-ट्ठित्ता जेणेव धारिणी देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धारिणि देवि एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिए ! सुमिण-सत्थंसि बायालीसं सुमिणा जाव एगं महासुमिणं भुज्जो-भुज्जो अणुबूहइ ।

तए णं धारिणी देवी सेणियस्स रण्णो अंतिए एय-मट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठ जाव हियया तं सुमिणं सम्म पडिच्छइ, पडिच्छित्ता जेणेव सए वासघरे तेणेव उवा-गच्छइ, उवागच्छिता ण्हाया कयबलिकम्मा जाव विपुलाइं जाव विहरइ । (११)

मूलार्थ—तत्पश्चात् श्रेणिक राजा अपने समीप ईशान कोण में श्वेत वस्त्र से आच्छादित तथा सरसो के मागलिक उपचार से जिनमे शान्तिकर्म किया गया है, ऐसे आठ भद्रासन रखवाता है। रखवा करके नाना मणियो और रत्नो से मडित, अतिशय दर्शनीय, वहुमूल्य और नगर मे वनी हुई, कोमल तथा सैकडो प्रकार की रचना वाले चित्रो का स्थानभूत, ईहामृग (भेड़िया), वृषभ, अश्व, नर, मगर, पक्षी, सर्प, किन्नर, रुरु (मृगविशेष), अष्टापद, चमरी गाय, हाथी, वनलता और पद्मलता आदि के चित्रो से युक्त, श्रेष्ठ स्वर्ण के तारो

से भरे हुए सुशोभित किनारों वाली यवनिका (पर्दा) सभा के भीतरी भाग मे बधवाई। यवनिका बधवा कर उसके भीतरी भाग मे धारिणी देवी के लिए एक भद्रासन रखवाया। वह भद्रासन आस्तरक (खोली) और कोमल तकिया से युक्त था। श्वेत वस्त्र उस पर डाला गया था। वह सुन्दर स्पर्श से अग को सुख उत्पन्न करने वाला था और अतिशय मृदु था।

इस प्रकार आसन बिछवा कर राजा ने कौटुम्बिक पुरुषो को बुलवाया और बुलवा कर इस प्रकार कहा—

देवानुप्रियो! अष्टागमहानिमित्त ज्योतिषशास्त्र के सूत्र एवं अर्थ के पाठ तथा विविध शास्त्रो मे कुशल स्वप्न पाठको (स्वप्न-शास्त्रियो) को शीघ्र बुलाओ और बुलाकर इस आज्ञा को वापिस लौटाओ।

तब वे कौटुम्बिक पुरुष श्रेणिक राजा द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर हर्षित यावत् आनन्दित हृदय हुए। दोनो हाथ जोड कर, दसो नखो को इकट्ठा करके, मस्तक पर घुमाकर, अजलि करके 'हे देव! ऐसा ही होगा' इस प्रकार कहकर विनयपूर्वक आज्ञा के वचनो को स्वीकार करते है। स्वीकार करके श्रेणिक के पास से निकलते है, निकल कर राजगृह के बीचो-बीच होकर जहाँ स्वप्न-पाठको के घर थे वहाँ पहुँचते हैं। पहुँच कर स्वप्न-पाठको को बुलाते हैं।

तब स्वप्नपाठक श्रेणिक राजा के कौटुम्बिक पुरुषो द्वारा बुलाये जाने पर हृष्ट, तुष्ट एव आनन्दित हृदय हुए। उन्होंने स्नान किया। कुलदेवता का पूजन किया। यावत् कौतुक (मसी तिलक) और मगल प्रायश्चित्त (सरसो, दही, अक्षत का प्रयोग) किया। अल्प किन्तु बहुमूल्य आभूषणो से शरीर को अलकृत किया। मस्तक पर दूर्वा तथा सरसो, मगल निमित्त धारण किए।

फिर वे अपने-अपने घर से निकले। निकल कर राजगृह के वीचोबीच होकर जहाँ राजा श्रेणिक का मुख्य भवन का द्वार था वहाँ आए। आकर सब एक साथ मिले। मिल कर द्वार के भीतर प्रवेश किया। प्रवेश करके वाहरी उपस्थानशाला थी और जहाँ राजा श्रेणिक था, वहाँ पहुँचे। वहाँ पहुँच कर राजा श्रेणिक को जय-विजय शब्दो से बधाया।

श्रेणिक राजा ने उनकी अर्चना की। गुणो की प्रशसा कर वन्दना की, पुष्पो द्वारा पूजा की। आदरपूर्ण दृष्टि से देखा। नमस्कार किया। फलादि देकर सत्कार किया। अनेक प्रकार से भक्ति कर सन्मान किया।

तत्पश्चात् वे स्वप्नपाठक पहले से विछाए हुए भद्रासनो पर पृथक्-पृथक् वैठ गए।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने यवनिका के पीछे धारिणा देवी को विठलाया। फिर हाथो मे पुष्प और फल लेकर अत्यन्त विनय के साथ उन स्वप्नपाठकों से इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो ! उस प्रकार की उस (पूर्ववर्णित) शय्या पर शयन करती हुई धारिणी देवी यावत् महास्वप्न देख कर जागी है, तो देवानुप्रियो ! इस उदार सश्रीक महास्वप्न का क्या कल्याणकारी फल-विशेष होगा ?

तब वे स्वप्नपाठक श्रेणिक राजा से इस अर्थ को सुनकर और हृदय मे धारण करके हृष्ट, तुष्ट एव आनन्दित हृदय हुए। उन्होने उस स्वप्न का सम्यक् प्रकार से अवग्रहण किया। अवग्रहण करके ईहा (विचारणा) मे प्रवेश किया। प्रवेश करके परस्पर एक दूसरे के साथ विचारविमर्श किया। विचारविमर्श करके स्वय अर्थ को समझा। दूसरे का अभिप्राय जान कर विशेष अर्थ समझा। आपस मे अर्थ को पूछा। अर्थ का निश्चय किया और फिर तथ्य अर्थ का भलीभांति निश्चय किया। तव वे स्वप्नपाठक श्रेणिक राजा के

समक्ष स्वप्नशास्त्रो का वार-बार उच्चारण करते हुए इस प्रकार बोले—

स्वामिन् ! स्वप्नशास्त्र मे वयालीस स्वप्न और तीस महास्वप्न, यो सव वहत्तर स्वप्न हमने देखे है। अरिहन्त (तीर्थंकर) की माता और चक्रवर्ती की माता, अरिहन्त और चक्रवर्ती जव गर्भ मे आते हैं तव तीस महास्वप्नो मे से चौदह महास्वप्न देखती है। वे इस प्रकार है—

(१) हाथी (२) वृषभ (३) सिह (४) अभिषेक (५) पुष्पमाला (६) चन्द्र (७) सूर्य (८) ध्वजा (९) पूर्णकलश (१०) पद्मयुक्त सरोवर (११) क्षीरसागर (१२)[1] विमान अथवा भवन (१३) रत्नराशि और (१४) निर्धूम अग्निशिखा।

जव वासुदेव गर्भ मे आते हैं तो वासुदेव की माता को इन चौदह मे से कोई भी सात स्वप्न दिखाई देते हैं। वलदेव जव गर्भ मे आते हैं तो उनकी माता चौदह मे से चार स्वप्न देखकर जागृत होती है।

माडलिक राजा गर्भ मे आवे तो माता चौदह मे से कोई भी एक महास्वप्न देखकर जागती है।

स्वामिन् ! धारिणी देवी ने इन महास्वप्नो मे से एक महास्वप्न देखा है, अतएव स्वामिन् ! धारिणी देवी ने उदार-प्रधान स्वप्न देखा है, यावत आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण और मगलकारी, स्वामिन् ! धारिणी देवी ने स्वप्न देखा है। स्वामिन् ! इससे आपको अर्थलाभ होगा। स्वामिन् ! सुख का लाभ होगा, भोग का लाभ होगा, पुत्र का लाभ होगा। स्वामिन् ! धारिणी देवी पूरे नौ मास व्यतीत होने पर यावत् पुत्र को जन्म देगी। वह पुत्र भी वालभाव का अतिक्रमण

---

१ गर्भ मे आने वाला जीव यदि देवलोक से आए तो विमान और यदि नरक से आए तो भवन स्वप्न मे दिखाई देता है।

करके, समझदार होकर, युवावस्था मे पहुँच कर शूर, वीर, पराक्रमी होगा। विस्तीर्ण एव विपुल बल-वाहनो वाला तथा राज्य का अधिपति राजा होगा, अथवा भावितात्मा अणगार होगा। अतएव स्वामिन्! धारिणी देवी ने उदार स्वप्न देखा है। यावत् आरोग्यकारी, तुष्टकारी आदि पूर्वोक्त विशेषणो वाला स्वप्न देखा है।

इस प्रकार कह कर स्वप्नपाठक वार-वार उस स्वप्न की सराहना करने लगे। राजा श्रेणिक स्वप्नपाठको के मुख से इस अर्थ को सुनकर और हृदय मे धारण करके हृष्ट तुष्ट और आनन्दित हृदय हो गया और हाथ जोड़कर इस प्रकार बोला—

देवानुप्रियो! जो तुम कहते हो सो वैसा ही है। सत्य है। इस प्रकार कह कर उस स्वप्न के फल को सम्यक् प्रकार से स्वीकार करके स्वप्नपाठको को विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम (आहार) तथा वस्त्र, गध, माला एव अलकारो से सत्कार किया, सन्मान किया। सत्कार-सन्मान करके जीविका के योग्य प्रीतिदान दिया। उन्हें विदा किया।

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा सिंहासन से उठा। उठ कर जहाँ धारिणी देवी थी वहाँ गया और जाकर इस प्रकार कहने लगा— देवानुप्रिये! स्वप्नशास्त्र मे ४२ स्वप्न और ३० महास्वप्न कहे हैं। उनमे से तुमने एक महास्वप्न देखा है, इत्यादि स्वप्नपाठको के कथनानुसार सव कहता है और वार-वार उनकी सराहना करता है।

तव धारिणी देवी श्रेणिक राजा से इस अर्थ को सुनकर और हृदय मे धारण करके हृष्ट-तुष्ट हुई यावत् आनन्दित हृदय हुई। उसने उस स्वप्न को सम्यक् प्रकार से अगीकार किया। अगीकार करके जहाँ अपना वासगृह था वहाँ आई। आकर स्नान करके, वलिकर्म अर्थात् कुलदेवता का पूजन करके यावत् विपुल भोग भोगती हुई विचरने लगी। (११)

विशेष बोध—जैसा कि प्रथम उल्लेख किया गया है, ईशान कोण का बहुत महत्त्व स्वीकार किया गया है। प्रत्येक नगर का उद्यान, जहाँ भी है, वह ईशान कोण मे बतलाया गया है। जो भी मगलमय कार्य होता है, ईशान कोण मे ही किया जाता है। स्वर्गलोक से मर्त्यलोक मे आने वाले देव भी सदा ईशान कोण मे ही पहले जाते हैं।

शक्रेन्द्र की आज्ञा से जब हरिणगमेषी देव देवानन्दा के निकट आया तो ईशान कोण मे होकर ही आया।[1]

सयम ग्रहण करने के अभिलाषी नर-नारी ईशान कोण मे जाकर ही वेशपरिवर्तन करते है।

पद्मावती रानी की तरह भामा, रुक्मिणी आदि सब ईशान कोण मे जाकर सयम स्वीकार करती हैं।[2]

ईशान कोण मे सदा विहरमान सीमन्धर स्वामी महाविदेह क्षेत्र मे विराजमान है। सभवत. इसी कारण उसे शुभ माना गया है और उसी की ओर मुख करके मगल-कार्य सम्पादित किए जाते है।

ईशान कोण का महत्त्व जैनागमो मे ही अधिक माना गया है। जैनेतर साहित्य मे नही।

तामली तापस ने मुण्डित होकर प्राणामी[3] नामक प्रव्रज्या अगीकार की। वह जैन मुनि नही था, अत. ईशान कोण मे नही गया, यह सभव है। अर्जुन मालाकार प्रभृति जैन-दीक्षा अगीकार करने वाले सब ईशान कोण मे जाते हैं।

---

१ उत्तरपुरत्थिमदिसीभाग. ... .. —कल्पसूत्र गा० २६

२ पउमावई देवी-उत्तरपुरत्थिम दिसीभाग— —अन्तगडदसाग, वर्ग ५

३ जेट्ठ पुत्त च आपुच्छइ, आपुच्छित्ता मुडे भवित्ता पाणामाए पव्वज्जाए पव्वइए। —भग० श.-३ उ. १

श्रेणिक राजा ने भद्रासन रखवाए—स्वप्नपाठको के लिए और रानी धारिणी के लिए। धारिणी पर्दा के पीछे बैठती है। इससे स्पष्ट है कि उस युग मे राजघरानो मे पर्दा की परम्परा थी। नारी-जीवन मे लज्जा एव दया का विशेष महत्त्व रहा है। पर्दे पर नाना प्रकार के चित्र बने थे। सौन्दर्यवर्धन के साथ वे राजा-रानी को यह सोचने की प्रेरणा देते थे कि मानव का चित्र सबसे महान् है। मानव-जीवन से ही आत्मा का शाश्वत और वास्तविक कल्याण हो सकता है। इस प्रकार की भावना से गर्भस्थ शिशु पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है।

स्वप्नपाठको के आने पर सम्राट् श्रेणिक उनकी अर्चना करता है, गुणगान करता है, पूजा करता है, उनको नमस्कार करता है। एक करोड एकहत्तर लाख गावो का अधिपति सम्राट् विद्वानो का किस प्रकार सत्कार-सन्मान करता है और उनके समक्ष कितनी विनम्रता प्रकट करता है, यह ध्यान देने योग्य है। विद्यावान् का सत्कार-सन्मान वस्तुत' विद्या का सत्कार-सन्मान है। विद्वानो का सन्मान होने से विद्या की अभिवृद्धि होती है।

क्या आधुनिक युग के धनी, राजा, शासक और नेता इस प्रकार श्रेणिक की भांति नम्रता प्रदर्शित करते है?

प्रश्न करने से पूर्व राजा ने स्वप्नपाठको को फल आदि प्रदान किए। यह परम्परा जनसाधारण मे आज भी देखी जाती है। गुड़ या नारियल आदि भेट करके ही लोग मुहूर्त आदि पूछते है। रिक्त हस्त से प्रश्न पूछना शुभ नही समझा जाता।

स्वप्नपाठको ने स्वप्नशास्त्र के आधार पर विचार विमर्श किया, परस्पर विचारणा की। तत्पश्चात् एक निष्कर्ष पर पहुँच कर फला-देश किया। कोई भी बात कहने से पहले मनुष्य को सम्यक् प्रकार से सोच-समझ लेना चाहिए।

उपोद्घात

चरम तीर्थंकर भगवान् महावीर की वाणी को, उनके अन्तेवासी इन्द्रभूति गौतम आदि गणधरो ने, शास्त्रनिवद्ध किया। वह वाणी भव्य प्राणियो को ससार सागर से पार उतारने के लिए अर्थात् जन्म-मृत्यु की व्यथा से उवारने के लिए नौका के समान है। महापुरुषो ने उस वाणी को सर्वसाधारण के लिए सुगम बनाने के लिए चार अनुयोगो मे विभक्त कर दिया। वे अनुयोग हैं—(१) चरण-करणानुयोग (२) धर्मकथानुयोग (३) गणितानुयोग और (४) द्रव्यानुयोग।

उक्त चार अनुयोगो मे से यहाँ धर्मकथानुयोग प्रस्तुत है। हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्मचर्य आदि अठारह प्रकार के पापकृत्यो के फलस्वरूप नरकादि मे उत्पन्न होकर विविध प्रकार की पीड़ा का अनुभव करने वाले पापी जीवो के तथा अहिंसा, सत्य आदि व्रतो का अनुष्ठान करके स्वर्ग-मोक्ष प्राप्त करने वाले धर्मनिष्ठ पुरुषो के जीवन वृत्तान्त धर्मकथानुयोग मे समाहित है। इस प्रकार धर्मकथानु-

योग में धर्म-अधर्म एवं पुण्य-पाप के प्रतीक प्राणियो की जीवन-झांकियां प्रस्तुत की जाती है और उनके द्वारा जनसाधारण को पापमय प्रवृत्तियो से विमुख और पुण्य-प्रवृत्तियो के सन्मुख होने की प्रेरणा प्रदान की जाती है। सक्षेप मे, अशुभ प्रवृत्तियो की ओर जाते हुए जीवो को कल्याणपथ पर, आरूढ करना धर्मकथानुयोग का मूल उद्देश्य है।

नायाधम्मकहा, उवासगदसा, अंतगडदसा, अनुत्तरोववाइयदशा और विपाक, ये पांच अग पूर्णरूपेण धर्मकथाओ के प्रतिपादक है। इनके अतिरिक्त अन्य आगमो मे भी प्रासंगिक रूप में अनेक कथाएं उपलब्ध होती हैं, जैसे सूत्रकृतांग, भगवती और उत्तराध्ययन मे। इनमे से यहाँ हम 'नायाधम्मकहा' के प्रथम मेघकुमार अध्ययन पर ही किंचित विवेचन करेंगे।

'नायाधम्मकहा' को 'ज्ञातधर्मकथा' और 'ज्ञातृधर्मकथा' कहा जाता है। ज्ञातधर्मकथा का अर्थ है—उदाहरण प्रधान धर्म कथा, तात्पर्य यह है कि जिस ग्रन्थ मे ज्ञातो वाली अर्थात् उदाहरणो वाली धर्मकथाएं हो वह ज्ञातधर्मकथा है। ज्ञातृधर्मकथा का अर्थ है—जिसमे ज्ञाता अथवा ज्ञातृवंशोद्भव भगवान् महावीर द्वारा कथित कथाएं हो, वह शास्त्र।

नायाधम्मकहा अल्पप्रज्ञजनो के लिए भी सुगम है और उसके मतर्क अध्ययन से जीवन मे दिव्य आलोक का प्रादुर्भाव होता है। इसी हेतु उस पर यहाँ प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जाता है। ●

मे घ च र्या



मूल—तेण कालेणं तेण समएणं चंपा नामं नयरी होत्था। वण्णओ। तीसेण चंपाए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए पुण्णभद्दे नामं चेइए होत्था। वण्णओ।

तत्थणं चपाए नयरीए कोणिए नाम राया होत्था। वण्णओ। —सूत्र १

मूलार्थ—उस काल मे और उस समय मे चम्पा नामक नगरी थी। उसका वर्णन यहाँ समझ लेना चाहिए। उस चम्पा नगरी से बाहर, उत्तर-पूर्व दिग्भाग (ईशानकोण) मे पूर्णभद्र नामक चैत्य अर्थात् व्यन्तरायतन था। उसका वर्णन समझ लेना चाहिए।

चम्पा नगरी में कोणिक नामक राजा (राज्य करता) था। यहाँ राजा का वर्णन समझ लेना चाहिए। —१

विशेष बोध—इस सूत्र मे प्रारम्भ मे काल और समय का उल्लेख किया गया है। सामान्य रूप से ये दोनो शब्द समानार्थक माने जाते है, किन्तु यहाँ दोनो के अर्थ मे विशेषता है। काल सामान्य काल का और समय विशेष काल का वाचक है। यहाँ काल शब्द से प्रकृत अवसर्पिणी का चौथा आरा ग्रहण किया गया है और समय शब्द से प्ररूपणा का समय अर्थात् भगवान् महावीर का समय।

नगरी, चैत्य और राजा का विस्तृत वर्णन औपपातिकसूत्र मे किया गया है। उसी को यहाँ कह लेने या समझ लेने का उल्लेख है। —१

मूल—तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अन्तेवासी अज्जसुहम्मे नामं थेरे जाइसपन्ने कुल-सपन्ने, वल-रूव-विणय-णाण-दंसण-चरित्त-लाघव-सपन्ने, ओयंसी, तेयसी, वच्चंसी, जसंसी,

जियकोहे, जियमाणे, जियमाए, जियलोहे, जिइंदिए, जियनिद्दे, जियपरीसहे,

जीवियास-मरणभयविप्पमुक्के, तवप्पहाणे, गुणप्पहाणे एवं करण-चरण-निग्गह-णिच्छय-अज्जव-मद्दव-लाघव-खति-मुत्ति-विज्जा-मंत-बंभ-वेय-नय-नियम-सच्च-सोय-णाण-दसण-चरित्तओराले,

घोरे, घोरव्वए, घोरतवस्सी, घोरबंभचेरवासी, उच्छूढ-सरीरे, संखित्तविउलतेउलेस्से, चोद्दसपुव्वी, चउणाणोवगए पचहिं अणगारसएहि सद्धि संपरिवुडे,

पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहं सुहेणं विहरमाणे जेणेव चपानयरी, जेणेव पुण्णभद्दे चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, अहापडिरूव ओग्गह ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ।

—सूत्र २

मूलार्थ—उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर के शिष्य आर्यसुधर्मा नामक स्थविर थे। वे जाति अर्थात् मातृपक्ष और कुल अर्थात् पितृपक्ष से सम्पन्न थे, बलवान् और रूपवान् थे। विनय, ज्ञान, दर्शन और चारित्र से सम्पन्न थे। वस्त्रादि उपधि कम होने के कारण द्रव्य लाघव से तथा तीन प्रकार के गौरव की कमी होने से भावलाघव से सम्पन्न थे। तपस्तेज देह पर दिखाई देने के कारण ओजस्वी थे। भीतर से आत्मा देदीप्यमान होने से

तेजस्वी थे अथवा तेजोलेश्या सम्पन्न होने के कारण तेजस्वी थे। निरवद्यभाषी एव वचन मे लब्धिबल होने से वर्चस्वी थे। तप संयम की उत्कृष्ट साधना होने से दूर-दूर तक उनका यश फैला था।

उन्होने क्रोध, मान, माया और लोभ के उदय को विफल करके उन पर विजय प्राप्त की थी।

इन्द्रियो का स्वभाव अपने-अपने विषय मे प्रवृत्ति करना है। विषय के साथ इन्द्रियो का जब सम्पर्क होता है तो वे अपने विषय को ग्रहण करती है। उनके इस विषय-ग्रहण को रोका नही जा सकता। किन्तु इन्द्रियो के साथ प्रवृत्त होने वाला मन उस विषय को इष्टता अथवा अनिष्टता के रग से रजित करके उसके प्रति राग या द्वेष की वृत्ति को जगाता है। इससे आत्मा कलुषित होती है। किन्तु जो साधक इन्द्रिय के द्वारा उसके विषय को ग्रहण करता हुआ भी उसमे इप्ट या अनिष्ट को कल्पना नही करता अर्थात् अपने समभाव को जागृत रखता है, उसकी आत्मा विषय को ग्रहण करती हुई भी राग-द्वेष की परिणति से मलीन नही होती। वही इन्द्रियो का विजेता कहलाता है। इस प्रकार इन्द्रियो को जीतने का अर्थ यह नही कि इन्द्रियो को नष्ट कर दिया जाय, अथवा उनके विषय-ग्रहण के सामर्थ्य को नष्ट कर दिया जाय, बल्कि यह है कि इन्द्रियो द्वारा गृहीत विषय मे राग-द्वेष की परिणति न उत्पन्न होने दी जाय। इसी अर्थ मे गौतम स्वामी जितेन्द्रिय थे।

वे निद्रा वहुत कम लेते थे और भाव-निद्रा से ऊपर उठ चुके थे, अत. जित-निद्र थे। क्षुधा-तृषा आदि परीषहो को सहन करने मे समर्थ होने के कारण जित-परीषह थे।

वे जीवन की अभिलाषा और मरण के भय से विमुक्त हो चुके थे। जीवन-मरण के प्रति उनका भाव एकदम सम था। मूल गुणो और उत्तर गुणो को निरतिचार पालन करते थे। तपस्वी ऐसे थे

कि साधारण जन उनके तपश्चरण को देखकर चकित रह जाते थे। उन्हे वह अत्यन्त भीषण प्रतीत होता था। अन्य विशेषण सुगम हैं, पाठक उन्हे सहज ही समझ सकते हैं। —२

विशेष बोध—श्री सुधर्मास्वामी का जन्म कोल्लाक नामक सन्निवेश मे हुआ था। वह वाणिजक ग्राम के समीप था। पिता धम्मिल्ल ब्राह्मण और माता का नाम भद्दिला था। सौ वर्ष की आयु थी। भ० महावीर के निर्वाण के १२ वर्ष पश्चात् उन्हे कैवल्य का लाभ हुआ। आठ वर्ष तक केवली-पर्याय में रहे।

सुधर्मास्वामी श्री महावीर स्वामी के अन्तेवासी शिष्य थे। चरणसत्तरी अर्थात् मूल गुणो का तथा करणसत्तरी अर्थात् उत्तर गुणो का पालन करने मे सदा सावधान रहते थे।

वय-समणधम्म-संजम-वेयावच्चं च बभगुत्तीओ ।
नाणाइ-तवो-कोहनिग्गहाइं चरणमेयं ॥१॥
पिण्डविसोही समिई भावणा पडिमा इंदियनिग्गहो ।
पडिलेहण गुत्तीओ, अभिग्गह चेव करण तु ॥२॥

पाँच महाव्रत, दश श्रमणधर्म, सयम, वैयावृत्य, ब्रह्मचर्य सम्बन्धी नौवाडें, ज्ञानादि आचार तप, क्रोधादि निग्रह, यह सब चरण कहलाता है ॥१॥

पिण्डविशुद्धि (भिक्षा की निर्दोषता), समितियां, बारह भावनाएँ, प्रतिमाएं, इन्द्रियनिग्रह, प्रतिलेखन, गुप्तियाँ और नाना प्रकार के अभिग्रह, यह सब करण कहलाते है ॥२॥

इन्द्रियो का दमन करके अपने मुख्य लक्ष्य पर दृढ रहना महा पुरुषो का लक्षण है। सुधर्मा स्वामी ऐसे ही महापुरुष थे। उनका हृदय स्फटिक रत्न के समान निर्मल था। जातिमद, कुलमद, बलमद, रूपमद, तपोमद, श्रुतमद, लाभमद और ऐश्वर्यमद से रहित होने से

मार्दवसम्पन्न थे। उपधि की अल्पता के कारण लाघवयुक्त क्षमावान् तथा निर्लोभ थे।

विद्याओ और मन्त्रो के ज्ञाता थे। इसके अतिरिक्त वे ब्रह्म, वेद, यम, नियम, सत्य, शौच, ज्ञान, दर्शन और चारित्र के महान् आराधक थे।

श्री सुधर्मास्वामी दुष्कर तप की आराधना करने के कारण घोर तपस्वी थे। जैसे भगवान् महावीर ने १३ बोलो का कठिनतर अभिग्रह धारण किया था, वे भी अभिग्रह धारण किया करते थे। साराश यह है कि श्री सुधर्मास्वामी उच्चकोटि के साधक महात्मा थे, जिनमे चारित्र सम्बन्धी भ० महावीर की सभी विशेषताएँ प्रतिबिम्बित होती थी।

श्री सुधर्मा स्वामी देह मे रहते हुए भी देहातीत दशा का अनुभव किया करते थे। शरीर के प्रति उन्हे तनिक भी ममता नहीं थी। इस कारण वे उसका सस्कार भी नही करते थे। अतएव उन्हे 'उच्छूढसरीरे' अर्थात् शरीर का त्यागी कहा गया है।

घोरतपश्चरण के प्रभाव से उन्हे विपुल तेजोलेश्या प्राप्त थी। उससे योजनो पर्यन्त के पदार्थों को भी भस्म किया जा सकता था। किन्तु वे उसका प्रयोग नही करते थे। उसे अपने अन्दर ही सक्षिप्त करके रखते थे।

वे चौदह पूर्वो के ज्ञाता थे। चौदह पूर्वो के नाम इस प्रकार हैं—

१—उत्पाद पूर्व
२—अग्रायणीय
३—वीर्यप्रवाद
४—अस्तिनास्ति प्रवाद
५—ज्ञान प्रवाद
६—सत्य प्रवाद
७—आत्म प्रवाद
८—कर्मप्रवाद
९—प्रत्याख्यानप्रवाद
१०—विद्यानुवाद
११—अवध्य
१२—प्राणायु
१३—क्रिया विशाल
१४—लोक बिन्दुसार

सुधर्मास्वामी चार ज्ञानों के धारक भी थे। इस प्रकार ज्ञान और चारित्र की सम्पदा से सम्पन्न थे। अपने ५०० शिष्यों के साथ एक ग्राम से दूसरे ग्राम पैदल विहार करते हुए पधारे। चम्पा नगरी के पूर्ण-भद्र उद्यान मे आज्ञा लेकर ठहरे और संयम तथा तप से आत्मा को भावित करने लगे। —२

मूलपाठ—तए ण चंपाए नयरीए परिसा निग्गया, कोणिओ निग्गओ, धम्मो कहिओ। परिसा जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मस्स अणगारस्स जेट्ठे अंतेवासी अज्जजंबूणामं अणगारे कासवगोत्तेणं सत्तुस्सेहे जाव अज्जसुहम्मस्स थेरस्स अदूर-सामते उड्ढंजाणू अहो-सिरे झाणकोट्ठोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तए णं से अज्जजंबूणामे अणगारे जायसड्ढे जायससए जायकोउहल्ले, संजायसड्ढे संजायसंसए संजायकोउहल्ले, उप्पन्नसड्ढे उप्पन्नसंसए उप्पन्नकोउहल्ले उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठाए उट्ठित्ता जेणामेव अज्जसुहम्मे थेरे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अज्जसुहम्मं थेर तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता अज्ज-सुहम्मस्स थेरस्स णच्चासन्ने णाइदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहं पजलिउडे विणएणं पज्जुवासमाणे एवं वयासी—

जइ णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थगरेणं सयंसंबुद्धेणं पुरिसुत्तमेणं पुरिससीहेणं पुरिस-वरपुंडरीएण पुरिसवरगंधहत्थिणा लोगुत्तमेणं लोगनाहेण

लोगहिएणं लोगपईवेण लोगपज्जोयगरेण अभयदएण चक्खु-दएणं मग्गदएणं सरणदएणं वोहिदएण धम्मदएणं धम्मदेसएण धम्मनायगेण धम्मसारहिणा धम्मवर चाउरंतचक्कवट्टिणा दीवोत्ताणं सरणगइपइट्ठा अप्पडिहयवरनाणदसणधरेण वियट्टछउमेण जिणेण जावएण तिण्णेण तारएणं बुद्धेण वोहएणं मुत्तेण मोयगेणं सव्वण्णुणा सव्वदरिसिणा सिवमय-लमरुअमणतमक्खयमव्वावाहमपुणरावित्तिय सासय ठाणमुव-गएण पंचमस्स अंगस्स विवाहपण्णत्तीए अयमट्ठे पण्णत्ते, छट्ठस्स ण भते ! अंगस्स णायाधम्मकहाण के अट्ठे पण्णत्ते ?

'जम्बु त्ति' तए ण अज्जसुहम्मे थेरे अज्जजबूणाम अणगारं एव वयासी—एव खलु जबू ! समणेण भगवया महावीरेण जाव सपत्तेण छट्ठस्स अगस्स दो सुयक्खधा पण्णत्ता, तंजहा-णायाणि य धम्मकहाओ य ।

जइ ण भते ! समणेण भगवया महावीरेण जाव सपत्तेण छट्ठस्स अगस्स दो सुयक्खधा पण्णत्ता. तजहा णायाणि य धम्मकहाओ य, पढमस्स णं भते ! सुयक्खधस्स समणेण जाव संपत्तेणं णायाण कइ अज्झयणा पण्णत्ता ?

एवं खलु जबू ! समणेण जाव सपत्तेण णायाण एगूण-वीस अज्झयणा पण्णत्ता, तजहा—

१. उक्खित्तणाए २ सघाडे ३. अडे ४ कुम्मे य ५. सेलगे ।
६ तुंवे य ७. रोहिणी ८ मल्ली ९. मायदी १० चदणा इय ।१।
११. दावद्दवे १२ उदग्गणाए १३ मडुक्के १४ तेयली वि य । १५ नदीफले १६. अवरकका १७ आइन्ने
१८. सुंसुमाइय ॥२॥
अवरे य १९. पु डरीयणायए एगूणवीसइमे ॥३॥

मूलार्थ—सुधर्मा स्वामी जब चम्पा नगरी मे पधारे तब नगरी के निवासियो का समूह उनकी देशना श्रवण करने के लिए निकल पड़ा। महाराजा कोणिक भी निकले। स्वामी जी ने उन सबको धर्म प्रवचन सुनाया। उसके पश्चात् जनसमूह जिस ओर से आया था उसी ओर लौट गया। राजा कोणिक भी लौट गया।

उस काल और उस समय आर्य सुधर्मास्वामी के बड़े शिष्य जम्बू नामक अनगार, जो काश्यप गोत्रीय थे और सात हाथ ऊँचे थे, यावत् आर्य सुधर्मा स्थविर से न बहुत दूर और न बहुत निकट, ऊर्ध्वजानु और अधःशिरस्क होकर ध्यान रूपी कोठे मे प्रविष्ट एव संयम तथा तप से आत्मा को भावित करते हुए बैठे थे। उनके मन मे तत्त्व की चर्चा करने की भावना उत्पन्न हुई।

श्रद्धा, संशय और कुतूहल का उद्भव हुआ। श्रद्धा, सशय और कुतूहल उत्पन्न एव समुत्पन्न हुआ। वे उत्थान करके उठ खड़े हुए और स्वामी जी के समीप आए। तीन वार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, वन्दन और नमस्कार किया। वन्दन नमस्कार करने के पश्चात् आर्य सुधर्मा स्थविर से न अधिक निकट, न अधिक दूर स्थित होकर शुश्रूषा एव नमस्कार करते हुए, सन्मुख अजलिबद्ध होकर एवं पर्युपासना करते हुए इस प्रकार वोले—

भंते! श्रमण भगवान् महावीर ने पांचवें अग व्याख्याप्रज्ञप्ति का यह अर्थ कहा है तो छठे अग ज्ञात धर्मकथा का क्या अर्थ कहा है?

जम्बू स्वामी द्वारा भगवान् महावीर के लिए प्रयुक्त विशेषणो का, जो 'नमोत्थुण' सूत्र मे भी आते है, अर्थ इस प्रकार है—

भगवान् आदिकर अर्थात् श्रुत-चारित्र धर्म को आदि करने वाले हैं। प्रत्येक तीर्थंकर स्वतन्त्र नूतन तीर्थ की स्थापना करते हैं। भ० महावीर ने साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध संघ

की स्थापना की, इस कारण वे तीर्थंकर कहलाए। तीर्थंकर किसी मुनि या ज्ञानी से उपदेश नही सुनते। वे स्वय ही वोध प्राप्त करते हैं। भ० महावीर भी इसी कारण स्वयबुद्ध हैं।

पुरुषवर्ग मे सवसे उत्तम होने से पुरुषोत्तम, अद्भुत पराक्रमी होने से सिंह के समान तथा जीवन अत्यन्त निर्मल होने के कारण पुरुष-पुण्डरीक कहे गए।

गन्धहस्ती अत्यन्त बलिष्ठ होता है। उसकी गन्ध मात्र से अन्य हस्ती दूर भाग जाते है। भगवान् के निकट एकान्तवादी अन्यतीर्थिक टिक नही सकते थे, अतएव उन्हे पुरुषो मे गधहस्ती के समान कहा।

तीनो लोको मे भगवान् से बढ कर कोई श्रेष्ठ नही, इस कारण भगवान् लोकोत्तम है। इसी प्रकार लोक के नाथ—योग क्षेमकर्त्ता है, हितकर्त्ता है, लोक के पथ-प्रदर्शक होने के कारण लोक प्रदीप हैं और लोक मे अज्ञानान्धकार का विनाश करने वाले सद्ज्ञान रूपी उद्योत का प्रसार करने से लोकप्रद्योतकर हैं। किसी को भय उत्पन्न न करने, दूसरो को अभय का उपदेश करने तथा जरा-मरण का भय मिटाने के कारण अभयदाता है। श्रुतज्ञान रूप चक्षु देने वाले, मुक्ति का मार्ग प्रदर्शित करने वाले, सासारिक दुःखो से पीडित जनो को शरण देने वाले, वोधिप्रदान करने वाले, धर्मदाता, धर्मोपदेशक, धर्मनायक, धर्म-रथ के सारथि एव धर्म-चक्रवर्ती हैं। दुर्गति से रक्षा करने के कारण द्वीप, त्राण, शरण और आश्रय रूप हैं।

भगवान् अप्रतिहत अर्थात् जिनमे कभी और कही रुकावट उत्पन्न न हो, ऐसे ज्ञान-दर्शन के धारक हैं। घातिकर्म से रहित हो जाने से व्यावृत्तछद्म हैं। स्वय राग-द्वेष के विजेता और दूसरो को विजयी बनाने वाले, स्वय ससार-सागर से तीर्ण और अन्यो को तिराने वाले, स्वयं वोधप्राप्त तथा दूसरो को बोध देने वाले, समस्त द्रव्यो, गुणो और पर्यायो के ज्ञाता तथा द्रष्टा है।

भगवान् महावीर ऐसे सिद्धिधाम को प्राप्त है जो शिव है, अचल है, अरुज (रोगरहित) है, अक्षय है, सब प्रकार की बाधा से रहित है और जिससे लौट कर पुन जन्म-मरण का भागी नही होना पड़ता, जो शाश्वत है।

जम्बू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी से प्रश्न किया—'प्रभो ! उन सिद्धिधाम को प्राप्त श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने व्याख्याप्रज्ञप्ति नामक पांचवें अग का यह (जो मैंने समझ लिया) अर्थ कहा है किन्तु छठे नायाधम्म कहा अंग का क्या अर्थ कहा है ?

जम्बू स्वामी के प्रश्न करने पर सुधर्मा स्वामी ने कहा—'जम्बू ! यावत् मुक्तिप्राप्त श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी ने छठे अंग के दो श्रुतस्कंध कहे है जो इस प्रकार है—ज्ञात और धर्मकथाएँ।

जम्बूस्वामी ने पुन प्रश्न किया—श्रमण यावत् मुक्ति प्राप्त भगवान् ने प्रथम श्रुतस्कन्ध ज्ञात के कितने अध्ययन कहे है ?

सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया—जम्बू ! श्रमण भगवान् ने प्रथम श्रुतस्कन्ध के निम्नलिखित १९ अध्ययन कहे हैं—

(१) उत्क्षिप्तज्ञात (२) संघाटक (३) अण्ड (४) कूर्म (५) शैलक (६) तुम्ब (७) रोहिणी (८) मल्ली (९) माकन्दी (पुत्र) (१०) चन्द्रिका (११) दावद्रव (१२) उदक ज्ञात (१३) मण्डूक (१४) तेतली (पुत्र) (१५) नन्दीफल (१६) अपरकंका (१७) आकीर्ण (१८) सुंसुमा और (१९) पुण्डरीक ज्ञात।

यहा 'ज्ञात' शब्द प्रत्येक अध्ययन के साथ समझ लेना चाहिए।—३

विशेषबोध - जम्बूस्वामी के श्रद्धाशील निर्मल हृदय मे जिज्ञासा का सहज भाव उत्पन्न हुआ। तब वे गुरुजी की सेवा मे उपस्थित हुए। उस समय मे उनके हृदय मे उठने वाली विचार-लहरियो का तारतम्य यहाँ अत्यन्त कुशलतापूर्वक चित्रित किया गया है। 'जायसड्ढे, जायसंसए, जायकोउहल्ले' इन शब्दो को संजात, उत्पन्न और समुत्पन्न शब्दो के रूप मे चार बार दोहराया गया है। ये शब्द उनके

मनोमन्थन के उतार-चढाव को अभिव्यक्त करते हैं। इन शब्दो से जम्बू स्वामी के मतिज्ञान की विशेषता ध्वनित होती है।

मतिज्ञान के चार प्रकार है—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा। इनमें से अवग्रह भी दो प्रकार का है—व्यजनावग्रह और अर्थावग्रह। व्यजनावग्रह श्रोत्र, घ्राण, रसना और स्पर्शनेन्द्रिय से उत्पन्न होने के कारण चार तरह का है। यह नेत्र और मन से नही होता। नेत्र और मन से सीधा अर्थावग्रह ही होता है।

व्यजनावग्रह ज्ञान की क्रमिक उत्पत्ति मे प्रथम है। वस्तुतः व्यजनावग्रह मे ज्ञान की मात्रा न होकर ज्ञानोत्पत्ति की अभिमुखता होती है अथवा ज्ञान की सूक्ष्मतम मात्रा होती है। इसे समझाने के लिए आगम मे दो दृष्टान्त दिए गए हैं—प्रतिबोधिक दृष्टान्त और मल्लक दृष्टान्त। नीद मे सोये किसी व्यक्ति को जब आवाज दी जाती है तो शनै.-शनै. उसे जागृति आती है। कोरे सिकोरे मे पानी की एक-एक बू द डालने पर धीरे-धीरे उसमे आर्द्रता आती है। इसी प्रकार इन्द्रिय और उसके विषय का धीरे-धीरे सम्पर्क होता है। इस अवस्था का मन्दतम उपयोग व्यजनावग्रह है।

व्यजनावग्रह के पश्चात् क्रमश पुष्ट, पुष्टतर होता हुआ वही उपयोग अर्थावग्रह, ईहा, अवाय, धारणा आदि के रूप मे परिणत होता है।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि जम्बूस्वामी को 'जायसड्ढे' 'जायससए' किस अभिप्राय से कहा गया है? श्रद्धा और सशय परस्पर विरोधी हैं। अगर जम्बू स्वामी के मन मे श्रद्धा उत्पन्न हुई तो सशय कसे और सशय उत्पन्न हुआ तो श्रद्धा कैसे? इसका उत्तर यह है कि सशय श्रद्धा पूर्वक भी हो सकता है। सुधर्मा स्वामी के प्रति एवं तत्त्व के प्रति उनके मन मे पूर्ण श्रद्धा थी, सशय तो किसी विशेष वात का निश्चय न हो पाने के कारण था—छठे अग के अर्थ के विषय मे जिज्ञासा रूप शंका थी।

जम्बू स्वामी ने अतीव विनयपूर्वक प्रश्न किए। उन्होने पांचवें अग भगवती के भाव सुने थे। भगवती के प्रारम्भ में 'नमुत्थु णं' के पाठ द्वारा श्रमण भगवन्त महावीर की स्तुति की गई है। जम्बू स्वामी ने उसी पाठ का उच्चारण किया। तत्पश्चात् अपना प्रश्न उपस्थित किया। इस प्रकार उन्होने विनयधर्म का पालन किया। विनय से मतिज्ञान निर्मल होता है और श्रुत ज्ञान की प्राप्ति होती है।

विनययुक्त होकर सूत्र, अर्थ और उभय (सूत्रार्थ) पूछने वाले शिष्य को गुरु सुधर्मा स्वामी ने, शास्त्रविधि के अनुसार जम्बू स्वामी को वह पाठ सुनाया[1] जो उन्होने श्री महावीर से सुना था।

सर्वज्ञभाषित वचन ही आगम कहलाते हैं, सुधर्मास्वामी उस समय छद्मस्थ थे, इस कारण उन्होने अपनी ओर से कुछ नही कहा। कोई अपनी बात सर्वज्ञ के सिर न मढ़े और न सर्वज्ञ के कथन में अपनी ओर से कुछ जोड़े, यह जैन परम्परा की मान्यता है। इन प्रश्नोत्तरो का इस दृष्टि से विशेष महत्व है।

मूल—जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं एगूणवीसा अज्झयणा पण्णत्ता, तंजहा-उक्खित्तणाए जाव पुंडरीए त्ति य, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहेवासे दाहिणड्ढे भरहे रायगिहे णामं नयरे होत्था। वण्णओ। गुणसिलए चेइए। वण्णओ।

---

१. एव विणयजुत्तस्स, सुत्त अत्थ च तदुभय।
पुच्छमाणस्स सीसस्स, वागरिज्ज जहासुय॥
—उत्तराध्ययन, अ० १ गा, २३

तत्थ णं रायगिहे नयरे सेणिए णाम राया होत्था-महयाहिमवत'''वण्णओ ।

तस्स णं सेणियस्स रण्णो नन्दा णामं देवी होत्था-सुकुमालपाणिपाया । वण्णओ ।

तस्स ण सेणियस्स रण्णो पुत्ते नन्दाए देवीए अत्तए अभयणाम कुमारे होत्था । अहीण जाव सुरूवे, सामदंड-भेय-उवप्पयाणणीति सुप्पउत्तणयविहिन्नू ईहावूह-मग्गण-गवेसण-अत्थ-सत्थ-मइविसारए उप्पत्तियाए वेणइयाए कम्मियाए परिणामियाए चउविहाए बुद्धीए उववेए । सेणियस्स रण्णो बहुसु कज्जेसु य कुडु बेसु य मतेसु य गुज्झेसु य रहस्सेसु य णिच्छएसु य आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे मेढी पमाणं आहारे आलबण चक्खू मेढीभूए पमाणभूए आहारभूए आलंबणभूए चक्खुभूए सव्वकज्जेसु सव्वभूमियासु लद्धपच्चए विइण्ण वियारे रज्जधुरचिंतए यावि होत्था । सेणियस्स रण्णो रज्जं च रट्ठ च कोसं च कोट्ठागार च बलं च वाहण च पुरं च अंतेउर च सयमेव समुवेक्खमाणे २ विहरइ । —सूत्र ४

मूलार्थ—जम्बू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी से पूछा—श्रमण भगवान् महावीर ने यदि उत्क्षिप्त ज्ञात से लेकर पुण्डरीक ज्ञात तक उन्नीस अध्ययन कहे तो उनमे से प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ है ?

सुधर्मा बोले—उस काल उस समय मे जम्बूद्वीप के अन्दर दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र मे राजगृह नामक नगर था । उसका वर्णन औपपातिक सूत्र के नगर-वर्णन के अनुसार समझना । नगर से बाहर गुणशिलक नामक बाग था । उसका भी वर्णन यहाँ समझ लेना चाहिए ।

राजगृह नगर में श्रेणिक राजा राज्य करता था। वह महा-हिमवान शैल आदि के समान राजाओ में प्रधान था,

श्रेणिक राजा की नन्दा नामक रानी थी। रानी के हाथ-पैर आदि बहुत सुकुमार थे शरीर की सुकुमारता के साथ वह स्वभाब से भी मृदु थी। उसका पुत्र अभयकुमार था। अभयकुमार बड़ा सुन्दर, सुलक्षण और बुद्धिशाली था। वह साम, दंड, भेद एव उप प्रदान नीति मे निपुण था। ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेपरगा तथा अर्थशास्त्र मे पटु था। औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी एव पारिणा-मिकी, इन चारो प्रकार की बुद्धियो का धनी था। इतना बुद्धिमान् होने से वह अपने पिता राजा श्रेणिक का जीवनाधार बन गया था। राजा के बहुत कार्यो मे वह सहयोग देता था। कौटुम्बिक कार्यो मे, मंत्रो, गुह्यो और रहस्यपूर्ण कार्यो मे भी उससे परामर्श लिया जाता था—बार-बार उससे पूछा जाता था। वह मेढी (खलिहान के बीच गाडी जाने वाली लकड़ी) के समान था अर्थात् सभी कार्यकलापो का केन्द्र था, आधार, प्रमाण, आलम्वन और चक्षु के समान था। झोपडियो से लगा कर राजमहलो तक सर्वत्र उसकी देखरेख थी। राज्य का समस्त कार्य-भार अभयकुमार के समर्थ कंधो पर था।—४

विशेष बोध—इस पाठ मे प्रधान रूप से अभयकुमार की गरिमा प्रदर्शित की गई है। बौद्धिक सम्पत्ति उसमे असामान्य थी। व्यापारी वर्ग मे पुरातन काल से एक परम्परा चली आ रही है। वर्ष के आरभ मे वे जव नये व्ही-खाते चालू करते हैं तो उनके प्रारभ मे मागलिक रूप मे चार वातें लिखते है, यथा—

१—श्री गौतम स्वामी की लब्धि

२—शालिभद्र की ऋद्धि

३—अभयकुमार की वुद्धि

४—केवन्नाजी का सुख।

अपनी बात



प्रस्तुत पुस्तक—मेघचर्य्या, मेरी दो वर्ष की लेखन-साधना का फल है। दैनिक कार्यक्रम करते हुए जितना समय शेप रहता था, उसे इधर-उधर की बातो मे न लगाकर श्रुत-सेवा मे, वीतराग-वाणी की आराधना मे लगाने का विचार मन मे तरगित हुआ। अपनी बुद्धि एव अपने चिन्तन का सदुपयोग करने एव जीवन को मधुर तथा विनम्र बनाने की भावना उद्‌बुद्ध हुई। इसके लिए साधना आवश्यक थी और श्रुत-सेवा भी साधना का एक महत्वपूर्ण साधन है।

मानव जीवन को मिले मुझे ५१ वर्ष हुए हैं। मेरा जन्म क्षत्रिय राजपूत कुल मे हुआ था। सतरह वर्ष का समय देहात मे खेलने कूदने मे बीत गया। उस समय बालब्रह्मचारी परम विदुषी महासती श्री शीलकुँवर जी के सम्पर्क मे आया, और उनके उपदेश से मुझे जैन-धर्म का बोध मिला और मैंने सम्यक्त्व ग्रहण की। महासती जी की वाणी मे मधुरता, कोमलता एव तेजस्विता थी। उनकी समझाने की कला बहुत सुन्दर थी। इसलिए उन्होने मेरे व्यसनी जीवन को बदल कर उस पर धर्म का रग चढा दिया और मेरा जीवन उसी समय से धर्म की ओर मुड गया। मेरा जन्म मेवाड मे उदयपुर के निकट वाकल भोमट के समीजा गाँव मे हुआ था, और वि० स० १९९५ मे पौप कृष्णा ५ को मादडा (भीमट) मे पूज्य गुरुदेव महास्थविर श्रद्धेय ताराचन्द जी महाराज के पास मेरी दीक्षा हुई। लगभग २१ वर्ष पर्यन्त मुझे पूज्य गुरुदेव की सेवा का लाभ मिला। उपादान अच्छा होने से निमित्त भी अच्छे मिलते

गए। पूज्य-गुरुदेव से मैने श्रुत-साहित्य के षष्ठम अंग ज्ञातासूत्र का अध्ययन किया है। उसी समय मेरे मन मे मेघकुमार के जीवन को राष्ट्र-भाषा हिन्दी में लिखने के विचार जागृत हुए। परन्तु समय का प्रवाह तेजी से वहता गया और मुझे अपनी भावना को साकार रूप देने का समय नही मिल सका। इसी बीच वि० स० २०१३ कार्तिक शुक्ला १४ को जयपुर मे पूज्य-गुरुदेव का स्वर्गवास होगया। उनकी स्मृति को तरोताजा वनाये रखने के लिए मैंने श्रद्धाञ्जलि के रूप मे जीवन-पराग पुस्तक लिखी और उससे मेरी लेखनशैली का विकास भी हुआ। उसके वाद स० २०२४ मे हमने राजस्थान से वम्वई की ओर विहार किया और श्रद्धेय प्रसिद्ध वक्ता राजस्थान केसरी पुष्कर मुनिजी महाराज की सेवा मे हम सात सन्त जेठ मे पालघर आए। वहा वैरागी नवीन कुमार की ज्येष्ठ शुक्ला १० को दीक्षा हुई, उसका नाम पुनीत मुनि रखा। उस वर्प वम्वई मे वालकेश्वर चातुर्मास किया। २०२५ का चातुर्मास घोड़नदी (पूना) मे किया। उस समय पुनीत मुनि की प्रवल प्रेरणा पाकर मेघकुमार को लिखने की सुषुप्त भावना पुन: जागृत हुई और मैंने लेखनकार्य प्रारम्भ किया, जो स० २०२६ के पूना चातुर्मास मे परिपूर्ण हुआ।

साधना के क्षेत्र मे स्वाध्याय, ध्यान एव चिन्तन-मनन तथा उसे लेखन के रूप मे साकार रूप देना महत्वपूर्ण है। सयम-साधना मे तप-जप की तरह साहित्य-साधना भी सयमी जीवन का एक अग है। इसलिए आगम मे स्वाध्याय को, श्रुत-साधना को भी तप कहा है। इससे चित्त समाधिस्थ होता है, मन एकाग्र बनता है और उस समय नये-नये विचार मन एव मस्तिष्क मे उद्‌बुद्ध होते है। इससे वुद्धि का विकास होता है। स्वाध्याय एव चिन्तन से उत्पात्तिया, विनिया, कम्मिया, पारिणामिया आदि वुद्धियो का विकास होता है।

ज्ञाता सूत्र मे इनका विस्तार से उल्लेख मिलता है। इन का विकास करके ही मानव अपने जीवन को विकसित करता है। इसलिए मैंने श्रद्धा-निष्ठापूर्वक इसे जन-जन के हित के लिए लिपिबद्ध किया है। यह विचारो का एव चिन्तन का अमृत है, जो मुमुक्षु इसका पान करेगा, उसकी साधना अवश्य ही परिपुष्ट होगी। उपाध्याय कवि श्री अमरचन्द्र जी महाराज की भाषा मे उसका जीवन मधुमय वनेगा—

"जीवन का कण-कण मधुमय हो,
मधुरस क्षिति पर बरसाओ।
अन्दर मे अपने प्रसुप्त-तम,
भाव सुदिव्य जगाओ ॥"

मेघकुमार ने श्रमणत्व स्वीकार करने के बाद भूल न की हो, ऐसी बात नही है। परन्तु उसके जीवन की सबसे बडी विशेषता यह रही है, कि भूलो के शूलों को निकाल कर साधना को शुद्ध बनाने मे वह सदा सलग्न रहा। उसने जागृत होकर अपने जीवन का विकास किस प्रकार किया और साधक को साधना मे किस प्रकार की सावधानी रखने की आवश्यकता है, यह प्रस्तुत पुस्तक मे स्थान-स्थान पर पाठक को मिलेगा।

प्रस्तुत पुस्तक मे मेरे ज्येष्ठ गुरुभ्राता, राजस्थान केशरी, प्रवर्तक पूज्य श्री पुष्कर मुनि जी महाराज का हार्दिक आशीर्वाद एव मधुर सहयोग मिला। समस्त सामग्री आपके सहयोग से मुझे सहज ही उपलब्ध हो गई।

श्रद्धेय उपाध्याय अमर चन्द जी महाराज एव अखिलेश मुनि जी का स्नेह, सहयोग एव सहानुभूति को मैं कभी भूल नही सकता। उनकी कृपा का ही परिणाम है कि प्रस्तुत पुस्तक का सन्मति ज्ञानपीठ से प्रकाशन हो रहा है।

प्रिय गुरु भ्रातृत्व श्री देवेन्द्रमुनि जी, शास्त्री साहित्यरत्न से मुझे समय-समय पर योग्य परामर्श मिलता रहा है। उनके मार्ग-दर्शन से पुस्तक सुन्दर वन सकी हैं। और शोधपूर्ण भूमिका लिखकर उन्होने पुस्तक के महत्व को वढा दिया है। इसी प्रकार श्री गणेश मुनि जी, शास्त्री साहित्य रत्न, जिनेन्द्र मुनि, काव्यतीर्थ, रमेश मुनि काव्यतीर्थ, राजेन्द्र मुनि काव्यतीर्थ, एव पुनीत मुनि जैन-सिद्धान्त विशारद का सहयोग भी महत्वपूर्ण रहा है। और महासती श्री वक्षु जी, विमलवती जी एव मदनकु वर जी का सहयोग भी मिला। महासती विमलावती जी ने मूल एव मूलार्थ की प्रतिलिपि करके श्रुत--सेवा का लाभ लिया।

कर्मठ-कार्यकर्त्ता, विश्रुत सम्पादक, पण्डित श्री शोभाचन्द्र जी भारिल्ल ने प्रस्तुत पुस्तक का सुन्दर सम्पादन किया। आपकी भाषा सरल, सरस और प्राञ्जल है तथा शैली मधुर है। इसके साथ श्री श्रीचन्द्र जी सुराणा 'सरस' तथा पुस्तक के लिए अर्थ का सहयोग देने वाले व्यक्तियो का सहयोग भी सदा स्मृति में रहेगा।

मेघचर्य्या को पाठको के कर-कमलो मे प्रस्तुत करते हुए मुझे परम प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। पूज्य गुरुदेव श्री ताराचन्द जी महाराज की कृपा से मैं अपने कार्य मे सफल होता रहा हूँ। पुस्तक कितनी उपयोगी है, इसका निर्णय मैं पाठको पर ही छोडता हूँ।

मैंने जो कुछ किया, वह मेरा नही, पूज्य गुरुदेव की कृपा का ही मधुर फल है। अत राजस्थानी भाषा मे इतना ही कहूँगा—

अमर रहिजो अमर रहिजो,
गुरुजी का नाम।
मानें तो सुखी कर दीना जी।

कार्तिक शुक्ला १४ स० २०२७
महास्थविर-स्वर्गारोहण तिथि
व० स्थानकवासी जैन धर्म स्थानक,
दादर (वेस्ट) वम्बई २८

—हीरा मुनि, 'हिमकर'

दान दाताओं की सूची

८००) जैन श्री श्राविका सघ, सादडी मारवाड

४००) स्व० मणिवेन केशवलाल भसाली,
गीताजलि ५ न० माला वालकेश्वर, वम्वई-६

४००) मणिवेन राजमल मेहता, वालकेश्वर मुवई न० ६

४००) तारावेन चदुलाल मेहता, ६६ वालकेश्वर, कमल मुवई न० ६

२५१) चदनवाला महिला मण्डल, कोर्ट मुबई न० १, वाजार गेट

२०१) राजीवाई घासीराम जी कोठारी, सेमा वाला, सायन वम्बई

२००) शा० शिवलाल साकरचद पालीयादवाला,
आगरा रोड, घाटकोपर वम्वई न० ८६

२००) पारु वाई हरीलाल मेहता, वालकेश्वर वम्वई-६

१५०) हस्तीमल जी वलदोटा, रविवार पेठ पूना-२

२५०) रामकुवर निहालचद डुमडिया, घाटकोपर वम्वई

२००) शिवलाल गुलावचद शेठ, माटुगा, मुम्वई-२६

१००) चद्रकान्त मणिलाल भसाली, साताक्रुज, वेस्ट वम्बई-५४

१०१) माणिकलाल वलदोटा आणि क०, रविवार पेठ, पूना २

१०१) धर्माणुरागिणी पानी बाई, नगराज गजराज, रविवार पेठ, पूना-२

१०१) गिरधारीलाल देसरडा, पाषाण वाला, पूना

१०१) घीसुलाल मोहनलाल मेहता, पूना-२

१०१) दुलीचद दीपचद पूनमिया, पूना

१५१) वरदीचद जी मेघराज जी, जालोरवाला

१००) प्यारीबाई धर्मपत्नी मोहनलाल जी सीघवी, भवानीपेठ पूना-२

१००) चुनीलाल जी कावडिया की धर्मपत्नी
गजराबाई, रविवार पेठ, पूना

१०१) रमेशचद्र शोभाचद्र टाटिया, भवानी पेठ, पूना।

१००) जावतराज जी सोलकी, लस्कर पूना

१००) फुलीबाई सोहनलाल कावडिया, पूना

१००) मोतीलाल जी जवारलाल जी बाफना, बुधवार पेठ-पूना

५१) विनयचद रेवाशकर शाह, काथा वाला बीलडीग
घाटकोपर बम्बई-७७

१००) तोलाराम जी रूपचद जी, सीमावाला बम्बई

१५०) कपूरचद जवेरचद गाधी, आगरा रोड नाका, घाटकोपर, बम्बई

१००) शामलाल जी राघव जी, माटुगा बम्बई १९

५१) राजमल जी पुखराज जी सुराणा, रविवार पेठ-पूना

५१) उत्तमचद जी गिरधारीलाल जी चोरडिया, गणेश पेठ-पूना

५०) ईश्वरलाल चुनीलाल पारेख, साताक्रुज, मुबई न० ५४

५१) धनराज प्रवीणचद आणि कपनी, भवानी पेठ-पूना

५०) घोसुलाल जी खेमराज जी चगेडीया, बुसीवाला भोईवाडा मुम्बई

५१) मागीलाल चुनीलाल जी सोलकी, रविवार पेठ-पूना

५१) देवराज जी चुनीलाल जी, सेवलानी, सोन्यामारुती चौक, पूना

५१) श्री पुखराज जी हस्तीमल जी मेहता, पूना-२

५१) मोतीलाल माणकचन्द मूथा, नाना पेठ, पूना-२

मे घ च र्या

मेघचर्या : एक अनुशीलन

वैदिक परम्परा मे जो स्थान वेद का है, बौद्ध परम्परा मे जो स्थान त्रिपिटक का है, ईसाई धर्म मे जो स्थान वाईविल का है, इस्लाम धर्म मे जो स्थान कुरान का है, वही स्थान जैन परम्परा मे आगम का है।

वेद तथा वौद्ध और जैन आगम-साहित्य मे महत्त्वपूर्ण भेद यह रहा है कि वैदिक परम्परा के ऋषियो ने शब्दो की सुरक्षा पर अधिक वल दिया है, जव कि जैन और बौद्ध परम्परा मे अर्थ पर अधिक वल दिया है। यही कारण है कि वेदो के शब्द पूर्ण रूप से सुरक्षित रहे हैं, पर अर्थ की दृष्टि से विद्वानो मे एक मत नही है। आज तक वैदिक विज्ञो ने अनेक प्रयत्न किये हैं, पर अर्थ की दृष्टि से वे एक मत स्थिर नही कर सके हैं। जैन और वौद्ध परम्परा मे इससे विल्कुल ही विपरीत रहा है। वहाँ अर्थ की सुरक्षा पर अधिक वल दिया गया है, शब्दो की अपेक्षा अर्थ अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है। यही कारण है कि आगमो के पाठभेद मिलते है, पर उनमे अर्थ भेद नही।[1]

वेदो के शब्दो मे मत्रो का आरोपण किया गया है, जिससे शब्द तो सुरक्षित रहे, पर उसके अर्थ नष्ट हो गए। जैन आगम साहित्य मे मत्र-शक्ति का आरोपण न होने से अर्थ पूर्ण रूप से सुरक्षित रहा है।

वेद किसी एक ऋषिविशेप के विचारो का प्रतिनिधित्व नही करते, जव कि जैन गणिपिटक एव वौद्ध त्रिपिटक क्रमश भगवान् महावीर और तथागत बुद्ध की वाणी का प्रतिनिधित्व करते हैं। जैन आगमो के अर्थ के प्ररूपक तीर्थंकर रहे हैं और सूत्र के रचयिता गणधर है।[2]

---

१ देखिए 'नन्दिसुत्त, अणुओगद्दाराइ' की प्रस्तावना, आगम प्रभाकर पुण्य विजय जी महाराज

२ अत्थ भासइ अरहा सुत्त गथति गणहरा निउण।

—आवश्यकनिर्युक्ति गा० १९२

जैन और वैदिक परम्परा की सस्कृति पृथक् पृथक् रही है। जैन सस्कृति अध्यात्म प्रधान है। जैन आगमो मे अध्यात्म का स्वर प्रधान रूप से झकृत रहा है, वेदो मे लौकिकता का स्वर मुखरित रहा है। यहा पर यह बात भी विस्मरण नही होनी चाहिए कि आज मे पच्चीसौ वर्ष पूर्व अणु-विज्ञान, जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान आदि के सम्बन्ध मे जो बातें जैन आगमो मे बताई गई हैं, उन्हे पढकर आज का वैज्ञानिक भी विस्मित हो जाता है। जैन आगम साहित्य का इन अनेक दृष्टियो से महत्त्व रहा है।

कुछ समय पूर्व पाश्चात्य और पौर्वात्य विज्ञो की यह धारणा थी कि वेद ही आगम और त्रिपिटक के मूल स्रोत है, पर मोहनजोदडो और हडप्पा की खुदाई से प्राप्त ध्वसावशेषो ने विज्ञो की धारणा मे परिवर्तन कर दिया है कि आर्यों के आगमन से पूर्व भारत मे जो सस्कृति थी वह पूर्ण रूप से विकसित थी।

निष्पक्ष विचारको ने यह सत्य तथ्य एक मत से स्वीकार किया है कि श्रमण सस्कृति के प्रभाव से ही वैदिक परम्परा ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह महाव्रतो को स्वीकार किया है। आज जो वैदिक परम्परा मे अहिंसादि का वर्णन है वह जैन सस्कृति की ही देन है।[3]

आगम की परिभाषा

आगम शब्द के अनेक अर्थ हैं। 'आगमसाहित्य-पर्यवेक्षण' लेख मे मैंने विस्तार से इसका विवेचन किया है।[४]

आचाराग मे जानने के अर्थ मे आगम शब्द का प्रयोग हुआ है। 'आगमेत्ता—आणवेज्जा[५]'—जानकर आज्ञा करे। 'लाघव आगममाणे[६]' लघुता को जानने वाला।

व्यवहार भाष्य[७] मे सघदासगणी ने आगमव्यवहार का वर्णन करते हुए उसके प्रत्यक्ष और परोक्ष—ये दो भेद किये हैं। प्रत्यक्ष मे अवधि, मन पर्यव

---

३ सस्कृति के चार अध्याय पृ० १२५
४ साहित्य और सस्कृति पृ० १—५४
५ आचाराग—१।५।४ (ज्ञात्वा आज्ञापयेत्)
६ आचाराग—१।६।३ (लाघवम् आगमयन् - अवबुध्यमान)
७ व्यवहार भाष्य—गा० २०१

और केवल ज्ञान हैं और परोक्ष मे चतुर्दश पूर्व और उससे न्यून श्रुतज्ञान का समावेश है। इससे भी स्पष्ट है कि जो ज्ञान है वह आगम है। सर्वज्ञ-सर्वदर्शी तीर्थकरो के द्वारा दिया गया उपदेश भी ज्ञान होने से आगम है।

भगवती[८], अनुयोग द्वार[९] और स्थानाङ्ग[१०] सूत्र मे आगम शब्द शास्त्र के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। वहा पर प्रमाण के चार भेद किये गए है—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और आगम।

आगम के भी लौकिक और लोकोत्तर ये दो भेद किए गए है—लौकिक आगम भारत, रामायण आदि और लोकोत्तर आगम सर्वज्ञ, सर्वदर्शी द्वारा प्ररूपित आचाराग, सूत्रकृताङ्ग, समवायाङ्ग, भगवती, ज्ञाता आदि हैं।[११]

लोकोत्तर आगम के सुत्तागम, अत्थागम और तदुभयागम ये तीन भेद भी किये गये है।[१२]

एक अन्य दृष्टि से आगम के तीन प्रकार और मिलते है—आत्मागम, अनतरागम और परम्परागम।[१३] आगम के अर्थरूप और सूत्ररूप ये दो प्रकार है। तीर्थकर प्रभु अर्थरूप आगम का उपदेश करते हैं, अत अर्थरूप आगम तीर्थकरो का आत्मागम कहलाता है, क्योकि वह अर्थागम उनका स्वय का है, दूसरो से उन्होने नही लिया है। किन्तु वही अर्थागम गणधरो ने तीर्थकरो से प्राप्त किया है। गणधर और तीर्थंकर के बीच किसी तीसरे व्यक्ति का व्यवधान नही है, एतदर्थ गणधरो के लिए वह अर्थागम अनन्तरागम कहलाता है। किन्तु उस अर्थागम के आधार से स्वय गणधर सूत्ररूप रचना

---

८ भगवती ५।३।१९२

९ अनुयोगद्वार

१० स्थानाङ्ग ३३८-२२८

११ अनुयोगद्वार ४९,-५०, पृ० ६८, पुण्यविजय जी सम्पादित

१२ अहवा आगमे तिविहे पण्णत्ते। त जहा-सुत्तागमे य अत्थागमे य तदुभयागमे य।

—अनुयोगद्वार सूत्र ४७०, पृ० १७९

१३ अहवा आगमे तिविहे पण्णत्ते। त० अत्तागमे, अणतरागमे परपरागमे य। —अनुयोगद्वार सूत्र ४७०, पृ० १७९

करते हैं।[१४] इसलिए सूत्रागम गणधरो के लिए आत्मागम कहलाता है। गणधरो के साक्षात् शिष्यो को गणधरो से सूत्रागम सीधा ही प्राप्त होता है, उनके मध्य मे कोई भी व्यवधान नही होता। इसलिए उन शिष्यो के लिए सूत्रागम अनन्तरागम है किन्तु अर्थागम तो परम्परागम ही है क्योंकि वह उन्होंने अपने धर्मगुरु गणधरो से प्राप्त किया है। किन्तु वह गणधरों को भी आत्मागम नही था, उन्होंने भी तीर्थंकरो से प्राप्त किया था। गणधरो के प्रशिष्य और उनकी परम्परा मे होने वाले अन्य शिष्य-प्रशिष्यो के लिए सूत्र और अर्थ परम्परागम है।[१५]

ज्ञातधर्म कथा

जैन परम्परा के अनुसार गणधर द्वादशागी की रचना करते हैं—आचार, सूत्रकृत, स्थान, समवाय, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञातधर्म कथा, उपासकदशा, अन्तकृद्दशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण, विपाक, और दृष्टिवाद।[१६]

द्वादशागी मे ज्ञातधर्म कथा का छट्ठा स्थान है। इसके दो श्रुतस्कध है। प्रथम श्रुतस्कध मे ज्ञात-उदाहरण और दूसरे श्रुतस्कध मे धर्मकथाए है। एतदर्थ प्रस्तुत आगम का मूल नाम 'णायाणि य धम्मकहाओ य' है। टीकाकार अभयदेव सूरि ने टीका मे यही अर्थ किया है।

तत्त्वार्थभाष्यकार ने ज्ञातधर्मकथा शब्द का प्रयोग किया है। भाष्यकार ने उसका स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है उदाहरणो के द्वारा जिसमे धर्म का कथन किया है वह आगम।[१७]

---

१४ सुत्त गणहररइय तहेव पत्तेयबुद्धरइय च।
सुयकेवलिणा रइय अभिन्नदसपुव्विणा रइय॥
—श्रीचन्द्रीया सग्रहणी गा० ११२

(ख) अत्थ भासइ अरहा सुत्त गथति गणहरा निउणं।
सासणस्स हियट्ठाए तओ सुत्त पवत्तइ॥
—आवश्यक निर्युक्ति गा० ९२,

१५ तित्थगराण अत्थस्स अत्तागमे, गणहराण सुत्तस्स अत्तागमे अत्थस्स अणतरागमे, गणहरसीमाण सुत्तस्स अणतरागमे अत्थस्स परपरागमे, तेण पर सुत्तस्स वि अत्थस्स वि णो अत्तागमे णो अणतरागमे, परपरागमे। —अनुयोगद्वार—४७० पृ० १७९

१६ समवायाङ्ग

१७ ज्ञाता दृष्टान्ता तानुपादाय धर्मो यत्र कथ्यते ज्ञातधर्मकथा
—तत्त्वार्थभाष्य।

आचार्य अभयदेव ने समवायाङ्ग की टीका मे और मलयगिरि ने नन्दीसूत्र की टीका मे दो अर्थ लिखे है--ज्ञात-अर्थात् उदाहरणप्रधान धर्मकथाए, अथवा ज्ञात और धर्मकथाए ।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने कोप मे ज्ञातप्रधान धर्मकथाए, ऐसा अर्थ किया है ।

गोम्मटसार मे नाथधर्मकथा तथा तत्त्वार्थराजवार्तिक मे ज्ञातधर्म-कथा—यह शब्द व्यवहृत हुआ है ।

प० वेचरदास जी दोशी,[१८] डा० जगदीशचन्द्र जैन[१९] डा० नेमिचन्द्र शास्त्री[२०] का मानना है कि ज्ञातपुत्र महावीर की धर्मकथाओ का प्ररूपण होने से भी इस अग को उक्त नाम से कहा गया है ।

ज्ञातधर्म कथा का परिचय समवायाङ्ग[२१] और नन्दीसूत्र[२२] मे इस प्रकार दिया गया है—जो व्यक्ति विपय सुख मे मूर्च्छित हैं, और सयम मे कायर हैं तथा सभी प्रकार के मुनिगुणो मे शून्य है उनको सयम मे स्थिर करने तथा सयम मे रहने वालो को सयम मे अधिक स्थिर करने के लिए ये कथाए कही गई हैं । बडे प्रभावशाली और रोचक ढग से इन कथाओ मे सयम और तप का प्रतिपादन किया गया है ।

इस आगम की वर्णनशैली विशिष्ट प्रकार की है । विपय को स्पष्ट करने के लिए पुनरावृत्ति पर्याप्त मात्रा मे हुई है । किसी वस्तु विशेप अथवा प्रसगविशेप का वर्णन करते हुए समासान्त पदावली का जो उपयोग हुआ है, वह सस्कृत गद्य लेखको की साहित्यिक छटा का स्मरण दिलाता है ।

इस आगम के दो श्रुतस्कध हैं । पहले श्रुतस्कध मे १९ अध्ययन है और दूसरे मे १० वर्ग हैं । आचार्य अभयदेव ने इस पर टीका लिखी है, जिसका सशोधन द्रोणाचार्य ने किया है । इस अग की विविध वाचनाओ का उल्लेख भी अभयदेव ने किया है ।[२३]

---

१८ भगवान् महावीर नी धर्मकथाओ—टिप्पण पृ० १८०

१९ प्राकृत साहित्य का इतिहास—पृ० ७४

२० प्राकृत भापा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० १७१

२१ समवायाङ्ग सूत्र १४१, पृ० १२५, कमलमुनि सम्पादित

२२ नन्दीसूत्र—मलयगिरिटीका

२३ टीका का उपसहार

प्रथम अध्ययन का नाम 'उक्खित्तणाय' है। मेघकुमार के जीव ने हाथी के भव मे शशक की रक्षा के लिए 'पाए उक्खित्ते' पग ऊँचा किया, इमका वर्णन होने के कारण प्रस्तुत अध्ययन का नामकरण हुआ है।

राजगृह

प्रस्तुत अध्ययन का सम्वन्ध राजगृह मे रहा है। राजगृह मगध की राजधानी थी।[२४] जिसे मगधपुर, क्षितिप्रतिष्ठित, चणकपुर, ऋपभपुर और कुशाग्रपुर आदि अनेक नामो से पुकारा जाता था।

आवश्यक निर्युक्ति की अवचूर्णि के अनुसार पहले वहा क्षितिप्रतिष्ठित नामक नगर था। उसके क्षीण होने पर जितशत्रु राजा ने उसके स्थान पर चणकपुर स्थापित किया, जव वह भी क्षीण होने लगा तव वहा ऋपभपुर स्थापित हुआ। उसके पश्चात् कुशाग्रपुर। जव कुशाग्रपुर मे आग लगी और वह सम्पूर्ण जल गया तव श्रेणिक के पिता प्रसेनजित् ने वहां पर राजगृह नगर वसाया। आवश्यक चूर्णि के अभिमतानुसार राजगृह का निर्माण श्रेणिक ने किया था।[२५]

महाभारत युग मे राजगृह मे जरासध प्रतिवासुदेव राज्य करता था।[२६] पाच पहाडियो से घिरे होने के कारण राजगृह गिरिव्रज के नाम से भी विश्रुत था। उन पहाडियो के नाम जैन, वौद्ध और वैदिक इन तीनो ही परम्पराओ मे पृथक् पृथक् रहे हैं।[२७] ये पहाडिया आज भी राजगृह मे हैं। जैन ग्रन्थो मे वैभार और विपुल पहाडियो का वर्णन विशेष रूप मे आया है। वे पहाडियाँ वृक्षादि से खूव हरी-भरी थी। वहा पर अनेक श्रमणो ने निर्वाण प्राप्त

---

२४ पन्नवणासूत्र

२५ आवश्यक चूर्णि २ पृ० १५८

२६ त्रिपष्टि शलाका पुरुप चरित्र
(ख) चउप्पन्न महापुरिम चरिय
(ग) भवभावना

२७ जैन—विपुल, रत्न, उदय, सुवर्ण और वैभार
वैदिक—वैहार (वैभार), वाराह, वृपभ, ऋपिगिरि, चैत्यक,
—महाभारत
वैभार, विपुल, रत्नकूत, गिरिव्रज, रत्नाचल, —वायुपुराण
वौद्ध—चन्दन, गिज्झकूट, वैभार, इसगिति और वेपुल्ल
—सुत्तनिपात की अट्ठकथा ४०२ पृ० ३८२

किया था। वैभार पहाड़ी के नीचे ही तपोदा और महातपोपनीरप्रभ नामक उष्ण पानी का एक विशाल कुण्ड था।[२८] वह वर्तमान मे भी तपोवन के नाम से प्रसिद्ध है। चीनी यात्री फाह्यान और हुएनसाग ने अपने यात्रा के वर्णनो मे इन कुण्डो के देखने का वर्णन किया है।

श्रमण भगवान महावीर ने अनेक वर्षावास वहा पर व्यतीत किये थे।[२९] दो सौ से भी अधिक वार उनके समवसरण होने के उल्लेख आगम साहित्य मे मिलते हैं। वहा पर गुणसिल[30] मडिकुच्छ[31], और मोग्गरपाणि[32] आदि उद्यान थे। भगवान् महावीर गुणसिल उद्यान मे ठहरा करते थे, जिसे वर्तमान मे गुणावा कहते है।

तथागत बुद्ध ने भी अनेको वर्पावास वहा पर किये हैं। यद्यपि मूल त्रिपिटक साहित्य मे वुद्ध के विहार और वर्षावासो का क्रमिक वर्णन नही मिलता है। अगुत्तर-निकाय अट्ठकथा[33] मे बोधिलाभ के उत्तरवर्ती वर्षावासो का क्रमिक सधान किया गया है। राइस डेविडस,[34] राहुलसाकृत्यायन[35]

---

२८ (क) व्याख्या प्रज्ञप्ति २।५। पृ० १४१
(ख) वृहत्कल्पभाष्य वृत्ति २।३४२६
(ग) वायुपुराण १।४।५

२९ (क) कल्पसूत्र ५।१२३
(ख) व्याख्याप्रज्ञप्ति ७।४, ५।६, २।५
(ग) आवश्यक निर्युक्ति ४७३।४६२।५१८

३० ज्ञातधर्मकथा पृ० ४७
(ख) दशाश्रुतस्कध १० पृ० ३६४
(ग) उपासक दशा ८ पृ० ६१

३१ व्याख्याप्रज्ञप्ति १५
(ख) दीघनिकाय, महावग्गो, महापरिनिव्वान सुत्त पृ० ६१ मे 'मद्दकुच्छि' नाम मिलता है।

३२ अन्तकृतदशा ६, पृ० ३१

३३ २।४।५

३४ Buddhism

३५ वुद्धचर्या

भरतसिंह उपाध्याय[३६] आदि विद्वानों ने बुद्ध के समग्र वर्षावासों और विहारों का क्रमिक रूप प्रस्तुत किया है। उनके अभिमतानुसार बुद्धावस्था में पांच वर्षावास राजगृह में किये हैं और सतरह से भी अधिक बार वे राजगृह में आये थे।[३७]

राजगृह व्यापार का प्रमुख केन्द्र था। वहां पर लम्बी दूर से व्यापारी आया करते थे। वहां से तक्षशिला, प्रतिष्ठान, कपिलवस्तु, कुशीनारा प्रभृति भारत के प्रसिद्ध नगरों में जाने के मार्ग थे।[३८] बौद्ध ग्रन्थों में वहां के सुन्दर धान्य क्षेत्रों का वर्णन है।

आगम साहित्य में राजगृह को प्रत्यक्ष देवलोक भूत एवं अलकापुरी सदृश कहा है[३९]। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् क्रमशः राजगृह की अवनति होने लगी। जब चीनी यात्री हुएनसांग यहां पर आया था तब राजगृह पूर्व जैसा नहीं था। आज वहां के निवासी दरिद्र और अभाव ग्रस्त हैं। आजकल राजगृह 'राजगिर' के नाम से विश्रुत है। राजगिर बिहार प्रान्त में पटना से पूर्व-दक्षिण और गया से पूर्वोत्तर में अवस्थित है।

तक्षशिला से राजगृह १९२ योजन दूर था।[४०] कपिलवस्तु से राजगृह ६० योजन दूर था[४१] कुशीनगर से २५ योजन दूर था।[४२] राजगृह से गंगा ५ योजन दूर थी।[४३] नालन्दा एक योजन दूर था[४४] डा० मोतीचन्द्र ने राजगृह को तक्षशिला से ६० योजन दूर माना है।[४५]

---

३६ बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग १९६१
३७ आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन पृ० ३९२ से ४०१
३८ जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज पृ० ४६२
३९ पच्चक्खं देवलोग भूया अलकापुरीसकासा
४० (क) डिक्सनरी ऑफ पाली प्रापरनेम्स भाग २, पृ० ७२३
(ख) मज्झिम निकाय की ५ व पचसूद की टीका ९८७
(ग) सयुक्त निकाय की टीका, सारत्थपकासिनी, २४३
४१ डिक्शनरी ऑफ पाली प्रापर नेम्स भाग १ पृ० ५१६
४२ दीघ निकाय अ० २, ३
४३ (क) डिक्शनरी ऑफ पाली प्रापर नेम्स पृ० ७२३
(ख) महावस्तु I २५३
४४ डिक्शनरी ऑफ पाली प्रापर नेम्स भाग २ पृ० ५६
४५ सार्थवाह पृ० १७

मगध

मगध को जैनागमो मे एक प्राचीन देश माना गया है और इसकी गणना सोलह जन पदो मे की गई है।[४६] मगध भगवान् महावीर की प्रवृत्तियो का प्रधान केन्द्र था। उन्होने वहा की अर्धमागधी वोली मे ही प्रवचन किये थे।[४७] मगध के निवासी अन्य देशवासियो की अपेक्षा वुद्धिमान माने गये है। वे किसी भी वात को सकेतमात्र से समझ लेते थे, जव कि कौशल-वासी उसे देखकर, पाचाल वासी उसे आधा सुनकर और दक्षिण वासी उमे पूरा सुनकर ही समझ पाते थे।[४८]

मगध जनपद वर्तमान गया और पटना जिलो के अन्तर्गत फैला हुआ था। उसके उत्तर मे गगा नदी, पश्चिम मे सोन नदी, दक्षिण मे विन्ध्याचल पर्वत का भाग और पूर्व मे चम्पा नदी थी।[४९] इसका विस्तार तीन सौ योजन (२३०० मील) था और इसमे अस्सी हजार गाव थे।[५०]

ऋग्वेद मे मगध का नाम 'कीकट' दिया है। अथर्व वेद मे मगध का नाम आया है। हेमचन्द्राचार्य ने कोप मे, दोनो नामो का उल्लेख किया है। कलिग नरेश और मगध नरेशो के वीच वैमनस्य चलता था।[५१]

श्रेणिक

राजा श्रेणिक मगध साम्राज्य का अधिपति था। जैन, वौद्ध और वैदिक-तीनो परम्पराओ मे श्रेणिक की चर्चा मिलती है। भागवत महापुराण के

---

४६ व्याख्या प्रज्ञप्ति १५

४७ भगव च ण अद्धमागहीए भासाए धम्ममाइक्खइ

—समवायाङ्ग सूत्र पृ० ६०

(ख) औपपातिक सूत्र

४८ (क) व्यवहार भाष्य १०।१९२, तुलना कीजिए

(ख) वुद्धिर्वसति पूर्वेण दाक्षिण्य दक्षिणापथे।

पैशून्य पश्चिमे देशे पौरुष्य चोत्तरापथे ॥

—गिलगित मैनुस्क्रिप्ट ऑव द विनयपिटक

(ग) इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली १९३८, पृ० ४१६

४९ वुद्धिस्ट इण्डिया पृ० २४

५० वुद्धिस्ट इण्डिया पृ० २४

५१ वसुदेव हिण्डी पृ० ६१-६४

अनुमार वह शिशुनाग वशीय कुल मे उत्पन्न हुआ था।[७२] अश्वघोष ने हर्यङ्क कुल का उल्लेख किया है[७३]। आचार्य हरिभद्र ने उनका कुल याहीक माना है।[७४] रायचोधरी का मन्तव्य है कि 'बौद्ध साहित्य मे जो हर्यङ्क कुल का उल्लेख है, वह नागवश का ही द्योतक है। कोवेल ने हर्यङ्क का अर्थ सिह किया है, पर उसका अर्थ नाग भी है। प्रोफेसर भण्डारकरने नागदशक मे बिम्बिसार की भी गणना की है और उन सभी राजाओ का वश 'नाग' माना है।[७५]

बौद्ध साहित्य मे इस कुल का नाम शिशुनाग वश लिखा है।[७६] जैन ग्रन्थो मे वर्णित वाहीक कुल भी नागवश ही है। वाहीक जनपद नाग जाति का मुख्य केन्द्र रहा है। उसका प्रमुख कार्य क्षेत्र तक्षशिला था और वह नगर वाहीक जनपद मे था। एतदर्थ श्रेणिक को शिशु नागवशीय मानना असगत नही है।[७७]

पण्डित गेगर और भण्डार कर ने सिलोन के पाली वशानुक्रम के आधार से बिम्बसार और शिशुनाग वश को अलग बताया है। बिम्बसार शिशुनाग के पूर्वज थे।[७८]

जैन आगमो मे श्रेणिक के भभसार, भिभसार, भिभिसार नाम मिलते हैं।[७९] जैन परम्परा मानती है कि श्रेणियो की स्थापना करने मे श्रेणिक

---

५२ भागवत महापुराण द्वितीय खण्ड पृ० ९०३

५३ जातस्य हर्यककुले विशाले —बुद्धचरित्र सर्ग ११, श्लोक २

५४ आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति पत्र ६७७

५५ स्टडीज इन इण्डिया एन्टिक्वीटीज पृ० २१६

५६ महावश गाथा २७-३२

५७ उत्तराध्ययन एक समीक्षात्मक अध्ययन पृ० ३९२

५८ स्टडीज इन इण्डियन एन्टिक्वी टीज पृ० २१५-२१६

५९ सेणिए भभसारे —ज्ञाताधर्म कथा श्रुत० १, अ० १३

(ख) दशाश्रुतस्कध, दशा १० सूत्र १

(ग) सेणिए भंभसारे, सेणिए भिभसारे —उववाई सुत्त सू० ७, पृ० २३ सूत्र ९, पृ २५

(घ) सेणिए भिभिसारे —ठाणाग सूत्र ठा० ९ पत्र ४५८

नाम पडा ।[६०] बौद्ध परम्परा मानती है कि पिता के द्वारा अठारह श्रेणियो के स्वामी बनाये जाने के कारण वह श्रेणिक बिम्बसार कहलाया ।[६१] जैन और बौद्ध दोनो ही परम्पराओ मे श्रेणियो की सख्या अठारह मानी है ।[६२] कुछ लोगो की यह भी धारणा है कि महती सेना होने से या सेनिय गोत्र होने से श्रेणिक नाम पडा ।[६३] जब श्रेणिक बालक था तब महलो मे आग लगी। सभी राजकुमार विविध वस्तुए लेकर भागे। श्रेणिक भभा को ही राजचिह्न के रूप मे सारभूत समझ कर भागा, एतदर्थ उनका नाम भभासार पडा ।[६४] अभिधान चिन्तामणि,[६५] उपदेश माला,[६६] ऋषि मण्डल प्रकरण,[६७] श्री भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति[६८], आवश्यक चूर्णि[६९] आदि सस्कृत प्राकृत ग्रन्थो मे

---

६० श्रेणी कायति श्रेणिको मगधेश्वर

—अभिधान चिन्तामणि, स्वोपज्ञ वृत्ति, मर्त्यकाण्ड श्लो० ३७६

६१ स पित्राष्टादशसु श्रेणिष्ववतारित ।
अतोऽस्य श्रेण्यो बिम्बिसार इति ख्यात ॥

— विनय पिटक, गिलगित मास्क्रिप्ट

६२ जम्बूद्वीप पण्णत्ति, वक्षस्कार ३,
(ख) जातक, मूगपक्खजातक भाग ६

६३ धम्मपाल– उदान टीका पृ० १०४

६४ सेणिय कुमारेण पुणो जयढक्का कड्ढिया पविसिऊण
पिउणा तुट्ठेण तओ भणिओ सो भभासारो

—उपदेश माला सटीक पत्र ३३४-१

(ख) तेन कुमारत्वे प्रदीपनके जयढक्का गेहान्निष्काशिता तत पित्रा भिंभिसार उक्त ।

—स्थानाङ्ग वृत्ति पत्र ४६१-१

(ग) त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र १०।६।१०६—११२

६५ काण्ड ३, श्लोक ३७६,

६६ सटीक पत्र ३३४

६७ पत्र १४३

६८ प्रथम विभाग पत्र २२

६९ उत्तरार्ध पत्र १५८

भभासार शब्द ही मुख्य रूप से प्रयुक्त हुआ है। भभा, भिभा और भिभि ये सभी शब्द भेरी के अर्थ मे प्रयुक्त हुए हैं।[७०]

बौद्ध-परम्परा मे श्रेणिक का अपर नाम बिम्बिसार माना है।[७१] बिम्बि का अर्थ स्वर्ण है। स्वर्ण के समान वर्ण होने के कारण बिम्बिसार नाम पडा।[७२] तिब्बती-परम्परा मानती है कि श्रेणिक की माता का नाम बिम्बि था, अत उसे बिम्बिसार कहा जाता था।[७३]

श्रीमद्भागवत पुराण मे श्रेणिक के अजात शत्रु[७४], विधिसार[७५] नाम आये है। दूसरे स्थलो मे विध्यसेन और 'सुविन्दु' नाम का भी उल्लेख हुआ है।[७६]

आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति[७७] और त्रिपष्टि शलाका पुरुपचरित्र[७८] के अनुसार श्रेणिक के पिता प्रसेनजित् थे। दिगम्बर आचार्य हरिपेण ने श्रेणिक के पिता का नाम उपश्रेणिक लिखा है।[७९] उत्तरपुराण मे पिता का नाम कूणिक लिखा है, जो अयथार्थ है।[८०] अन्यत्र पिता का नाम महापद्म, हेमजित, क्षेत्रोजा, क्षेत्प्रोजा भी मिलते हैं।[८१]

---

७० पाइय-सद्द-महण्णवो पृ० ७९४-८०७
७१ इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली भाग १४ अक २, जून १९३८, पृ० ४१५
७२ उदान अट्ठकथा १०४
(ख) पाली इग्लिश डिक्शनरी पृ० ११०
७३ इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटर्ली, भाग १४, अक २ जून १९३८ पृ० ४१३
७४ भागवत, द्वितीय खण्ड पृ० ९०३
७५ वही १२।१
७६ भारतवर्ष का इतिहास पृ० २५२, भगवतदत्त
७७ पत्र ६७१
७८ त्रिपष्टि शलाकापुरुप चरित्र १०।६।१
७९ वृहत्कथाकोप कथाङ्क ५५, श्लो० १-२
८० उत्तरपुराण ७४।४।८, पृ० ४७१
८१ पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्शिएण्ट इण्डिया पृ० २०५

जैन साहित्य मे श्रेणिक की छब्बीस रानियो के नाम उपलब्ध होते हैं, उनमे एक रानी का नाम धारिणी था, जिसका पुत्र मेघकुमार है। जिसका प्रस्तुत ग्रन्थ मे विस्तार से विवेचन है। अन्य पच्चीस रानियो का और उनके ३५ पुत्रो का वर्णन अन्तकृतदशा, आवश्यक चूर्णि, निशीथ चूर्णि, अनुत्तरोपपातिका, निरियावलिका व त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र आदि मे आया है, जिनमे से अधिकाश ने भगवान् महावीर के पास प्रव्रज्या ग्रहण की, उत्कृष्ट तप-जप व सयम की साधना कर स्वर्गवासी हुए। विस्तार भय से हम यहा उन सभी का उल्लेख नही कर रहे है।[८२]

बौद्ध ग्रन्थो के अनुसार श्रेणिक की पाचसौ रानिया थी।[८३]

आगम व आगमेतर जैन साहित्य मे श्रेणिक के सम्बन्ध मे विस्तार से वर्णन किया गया है। उनके पुत्र और रानियो का जैन धर्म मे दीक्षित होना, यह बात सिद्ध करता है कि वह जैन धर्मावलम्बी था। बौद्ध ग्रन्थो मे उसे तथागत बुद्ध का भक्त माना गया है। कितने ही विद्वानो की यह धारणा है कि जीवन के पूर्वार्ध मे वह जैन था और उत्तरार्ध मे वह बौद्ध बन गया था, एतदर्थ ही जैन ग्रन्थो मे उसके नरक जाने का वर्णन है, पर हमारी दृष्टि से विद्वानो की यह धारणा भ्रान्त है, क्योकि जैन साहित्य मे नरक-गमन के साथ भावी तीर्थंकर बनने का भी उल्लेख मिलता है।[८४] यदि उसका जैन धर्म के साथ सम्बन्ध नही होता तो जैन साहित्य मे इतने विस्तार से उसका परिचय प्राप्त नही हो सकता था।

अभयकुमार

अभयकुमार की चर्चा भी जैन और बौद्ध ग्रन्थो मे विस्तार से आयी है। बुद्धिबल के लिए अभयकुमार जैन परम्परा मे अत्यधिक प्रसिद्ध रहा है। वह श्रेणिक भभसार का पुत्र ही नही, मनोनीत मत्री भी था।[८५] मेघकुमार की माता धारिणी का दोहद[८६] तथा कूणिक की माता चेलणा का दोहद[८७] वह

---

८२ विस्तार के लिए देखें—महावीर जीवन दर्शन—देवेन्द्रमुनि

८३ विनय पिटक महावग्ग ८।१।१५

८४ स्थानाङ्ग ९।३।६९३ वृत्ति, पत्र ४५८-४६८

८५ भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति, पत्र ३८

८६ मेघचर्या

८७ निरियावलिका

अपने बुद्धि-बल से पूर्ण करता है। अपनी चुल्लमाता चेल्लणा और श्रेणिक का विवाह भी उसके बुद्धि का चमत्कार था।[८८] अनेक बार राजा श्रेणिक के राजनैतिक सकट भी उसने टाले थे।[८९] उसके लिए प्रस्तुत आगम मे जो विशेषण दिये गये है वे यथार्थ है।

मेघकुमार

प्रस्तुत ग्रन्थ मे ज्ञाताधर्म कथा का प्रथम अध्ययन है। श्रेणिक, अभयकुमार आदि की तरह मेघकुमार का वर्णन बौद्ध साहित्य मे नही मिलता है। परवर्ती जैन साहित्यकारो ने भी मेघकुमार का वर्णन किया है, उसका मूल आधार भी ज्ञाताधर्म कथा का आधार ही रहा है। मेघकुमार राजा श्रेणिक का पुत्र था और अभयकुमार का लघुभ्राता था। जब वह गर्भ मे था उस समय रानी धारणी को मेघ का दोहद आया था, इसलिए उसका नाम मेघकुमार रखा गया।

मेघकुमार कलाचार्य के पास अध्ययन ही नही करता, अपितु उसमे पूर्ण निपुणता प्राप्त करता है। बहत्तर कलाओ[९०] की तुलना कामसूत्र के विद्या समुद्देश प्रकरण मे आये हुए चौसठ कलाओ से की जा सकती है। वह अठारह प्रकार की देशी भाषाओ मे भी निष्णात बनता है। अठारह प्रकार की देशी भाषाए कौनसी थी, इसका वर्णन टीका मे भी नही मिलता है।[९१] अठारह प्रकार की लिपियो का उल्लेख प्रज्ञापना,[९२] समवायाङ्ग[९३] और विशेषावश्यक भाष्य की टीका मे है, पर भाषा का नही।

---

८८ त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र १०।६।२२६-२२७, पत्र ७८

८९ आवश्यक चूर्णि उत्तरार्ध पत्र १५६-१६३
(ख) त्रिषष्टि. १०।११।१२४ से २९३

९० बहत्तर कलाओ का वर्णन समवायाग ७२ मे तथा राजप्रश्नीय मे भी कुछ परिवर्तन के साथ आया है।

९१ अष्टादशविधिप्रकारा. प्रवृत्तिप्रकारा अष्टादशभिर्वा विधिभि भेदै प्रचार प्रवृत्तिर्यस्या. सा तथा तस्या देशीभाषाया देशभेदेन वर्णावलीरूपाया विशारद। —ज्ञाता धर्मकथा टीका

९२ प्रज्ञापना पद १

९३ समवायाङ्ग ७२

युवावस्था आने पर आठ राजकुमारियो के साथ मेघकुमार का पाणिग्रहण सस्कार सम्पन्न होता है। चारो ओर वैभव और विलास का वातावरण था। उसी समय भगवान् महावीर अपने शिष्य समुदाय सहित वहा पधारे। भगवान् महावीर के त्याग-वैराग्य से छलछलाते हुए प्रवचन को सुनकर मेघकुमार राजा श्रेणिक और माता धारिणी की आज्ञा लेकर भगवान् के पास आर्हती दीक्षा ग्रहण करता है।

दीक्षा की प्रथम रात्रि थी, मेघकुमार का आसन सबसे अन्त मे था, मुनियो के आवागमन से अनजान मे उसे ठोकर लग जाती थी, जिससे उसकी निद्रा भग हो गई, उसके विचार बदल गये। प्रातःकाल होने पर सर्वज्ञ सर्वदर्शी महावीर ने उसको पूर्वभव सुनाकर सयम मे दृढ किया। मेघकुमार सयम-साधना एव तप आराधना कर अपने जीवन को परम पवित्र बनाता है। मेघकुमार का आदि से अन्त तक वर्णन होने से पुस्तक का नाम मेघचर्या रखा गया है। मेरे ज्येष्ठ-गुरुभ्राता पण्डित श्री हीरामुनि जी ने मूल, अर्थ के साथ विशेष बोध लिखकर जिज्ञासुओ के लिए विषय को सरल सरस बनाने का प्रयास किया है। मैं अधिकार की भाषा मे कह सकता हूँ कि उनका प्रस्तुत प्रयास जिज्ञासु पाठको के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

प० श्री हीरामुनि जी स्वभाव से सरल, प्रकृति से मधुर और विचारो की दृष्टि से उदार हैं। सेवा-भावना उनका प्रधान गुण है। जीवन के कण-कण मे मन के अणु-अणु मे सेवा की उदात्त भावना सदा अठखेलिया करती रहती है। सेवा के साथ लेखन के प्रति भी उनकी स्वाभाविक अभिरुचि है, जिसके फलस्वरूप वे जीवनपराग, जैन जीवन, और विचारज्योति पुस्तके समर्पित कर चुके है। अब मेघचर्या के विशेष बोध के लेखक के रूप मे हमारे सामने आ रहे है। मैं मुनि श्री का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ, और उनका साहित्यिक भविष्य उज्ज्वल समुज्ज्वल बने, यही मगल कामना करता हूँ।

व० स्था० जैन धर्म स्थानक
तेलग क्रोस लेन, माटुगा बम्बई १९
१९ नवम्बर १९७०

—**देवेन्द्र मुनि शास्त्री**
साहित्यरत्न

आत्मा का कर्म-मल जव भस्म हो जाता है तो आत्मा मे हल्का-पन आता है। उस हल्के पन के कारण आत्मा ऊँचे की ओर जाती है। यदि पूर्ण निष्कर्म दशा प्राप्त हो जाय तो लोकान्त तक उपर जाती है। अन्य जीव अपने हल्केपन के अनुपात से ऊपर जाते है। इसके विपरीत गुरुकर्मा (पापी) जीव सदा अधोगति मे जाते हैं।

मुनि मेघकुमार प्रकृति से भद्र और प्रकृति से ही विनीत थे। उन्होने क्रोध, मान, माया, लोभ पर विजय प्राप्त की, कठोर तपश्चर्या की, जिससे वे विमानवासी बने। त्रिलोकीनाथ का माथे पर हाथ होने से उनके सर्व कार्य सफल हुए।

ऐसे तेजस्वी तपस्वी आत्मा को मुक्ति प्राप्त हो सकती है किन्तु मानवभव की आयु कम हो और पुण्यकर्म के दलिक अधिक शेष रह जाएँ तव देवभव की प्राप्ति होती है। जब शुभाशुभ कर्मों का एक ही साथ पूर्णरूपेण क्षय होता है तब आत्मा मोक्ष प्राप्त कर लेती है।

मेघ कुमार मुनि विजयविमान मे तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले देव के पर्याय मे उत्पन्न हुए। सर्वार्थसिद्ध विमान के देवो की भी स्थिति तेतीस सागरोपम की होती है किन्तु वहाँ की स्थिति मे जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का भेद नही है। वहाँ के सभी देवो की एक ही प्रकार की स्थिति है। परन्तु विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नामक चार अनुत्तर विमानो मे दो प्रकार की स्थिति होती है—जघन्य और उत्कृष्ट। जघन्य स्थिति बत्तीस सागरोपम की और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की है। मेघ देव ने विजय विमान मे उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त की। मूलपाठ स्वय वतलाता है कि किन्ही-किन्ही देवो की स्थिति वहाँ तेतीस सागरोपम की होती है।

भविष्यवाणी

संसारी जीव कर्मों के अनुसार विभिन्न गतियो मे भ्रमण करते रहते है। किसी भी एक पर्याय मे वे सदैव स्थित नही रह सकते।

सबसे लम्बी भवस्थिति तेतीस सागरोपम की ही है। इसके पूर्ण होने पर जीव को भवान्तर मे जाना ही पड़ता है।

इसी तथ्य को ध्यान मे रखकर गौतम स्वामी ने मेघदेव के विषय मे पुन प्रश्न किया—भगवन्! मेघ देव विजय विमान से च्युत होकर कहाँ जन्म लेगा?

प्रभु ने उत्तर दिया—मेघ महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर मुक्ति प्राप्त करेगा।

विनेयशिक्षा

मेघ मुनि को परम गुरु भगवान् महावीर ने हितशिक्षा दी और सयमनिष्ठ बना दिया। प्रभु ने उनका महान् उपकार किया। श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य जम्बू स्वामी को सम्बोधन करके कहते हैं—अप्पोपालंभनिमित्त।

आप्त पुरुष ने शिष्य को हित शिक्षा दी और इसी निमित्त यह अध्ययन बना। टीकाकार ने भी इसी प्रकार का अर्थ किया है।[1]

कुछ अनुवादको ने मेघकुमार को अविनीत शिष्य होना लिखा है। जैनसभा भावनगर से प्रकाशित गुजराती अनुवाद में लिखा गया है—

'कोई पण अविनीत शिष्य होय तो तेने गुरुए मधुर वचन वड़े उपालभ आपी विनीत बनावी मार्गे लाववो जोइए, आवो उपदेश आपवा माटे राजगृह नगरमा श्रेणिक राजा अने तेमनी धारिणी नामनी राणी थी जन्मेला मेघकुमार नु ज्ञात एटले दृष्टात आप्यु छे।'

यद्यपि यहां मेघकुमार को सीधा अविनीत नही कहा है तथापि इसका आशय यही निकलता है कि मेघकुमार अविनीत शिष्य था।

१—आप्तेन हितेन गुरुणेत्यर्थ, उपालम्भो विनेयस्याविहितविधायिन आप्तोपालम्भ, स निमित्त यस्य प्रज्ञापनस्य तत्तथा।

—आगमोदय समिति सस्करण।

किन्तु मेघकुमार का समग्र वृत्तान्त स्पष्ट रूप से बतलाता है कि वे अविनीत नही थे। भगवान् महावीर ने स्वय अपने मुखारविन्द से उन्हे विनीत कहा है। गौतम स्वामी ने भी उनके भविष्य के विपय मे प्रश्न करते हुए उन्हे विनीत कहा है।

मूलपाठ मे ऐसा कोई शब्द नही, जिससे उनको अविनीत माना जा सके। सस्कृत टीकाकार ने भी ऐसा कही नही लिखा है। वे ऐसा अवश्य कहते है कि 'अविहितविधायी' शिष्य को उपालभ देने के निमित्त से यह अध्ययन बना। मगर प्रथम तो यहा सामान्य रूप मे ही कहा गया है, दूसरे 'अविहितविधायी' कहा है, 'अविनीत' नही। 'अविहितविधायी' का अर्थ है—आगम मे जिसका विधान नही, ऐसा कोई कार्य करने वाला। 'अविहितविधायी' शिष्य अविनीत ही हो, ऐसा मानना उचित नही है। एक वार कोई अकृत्य हो जाने पर भी शिष्य को 'अविहितविधायी' कहा जा सकता है किन्तु अविनीतता का सम्बन्ध उसकी प्रकृति के साथ है।

जैनागमो मे 'विनय' का अर्थ 'आचार' भी किया गया है, किन्तु इस अर्थ के अनुसार भी मेघ मुनि को अविनीत अर्थात् आचारहीन कहना उचित नही है। अल्प स्खलना मात्र से उन्हे आचारहीन कह देना बहुत बडी अत्युक्ति है।

वास्तव मे मेघ मुनि विनीत थे। छद्मस्थ तथा एकदम नवदीक्षित होने से प्रथम रात्रि मे अस्थिर अवश्य हुए, यहा तक कि सयम त्याग देने का भी विचार उन्होने किया, फिर भी चुपचाप भाग जाने का विचार नही किया। उद्वेग की उस अवस्था मे भी वे यही सोचते रहे कि भगवान् से कहकर ही मैं जाऊंगा। यह उनकी विनयशीलता का द्योतक है।

मुनि मेघ का वैराग्य कितना उच्चकोटि का है। माता-पिता ने राज्यवैभव का प्रलोभन दिया, सयम की दुष्करता प्रदर्शित करके

डराना चाहा, फिर भी वे अपने सकल्प से डिगे नही। सयम धारण करने के अपने निश्चय को उन्होने कार्यान्वित किया।

भगवान् महावीर के द्वारा सम्बोधित होने पर उन्होने कहा—प्रभो! दो आँखें छोडकर मेरा सारा शरीर अनगारो की सेवा के लिए समर्पित है।

जो महापुरुष ऐसा त्यागी, वैरागी, सेवाभावी और दुष्कर क्रिया करने वाला हो, उसे 'अविनीत' कहा जा सकता है? नही।

प्रस्तुत अध्ययन यद्यपि अविहितविधायी विनेय को उपालम्भ देने के निमित्त से बना है, तथापि इसका नाम 'उक्खित्त पाए' प्रचलित है। हाथी ने शशक की रक्षा के लिए पैर ऊपर उठाए रक्खा, इस घटना की प्रधानता से इसका यह नामकरण हो गया जान पडता है।

उपसंहार

ससारी जीव भ्रमणशील बना रहता है। ससार शब्द का अर्थ ही है—एक स्थान से दूसरे स्थान पर अथवा एक गति से दूसरी गति मे जाना। स्वर्ग, नरक और मनुष्यलोक मे यह जीव अनादि काल से परिभ्रमण कर रहा है—

एगया देवलोएसु, नरएसु वि एगया।
एगया आसुर काय, अहाकम्मेहि गच्छइ ॥१॥
एगया खत्तिओ होइ, तओ चंडाल-वुक्कसो।
तओ कीडपयगो अ, तओ कुन्थुपिवीलिया ॥२॥

—उत्तराध्ययन अ. ३,

ससारी जीव अपने शुभाशुभ कर्मो से कभी देवलोको मे, कभी नरको मे, कभी असुर निकाय में उत्पन्न होता है।

कभी क्षत्रिय के रूप मे जन्म लेता है और फिर कभी चाण्डाल एव वुक्कस हो जाता है। तत्पश्चात् कीट, पतग, कुन्थु और पिपी-

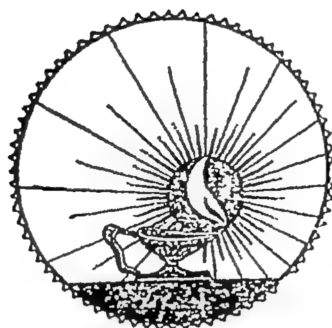
लिका रूप मे जन्मता-मरता है। इस प्रकार ससारी जीव के परि-भ्रमण की परम्परा अनादि काल से चल रही है।

दुल्लहे खलु माणुसे भवे,
चिरकालेण वि सव्वपाणिणो।
गाढा य विवागकम्मुणो,
समय गोयम ! मा पमायए॥

—उत्तराध्ययन अ० १०

सभी प्राणियो के लिए, चिरकाल तक भी मनुष्यभव निश्चय ही दुर्लभ है और कर्मों का विपाक अतीव गाढा होता है। अतएव हे गौतम ! समय मात्र भी प्रमाद न करो।

मानवभव की सफलता धर्माराधना करने मे है। मेघकुमार ने इस तथ्य को समीचीन रूप मे समझ लिया था। अत उन्होंने अपना शेष समग्र जीवन आत्मोत्थान मे लगा दिया।



परिशिष्ट

(संक्षिप्त वृत्तान्त)

कोई भी सन्त या सती प्रमादवश होकर भूलभरा कार्य करे तव गुरु या गुरुणी मधुर भाषा मे उपालम्भ देकर उसे सन्मार्ग पर ले आवे।

ऐसा उपदेश देने के लिए राजगृह के राजा श्रेणिक की धारिणी रानी के सुपुत्र मेघकुमार का ज्ञात अर्थात् दृष्टान्त दिया गया है।

मेघकुमार का जीव माता की कूंख मे आया। माता को अकाल-मेघ का दोहद उत्पन्न हुआ। दोहद की दैवी सहायता से पूर्त्ति हुई। यथासमय पुत्र का जन्म हुआ। वाल्यावस्था से मुक्त होने पर मेघ कुमार ने वहत्तर कलाए सीखी। उन बहत्तर कलाओ के नामो का उल्लेख मूलपाठ मे किया गया है।

युवावस्था आने पर राजकुमार का आठ राजकन्याओ के साथ विवाह हुआ। विवाह होने पर राजसीविलास की सामग्री जुटी। मेघकुमार आनन्द में मग्न रहने लगे।

कुछ समय पश्चात् राजगृह के गुणशिलक वाग मे भगवान् श्री महावीर पधारे। मेघकुमार धर्मदेशना सुनने गए। उपदेश श्रवण किया। उसका उनके चित्त पर गहरा प्रभाव पडा। हृदय मे वैराग्य उमड पड़ा। अतीव आग्रह करके माता-पिता से अनुमति प्राप्त की। फिर भारी महोत्सव के साथ भागवती दीक्षा अगीकार की। मुनि वन गए।

उसी दिन रात्रि मे, सब से छोटे मुनि होने के कारण उनका विस्तरा सवसे पीछे लगा। रात्रि मे साधुओं के आवागमन के कारण उन्हे नीद नही आई। दिल मे उद्वेग उत्पन्न हुआ। विचार किया— प्रात. दीक्षा छोड़कर मैं घर चला जाऊ गा।

चले जाने की भावना से आज्ञा प्राप्त करने हेतु प्रभु महावीर के पास गए। ज्ञानबल से प्रभु ने मेघकुमार की भावना समझ ली। चारित्रधर्म मे पुन स्थिर बनाने के लिए उन्हे सावधान किया।

पूर्वभवो का वर्णन किया। दो पूर्वभवो मे वे हाथी थे। प्रथम भव मे हाथी आग से भयभीत होकर भागता-भागता एक तालाब मे पानी पीने उतरा कि गहरे कीचड मे फस गया। दूसरे हाथी ने वैरभाव से प्रेरित होकर मार डाला।

मृत्यु प्राप्त कर पुन हाथी बना। इस भव मे भी दावानल से भयभीत हुआ। बचाव के लिए गगा नदी के किनारे पर घास-फूस, वृक्ष-लता आदि उखाड कर एक योजन का मडल बनाया। एक बार दावानल के भय से भागदौड़ मची। वह हाथी भी दौड़ता-दौडता मडल मे आया। वहा पहले से ही बहुत-से छोटे-मोटे पशु भर गए थे। हाथी भी वहा जाकर खडा हो गया।

हाथी के शरीर मे खुजली चली। खुजाने के लिए उसने एक पैर ऊपर उठाया। उस रिक्त हुए स्थान मे एक शशक आकर बैठ गया।

दयाभाव से उस शशक पर पाव नही रक्खा। पैर ऊपर ही उठाए रक्खा। अढाई दिन तक आग का उपद्रव जारी रहा। फिर आग शान्त हुई। सब पशुगण चले गए। हाथी का पाव अकड गया था। वह चलने को हुआ तो गिर पडा और मरण को प्राप्त हुआ।

वही हाथी दया के प्रभाव से मेघकुमार हुआ।

यह सब वृत्तान्त सुनाकर भगवान् ने कहा—हे मेघ! पूर्वभव मे एक खरगोश की दया पालने से मानवभव मिला। सब प्रकार से समर्थ और योग्य बना। साधुजीवन की प्राप्ति हुई! और आज मुनियो के पैरो के स्पर्श से इतने व्याकुल हो उठे!

यह सब वृत्तान्त सुनकर मेघमुनि को जातिस्मरण ज्ञान हुआ।

वे सयम मे दृढ हुए। ज्ञानाभ्यास करके प्रतिमातप और गुणरत्न-सवत्सर तप किया। इस तप का विस्तृत वर्णन किया गया है।

अन्त मे अनशन करके तेतीस सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति वाले विजय विमान मे देव रूप से जन्म लिया। वहा से वे महाविदेह क्षेत्र मे मनुष्य होगे और सयम की आराधना करके मोक्ष प्राप्त करेंगे।[1]



१—भावनगर जैनसभा द्वारा प्रकाशित गुजराती सस्करण के आधार पर।